Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्री-विचार-सागर-दर्पण

15.7

स्वामी मनोहरदास

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

B3

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्रीविचारसागरदर्पण

लेखक

श्रीस्वामी मनोहरदासजी महाराज

प्रकाशक

श्री-वेदान्त-प्रचार-मण्डल, अजमेर ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मिलने का पता :—
(१) अद्वैत आश्रम, श्रीवेदान्त-प्रचार-मण्डल, रामनगर पुष्कर रोड, अजमेर।
(२) श्रीडेटाराम गोलोमल सर्राफ, नया बाजार, अजमेर।
(३) शिव पुस्तक भण्डार, पुरानी मण्डी, अजमेर।

सं० २०२० वि० (सन् १९६३ ई०)
तृतीय संस्करण ३०००
पृष्ठ संख्या-५१२

मूल्य चार रुपये ४)

मुद्रक :—श्री घीसाराम करणात, नेशनल प्रेस, अजमेर।
प्रकाशक :—श्री वेदान्त प्रचार मण्डल, अजमेर।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सद्‌गुरु

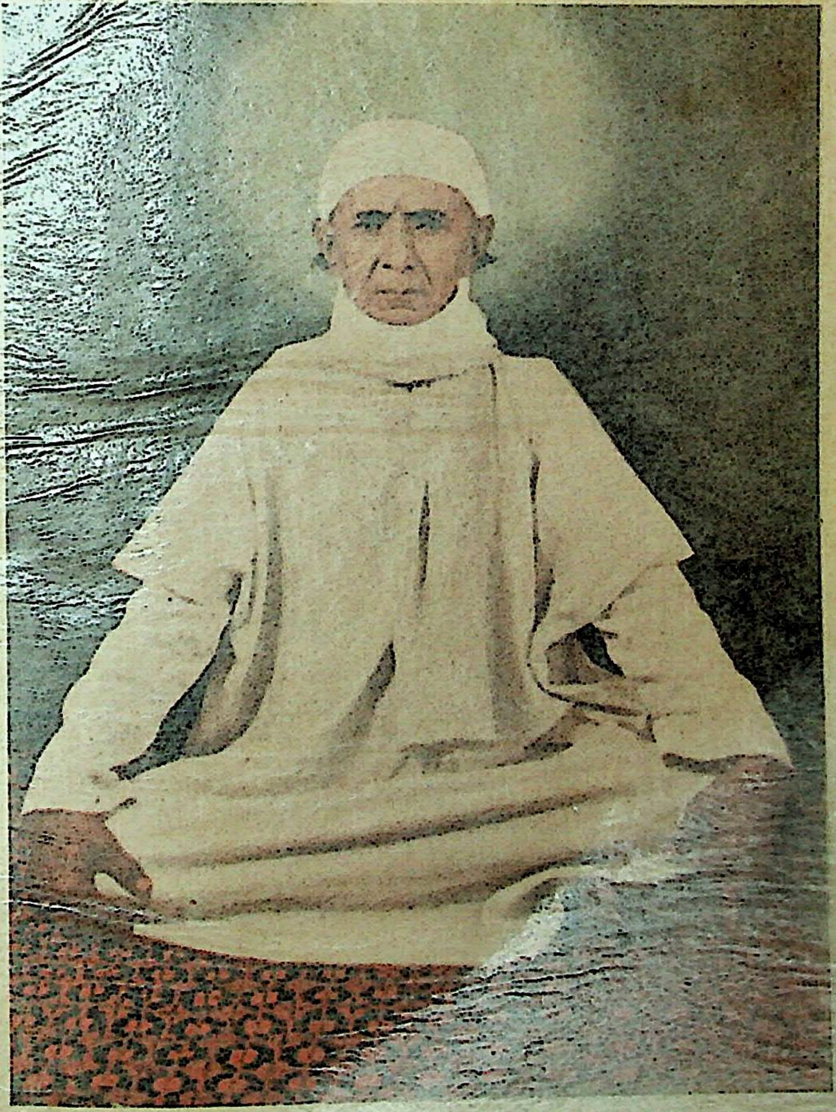

पूज्यपाद [illegible] जी महाराज

के

कर कमलों में

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मिलने का पता :—
(१) अद्वैत आश्रम, श्रीवेदान्त-प्रचार-मण्डल, [illegible]
(२) श्रीडेटाराम गोलोमल सर्राफ, नया बाजार, अजमेर।
(३) शिव पुस्तक भण्डार, पुरानी मण्डी, अजमेर।

सं० २०२० वि० (सन् १९६३ ई०)
तृतीय संस्करण ३०००
पृष्ठ संख्या-५१२

मूल्य चार रुपये ४)

मुद्रक :—श्री धीसाराम करगाना, नेशनल प्रेस, अजमेर।
प्रकाशक :—श्री वेदान्त प्रचार मण्डल, अजमेर।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

समर्पण

सद्‌गुरु

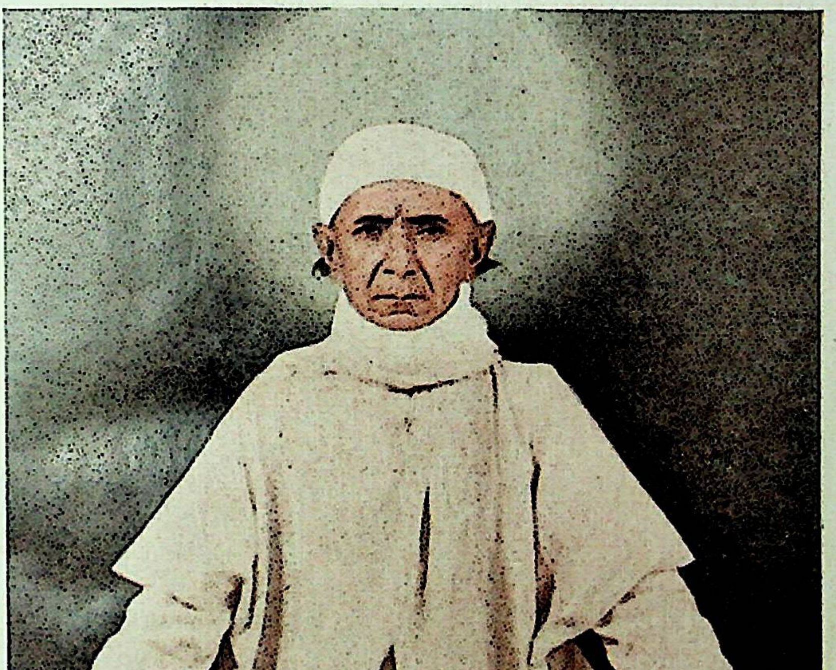

पूज्यपाद श्रीमत्स्वामी लीलाशाह जी महाराज
के
कर कमलों में

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्मति

हिन्दीभाषाभाषी, ब्रह्मनिष्ठ, पंडितप्रवर स्वामी श्रीनिश्चलदासजी महाराजसे अपरिचित नहीं होंगे। वे संस्कृतके प्रकाण्ड पंडित थे फिर भी उन्होंने अपनी दो विख्यात रचनाएँ "विचार सागर" और "वृत्ति प्रभाकर" हिन्दी भाषामें लिखीं। ये तीनों पुस्तकें अपने विषयमें बेजोड़ हैं। उसी विचारसागर ग्रन्थका आश्रय लेकर विचारसागरदर्पण का संकलन स्वामी मनोहरदासजीने किया है।

"विचारसागरदर्पण" 'विचारसागर' का ही रूपान्तर है। विचारसागरकी भाषा प्राचीन पद्धतिकी है। आधुनिक हिन्दीको पढ़नेवाले व्यक्ति, उसके पढ़ने तथा समझनेमें कठिनाई अनुभव करते हैं। उक्त कठिनाईके निवारणके लिए ही स्वामी मनोहरदासजीने यह प्रयास किया है। आपने "विचार सागर" के गद्य-भागको आधुनिक हिन्दीमें अनुदित कर सर्व-साधारण को समझनेका पथ प्रशस्त कर दिया है।

इसका नामकरण भी अन्वर्थ ही समझना चाहिए। जैसे दर्पणमें व्यक्ति अपने प्रतिबिम्वको स्पष्टरूपमें देख सकता है उसी तरह इस दर्पणमेंभी "विचार-सागर" का प्रतिबिम्ब सम्यक्तया देखा जा सकता है। "विचारसागर" का पद्य भाग प्रायः छोड़ दिया गया है। उसमेंसे बहुत कम इस दर्पण में स्थान पा सका है। गद्य भागका भी कहीं कहीं पूरा का पूरा अनुवाद नहीं कर, भावानुवाद किया गया है। जिससे उपयुक्त

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

संदर्भको समझनेमें तो कमी रहे नहीं तथा विस्तारका कुछ संक्षेप हो जाय।

जो सज्जन 'वेदान्त दर्शन' के अद्वैत-सिद्धान्त जाननेकी आकांक्षा रखते हैं उनके लिए दर्पण, दर्पणवत् ही परम सहायक सिद्ध होगा। स्वामी निश्चलदासजी महाराजने इस ग्रन्थका निर्माण इसी उद्देश्यसे किया था कि जो जो जिज्ञासु संस्कृत भाषाको न समझनेके कारण वेदान्त-सिद्धान्तके ज्ञान से विहीन रह जाते हैं उनकी कठिनाई इस ग्रन्थसे सर्वथा दूर हो जाय। उसी ग्रन्थकी भाषा-सम्बन्धी कठिनाईका परिहार कर स्वामी मनोहरदासजीने आध्यात्मिक-ज्ञान-जिज्ञासुओंके लिए बहुत उपादेय कार्य सम्पन्न कर दिया है। तदर्थ स्वामी मनोहरदासजी उन सभीके धन्यवादार्ह हैं। मैं आत्म-जिज्ञासुओंसे निवेदन करता हूँ कि वे इस 'विचारसागरदर्पण' का अवश्य अध्ययन मनन कर अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करें। हरि ओ३म्।

सं. २०१० फा. शु. २—शुक्र
श्रीदादूमहाविद्यालय—जयपुर

मंगलदास स्वामी
(संचालक श्रीदादूमहाविद्यालय-जयपुर)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्मति

संसारमें प्राणी-मात्र सुख-प्राप्तिकी चेष्टा आमरण करता रहता है। अधिकांश लोगोंको जीवनावधि समाप्त होने तक इस सत्यका ज्ञान नहीं होता कि शाश्वत सुख अथवा प्रापंचिक दुःखोंसे निवृत्ति ऐहिक-वस्तु-विषय-भोगसे नहीं मिल सकती। परन्तु कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनको कि संसारके क्षणभंगुर सुखोंका अनुभव करनेके पश्चात् उनकी दृष्टि जीवन-पूर्तिके लक्ष्यकी ओर जाती है। ऐसे लोगोंके लिए महात्मा मनोहरदासजी द्वारा लिखित "विचार-सागरदर्पण" बहुत हितकर होगा। इस ग्रन्थमें लेखकने वेदान्त-सारको प्रश्नोत्तरके रूपमें सात पाठोंमें वाचकोंके सम्मुख प्रस्तुत किया है।

जैसाकि महात्माजी आरम्भमें ही कहते हैं:—"इस ग्रन्थका विषय जीव और ब्रह्मकी एकता है" इस छोटें ग्रन्थका रूप व्यापक है। गीता, उपनिषद्, योग-शास्त्र, रामायण, और महाभारत इन सब ग्रन्थोंका सार इसमें पाया जाता है। दर्शन-शास्त्रके भिन्न भिन्न मतवादियों—जैसे साँख्य, द्वैतवादी और नैयायिकोंकी महात्माजीने मार्मिक आलोचना की है। विषय गूढ़ होते हुए भी लेखकने अपनी सरल तथा ओजस्वी लेखन-शैलीसे व्यावहारिक दृष्टाँतों द्वारा प्रकाश डाला है। स्वस्थ शरीर धर्मका सबसे बड़ा साधन है; इस उक्तिके अनुसार महात्माजीने एक अध्यायमें आत्म-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जिज्ञासुके लिए मिताहार, व्यायाम, योगासनाभ्यास इत्यादि अनुशासनके विषय संक्षिप्त रूपमें समझाए हैं।

भाषा शुद्ध, सुन्दर और सरल है। स्थान स्थान पर गूढ़ शब्दोंका अनुवाद दिया हुआ है।

मुझे विश्वास है कि महात्माजीकी रचना, उन कार्य-ग्रस्त लोगोंके लिए जिनको वेदोपनिषद् आदि मूल ग्रन्थोंको पढ़नेका अवकाश नहीं मिलता या जिनको संस्कृत भाषाका पर्याप्त ज्ञान नहीं है, उनके लिये यह अत्यन्त ही लाभदायक सिद्ध होगी।

आ० द० पण्डित
मुख्य आयुक्त (चीफ़ कमिश्नर)
अजमेर

अजमेर
ताः २१-१-१९५४

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्मति

श्रीस्वामी मनोहरदासजी महाराजने विचारसागरके आधारपर विचार-सागर-दर्पण नामके ग्रन्थकी रचना की है। यह ग्रन्थ अपने नामके यथार्थ अर्थको प्रकट करता है। विचार-सागरमें आये हुए तत्त्वको स्पष्ट-रूपमें देखने (जानने) के लिए सचमुच यह ग्रन्थ दर्पणका काम करता है। इसमें ग्रन्थ-कर्त्ताकी स्पष्ट प्रतिपादनकी शैली और अद्भुत बुद्धिका कौशल देखते ही बनता है। यह ग्रन्थ वेदान्त के अनुरागियोंको इतना प्रिय लगा कि थोड़े ही दिनोंमें इसका प्रथम प्रकाशन समाप्त हो गया। अब जब द्वितीय प्रकाशन होने लगा, तो स्वामी मनोहरदासजीने ही उसके पुनः संशोधन आदिका कार्य स्वयं अपने हाथमें लिया। विचार-सागर-दर्पण के पुनः प्रकाशनके अवसरपर विचार-सागरमें आये हुए दृष्टि-सृष्टि-वादके प्रसंगको लेकर स्वामी मनोहरदासजीने एक निबन्ध लिखा। प्रथम उनका विचार था, कि इस निबन्धको टिप्पणीके रूपमें ही दिया जाय। परन्तु दृष्टि-सृष्टि-वाद नामक निबन्धका इतना विस्तार हो गया, कि एक दूसरी पुस्तिकाका उसने रूप धारण कर लिया। अतः यह निश्चय हुआ कि इस निबन्धको 'दृष्टि-सृष्टि' नामसे ग्रन्थके अन्तमें जोड़ दिया जावे। इस निबन्धको आदिसे अन्त तक हमने बड़े ग़ौरसे देखा। यह 'दृष्टि-सृष्टि' नामक निबन्ध जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। क्योंकि वेदान्तके इस प्रमुख सिद्धान्त दृष्टि-सृष्टि-वादको यथार्थरूपमें न समझनेके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कारण जिज्ञासुओंकी बुद्धि प्रायः उलझनमें पड़ जाया करती है। क्योंकि दृष्टि-सृष्टि-वादको सुनकर जीवकी दृष्टिसे ही सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है, ऐसा दृष्टि-सृष्टि-वादका ग़लत अर्थ जिज्ञासु मान बैठते हैं। और यह बात हृदयमें उतरती नहीं है; क्योंकि जिज्ञासु सोचने लगता है कि ईश्वरकी यह महान् सृष्टि जीवकी दृष्टि-मात्र कैसे हो सकती है। इस संशयको दूर करते हुये दृष्टि-सृष्टि-वादका यथार्थ अर्थ इस निबन्धमें बतलाया गया है, कि जीवकी सृष्टि जीवकी दृष्टिसे उत्पन्न है, ईश्वरकी सृष्टि जीवकी दृष्टिसे उत्पन्न नहीं है। ईश्वरकी सृष्टि प्रथम है, और जीवकी दृष्टि अर्थात् उसका ज्ञान बादमें होता है, इसलिए ईश्वरकी सृष्टि जीवके लिये सृष्टि-दृष्टि है, और जीवकी सृष्टि ही जीवकी दृष्टिके समकाल है, अथवा जीवकी दृष्टि ही जीवकी सृष्टि है। इस रहस्यको जानकर जीव अपनी सृष्टिसे मुक्तिको प्राप्त कर सकता है; क्योंकि जीवकी सृष्टि ही जीवके लिए बन्धनरूप है; ईश्वरकी सृष्टि बन्धनरूप नहीं है।

मैं आशा करता हूँ कि यह निबन्ध जिज्ञासुओंको अत्यन्त प्रिय होगा, और इससे उनका मोक्षका मार्ग बिल्कुल साफ़ हो जायगा। इसलिये इस निबन्धमें मेरी पूर्ण शुभ सम्मति है।

सबका अपना आप
स्वामी गणेशानन्द

प्रतिष्ठापित

स्वामी प्रेमपुरीजी सत्संग मंडल
१२ ए, सत्संग मंडल १० लिटिल गिब्स रोड,
हैंगिग गार्डन, मलबार हिल, बम्बई ६

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्मति

वेदान्तकी प्रक्रियाओंको साधारण लोगोंके हृदय तक पहुंचानेका श्रीनिश्चलदासजी महाराजका सफल प्रयत्न वेदान्त-जगत्में कोई अविदित वस्तु नहीं है । श्रीनिश्चलदासजी के समकालके लोगोंके लिये आपकी कृति जिस प्रकार सरल रही, यह आधुनिक लोगोंके लिये भाषा-परिवर्तनके कारण तो यद्यपि नहीं रही फिर भी संस्कृतानभिज्ञोंके लिये जैसे वह सुगम है वैसे तो संस्कृत ग्रन्थ नहीं ही हैं यह तो निर्विवाद है । परन्तु आधुनिक परिमार्जित हिन्दीमें उसकी आवश्यकता अनुभव करनेवालोंका एक बड़ा भारी अभाव सामने आता था, जिसके लिए श्रीस्वामी मनोहरदासजीने इस प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन किया; जिसे देखकर हमें बड़ा ही आनन्द हुआ । नामानुकूल ग्रन्थका गुण होना यह लेखकका एक विशिष्ट कौशल माना जाता है और वह चीज़ हमने इस विचार-सागर-दर्पणमें पाई । दर्पण, जो वस्तु होनेपर भी न दीखे उस वस्तु को अभिव्यक्त करनेका काम करता है ; जैसे हम अपने मुखको स्वतः नहीं देख पाते और दर्पणके द्वारा मुखके आकार-प्रकारादि समझलेते हैं । जिस दर्पणमें ठीक ठीक प्रतिबिम्ब उतरे वही दर्पण विशिष्ट होता है यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इसी लौकिक नियमका अनुसरण करता हुआ यह विचार-सागरदर्पण भी विचारसागर ग्रन्थका पूरा प्रतिबिम्ब लेता हुआ अपनी नामानुकूल विशिष्टताको रखता है, यह बात पाठकोंके लिये अविदित नहीं होगी ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कुछ विशेषता भी इस ग्रन्थमें हमने देखी। वह यह है कि विचारसागर मूलग्रन्थमें क्वचित्क्वचित् विशेष-प्रयोजन-सहित प्रतीत न होनेवाले जो अंश रहे हैं, उन्हें दूसरे ढंगसे लगाकर विशेष उपयोगी बनाया है एवं क्वचित् संक्षिप्त-तया लिखित भागको विस्तृत रूप दे दिया गया है। और विचारसागरमें आए हुए दृष्टि-सृष्टि-वादको अधिक सरलरूप से व विस्तारसे समझानेके लिए आपने इस ग्रन्थके अन्तमें 'दृष्टि-सृष्टि' नामक छोटासा ग्रन्थ लिखकर जिज्ञासुओंके लिये बहुत हितकर कार्य किया है। विचारसागरमें यह अत्यन्त संक्षिप्त-रूपसे बताया गया है परन्तु 'दृष्टि-सृष्टि' में इसे विशदरूपसे समझाया गया है। यद्यपि 'दृष्टि-सृष्टि' ग्रन्थमें लिखित दृष्टि-सृष्टि-वादमें और प्राचीन आचार्योंके दृष्टि-सृष्टि-वादमें कुछ अन्तर अवश्य मालूम पड़ता है; फिर भी **"यया यया भवेत्पुंसाँ व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि। सा सैव प्रक्रिया साध्वी ज्ञेया सा च व्यवस्थितिः॥"** इस वार्तिक-वचनके अनुसार मुमुक्षु-विशेषके लिये यहाँपर लिखित प्रक्रिया भी उपयोगी है यह निश्चित है; अतः इसके औचित्यानौचित्यको लेकर खण्डन-मण्डनादिकी आवश्यकता नहीं है। 'दृष्टि-सृष्टि' के अन्दर, साधारण लोगोंके दिमाग़में भी दृष्टि-सृष्टि-वाद जच जाय, ऐसा तरीका निकालनेका प्रयास हुआ है; अत एव यह प्रशंसनीय है। हमें विश्वास है कि इससे भी मुमुक्षुओंका बड़ा हित होगा।

शिवरात्रि २०१५

स्वामी काशिकानन्द
न्याय-वेदान्ताचार्य

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ओ३म्

दो शब्द

मैंने श्रीविचारसागरदर्पणको पढ़ा है। इसमें कोई संशय नहीं है कि लेखकने परिश्रम करके, मूल विचार-सागर का निचोड़ निकालकर इस पुस्तकमें भर दिया है। इससे जिज्ञासु सज्जनोंका अत्यन्त हित होगा ; और जिन जिज्ञासुओं को मूल विचारसागरके अध्ययन करनेमें जो भी कठिनाइयां आती हैं, वे सब इस दर्पणके पढ़ने व विचार करनेसे दूर हो जाँयगी। अतः यदि इस पुस्तकके पढ़नेके बाद, मूल विचार-सागरका अध्ययन करना होगा तो सम्भव है कि श्रीमूलविचार-सागर शास्त्रके अभिप्रायका सुगम रीतिसे ग्रहण हो सकेगा। श्रीमूलविचारसागर * हिन्दीमें श्रीस्वामी निश्चलदासजी

*धन्य हैं श्री स्वामी निश्चलदासजी महाराज जिन्होंने हिन्दी भाषाके जाननेवाले आत्म-ज्ञानके इच्छुक मुमुक्षु सज्जनोंके लिए अति उत्तम वेदान्तका सुन्दर ग्रन्थ बनाया है, जिसके समान हिन्दीमें वेदान्तका ऐसा अद्भुत ग्रन्थ कोई भी नहीं है।

श्रीरवीन्द्रनाथकी आत्म-कथामें लिखा है कि जिसका स्वयं अच्छी तरहसे अनुभव किया है उसे यदि दूसरोंके लिए अनुभव-गम्य बना दिया जाय तो लोग उसका सम्मान करते हैं। अपनी स्मृतिमें जो चित्रके रूपमें खिल उठा है उसे शब्दोंमें यदि खिला दिया जाय तो वह साहित्यमें स्थान ग्रहण करनेके योग्य बन जाता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

महाराजने रचा है। जो महान् विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ थे। इस शास्त्रमें वेदान्तकी प्रक्रियासे अनेक युक्तियों द्वारा वेद शास्त्रों के सार 'जीव ब्रह्मकी एकता' का अच्छी प्रकारसे कथन किया गया है। जिसके अध्ययन करनेसे अधिकारी सज्जनोंकी वृत्ति वास्तवमें ब्रह्माकार हो जाती है; अतः केवल यह पुस्तक (विचारसागरदर्पण) पढ़कर सन्तोष करके बैठ जाना ही पर्याप्त नहीं, प्रत्युत श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराजके रचे हुए श्रीविचारसागर ग्रन्थका किसी आत्म-अनुभवी महानुभाव दिव्य-दृष्टिवाले दयालुसे अधिकारी जनोंको अध्ययन करना उचित है। श्रीविचारसागर हिन्दी भाषाके अतिरिक्त, इङ्गलिश, उर्दू, गुजराती, सिन्धी, तेलगु, तामील, कन्नड़ी इत्यादि भाषाओंमें भी प्रकाशित हुआ है।

मन्दसौर (मध्यभारत)

(स्वामी) लीलाशाह

संवत् २०१० पौष कृष्णा सप्तमी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भूमिका

'श्रीविचारसागरदर्पण' की भूमिका लिखनेके लिए मुझसे कहा गया। इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूँ। मैं एक साधारण गृहस्थी हूँ। इसकी भूमिकाके लिए किसी विद्वान्, ज्ञानी, योगी या तपस्वीका चुनाव होना चाहिए था। इन सब योग्यताओंके अभावमें मेरे दो शब्दोंका क्या मूल्य होगा, यह मैं नहीं जानता। दर्पणके प्रकाशकोंका मेरे प्रति प्रेमपूर्ण पक्षपात ही इसका जुम्मेदार है। अस्तु।

मैंने इस पुस्तकको कहीं-कहीं ध्यानसे और अधिकाँश सरसरी तौर पर देखा। मुझे कहना चाहिए कि यह 'गागर में सागर' भरनेका काफी सफल प्रयत्न है। ज्ञान-ग्रन्थोंमें स्वामी श्रीनिश्चलदासजीके 'विचार-सागर' का बड़ा महत्त्व है। इतनी सरल भाषामें वेदान्तका साँगोपाँग वर्णन शायद ही किसी दूसरेने किया हो। उसका भी यह 'दर्पण' है, जिसको श्रीस्वामी मनोहरदासजीने बड़ी योग्यता और परिश्रमसे जिज्ञासु और साधकोंके लिए तैयार किया है। उन्होंने, जहाँ तक बुद्धिकी पहुंच है, यह समझानेका प्रयत्न किया है कि सब में एक ही आत्माका निवास है। साधक-बाधक सभी दृष्टियों से इस तथ्यका निरूपण किया है। जहाँ तक बुद्धिके परे, अनुभव का सम्बन्ध है, योग और योगाभ्यासका भी यथोचित विवेचन किया गया है, जिससे ब्रह्मप्रप्तिके इच्छुकोंको काफी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सहायता मिलेगी । ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मप्राप्ति दोनोंके इच्छुकों के लिए यह पुस्तक अच्छी मार्ग-दर्शिका सिद्ध होगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है ।

आत्म-ज्ञान और आत्म-साधना केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि व्यावहारिक जीवनमें सफलता पानेके लिए भी आत्म-सुखके लिए नहीं, साँसारिक या व्यावहारिक सुखके लिए भी आवश्यक है । जो इन दोनोंको एक दूसरेसे पृथक् मानते हैं वे मेरी समझसे, भूल करते हैं । जिसे हम व्यावहारिक या साँसारिक जीवन कहते हैं वह आत्मिक जीवनका बाह्य या लौकिक रूप ही है । जिस प्रकार मनकी उपेक्षा करके शरीरकी साधना नहीं की जा सकती उसी प्रकार आत्माकी उपेक्षा करके लोक-व्यवहार सफलता-पूर्वक नहीं चलाया जा सकता । आत्म-सिद्धिके बाद मनुष्य, समाज, राष्ट्र और संसारका काम चलानेके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है, इसलिए भी ऐसे ग्रन्थोंका पठन और मनन न केवल साधु बल्कि प्रत्येक विद्यार्थी और गृहस्थके लिए भी आवश्यक है । इस उद्देश्यकी सिद्धिमें यह ग्रन्थ बहुत हद तक सहायक होगा, ऐसा मुझे विश्वास है ।

आशा है, इस ग्रन्थको अपनाकर हिन्दीके पाठक, स्वामी श्रीमनोहरदासजीको ऐसे और भी उपयोगी ग्रन्थ सरल भाषामें लिखनेकी, प्रेरणा देंगे '

Chief Minister's Residence AJMER ९ मार्च १९५४	हरिभाऊ उपाध्याय मुख्य मंत्री अजमेर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्राक्कथन

इस विचारसागरदर्पणके प्रकाशित होनेका श्रेय अजमेरकी जनताको है। मैं अजमेरमें सन् १९५३ के तृतीय मासमें आया था। श्रीसद्गुरु स्वामी श्रीलीलाशाहजी महाराजजीकी आज्ञानुसार, आनासागरकी बारहदरीपर गीता व विचारसागर का प्रवचन होने लगा। यहाँकी जनताको वेदान्तमें रुचि रखते हुए देखकर, जोधपुरसे मूल विचारसागर मंगवाकर बाँटे गए। इस प्रकार जब सत्संगियोंमें विचारसागरका प्रचार होने लगा तब उनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि यह विचारसागर सरल, खड़ी भाषामें व व्यावहारिक दृष्टान्तोंसे स्पष्ट करते हुए यदि मेरे द्वारा लिखा जाय तो अच्छा हो। इस प्रकार अजमेर-वासियोंकी इच्छा व भगवत्प्रेरणासे मैंने इस कार्यको हाथमें लिया और यथाबुद्धि इसे सरल व स्पष्ट बनानेका प्रयत्न किया है।

विचारसागर दो भागोंमें है। एक पद्य भाग दूसरा गद्य भाग। गद्य भाग पद्य भागसे बड़ा है। जो पद्य भागमें है उस सारेको महात्मा श्रीनिश्चलदासजीने विस्तारपूर्वक गद्य-भागमें लिख दिया है। अतः यदि कोई श्रीविचारसागरका केवल पद्य भाग पढ़े तो उसे विचारसागरका पूरा बोध नहीं होगा किन्तु यदि केवल गद्य भाग पढ़ा जाय तब तो उस एक भागसे भी पूरा बोध हो सकता है। इसी कारण व ग्रन्थके बड़े होनेके भयसे हमने पद्य भागको संपूर्णतया न लेते हुए गद्य भागको ही लिया है। इसमें जहाँ शास्त्रार्थके कठिन स्थल आते हैं, जो जन-साधारणके बुद्धिगम्य नहीं हैं, उनका साराँश लेनेका ही प्रयत्न किया है। पाँचवें तरङ्गके स्त्रीनिन्दा आदि स्थानोंको वैसेका वैसा न लेते हुए उसके वास्तविक अभिप्राय वैराग्य व

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मचर्यका ही वर्णन किया है। कहीं कहीं मुख्य प्रसंगोंको और अधिक स्पष्ट व प्रामाणिक बनानेके लिए व्यावहारिक दृष्टान्त व गीता, रामायण, उपनिषद्, पंचदशी आदि ग्रन्थ शास्त्रोंके मूल प्रमाण भी दिये गए हैं। प्रयत्न तो यही किया गया है कि जिस वेदान्त दर्शनको लोग कठिन समझते हैं तथा जिस दर्शनके नाते विदेशी भी भारतको मानते हैं, जैसे डाक्टर गोल्डस्टकर (Dr. Goldstuker) ने लिखा है कि- "The Vedant is the sublimest machinery set into motion by oriental thought" अर्थात् वेदान्त सबसे ऊँचे दर्जेका यन्त्र है, जिसे पूर्वीय विचार-धाराने प्रवृत्त किया है; वह वेदान्त दर्शन साधारण जनताको सरलतासे समझमें आजाय।

इस कृतिमें मैं कितना सफल हुआ हूँ इसका निर्णय तो आप पाठकगण ही करेंगे।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः॥

इस उक्तयनुसार त्रुटियोंका होना असम्भव नहीं है; अतः जिन इतरहितचिन्तक विद्वान् महात्माओंको कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो, वे कृपया इस पुस्तकके पतेपर सूचित करके अनुगृहीत करेंगे; जिससे द्वितीय संस्करणमें उन अशुद्धियोंको परिमार्जित करनेका प्रयास किया जाय।

इस श्रीविचारसागरदर्पणसे किसी एकको भी यदि आत्म-ज्ञान हो गया तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

इति शुभम्

अजमेर—संवत् २०१०
माघ शुक्ला त्रयोदशी

मनोहरदास स्वामी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

—द्वितीय संस्करणका—

प्राक्कथन

श्रीविचार-सागर-दर्पणको जिज्ञासुजनोंने बड़े उत्साह व श्रद्धासे अपनाया। इस बातसे अपने परिश्रमके साफल्यको देखकर, चित्त प्रसन्न हुआ तथा अन्य सेवा करनेका उत्साह मनमें जागृत हुआ। उसके फलस्वरूप तथा दृष्टि-सृष्टि-वाद जैसे गम्भीर सिद्धान्तको सुलझाकर सरल करनेके भावसे व जिज्ञासुजनोंके प्रारब्धानुसार ईश्वरीय प्रेरणासे, इस सिद्धान्त पर कुछ लिखनेका संकल्प हुआ। और वह संकल्प आप लोगों के समक्ष, इस श्रीविचार-सागर-दर्पणके अन्तमें छपे हुए 'दृष्टि-सृष्टि' नामक छोटी पुस्तिकाके रूपमें सम्पूर्ण हुआ है।

इस छोटेसे ग्रन्थमें भिन्न भिन्न दृष्टिकोणसे दृष्टि समकाल-सृष्टिः, दृष्टि-रेव-सृष्टिः तथा सृष्टि-दृष्टिः इन तीनों सिद्धान्तोंका समन्वय करनेका ही प्रयास किया है। जिन मान्यताओं के कारण, यह दृष्टि-सृष्टि-सिद्धान्त केवल कल्पना-मात्र प्रतीत होता था उन मान्यताओंको पूर्वपक्ष-द्वारा स्पष्ट करते हुए, उत्तर-पक्षमें उसके वास्तविक मर्मको समझानेका प्रयास किया है।

यदि एक भी जिज्ञासुको यह दृष्टि-सृष्टि-वादका सुलझाया हुआ स्वरूप हृदयङ्गम हो गया तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

इति शिवम्

अजमेर—संवत् २०१६
आश्विन कृष्णा द्वितीया

स्वामी मनोहरदास
१९-९-१९५९.

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ॐ

—तृतीय संस्करणका—

प्राक्कथन

श्रीविचार-सागर-दर्पणका प्रथम संस्करण छः वर्षोंमें बिक गया था। परन्तु द्वितीय संस्करण तो चतुर्थ वर्षमें पाँव रखते रखते ही जिज्ञासुओं द्वारा इतना शीघ्र अपनाया गया कि जो मुझे इन्दौर और भोपालकी यात्रा बहुत जल्दी समाप्त करके तुरन्त अजमेर आना पड़ा। इससे सिद्ध होता है कि ज्यों ज्यों समय बीतता है त्यों त्यों श्रीविचार-सागर-दर्पण की सरलतामयी महत्ताकी मुहर जिज्ञासुजनोंके हृदय-पटलपर अपना चिन्ह छोड़ती जा रही है। कुछ दयालु सन्त महापुरुषों के पत्रोंसे ज्ञात होता है कि वे भी अपने जिज्ञासुओंको श्रीविचार-सागर-दर्पण पढ़ाते समय काफी सरलताका अनुभव करते हैं। इस प्रकार जिज्ञासु तथा महात्माओं द्वारा दर्पणका इतना स्वागत देखकर हृदयको सन्तोष होता है कि परिश्रम सफलताकी सोपानका समारोहण कर रहा है।

'दृष्टि-सृष्टि' नामक पुस्तिकाका भी वेदान्त-जगत्ने अच्छा स्वागत किया है; इससे भी चित्त सन्तुष्ट है। एक महात्माजीने प्रेरणा दी कि इस 'दृष्टि-सृष्टि' नामक लघु ग्रन्थको श्रीविचार-सागर-दर्पणसे अलग भी यदि किया जाय तो दृष्टि-सृष्टि-वादके विशेष जिज्ञासुओंको अधिक लाभ होगा। इसलिए अबके तृतीय संस्करणमें कुल ३००० तीन

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हज़ार पुस्तकें छपवाई हैं। जिनमेंसे २००० का तो दर्पण और 'दृष्टि-सृष्टि' दोनोंका इकट्ठा जिल्द बन्धवाया है बाकी १००० एक हजारकी अलग अलग जिल्द करवाई है। जिससे सभीको खरीदनेमें सुविधा हो सके। श्रीविचार-सागर-दर्पणके अन्तमें छपे हुए 'दृष्टि-सृष्टि' नामक इस लघु ग्रन्थको यद्यपि पूर्व-पद्धत्यनुसार कथित दृष्टि-सृष्टि-वादके संस्कारोंसे संस्कृत कुछ सज्जनोंको आपातरूपसे इस ग्रन्थको पढ़नेसे विरोधाभासका प्रतीत होना असंभव नहीं है; परन्तु यदि धैर्य-पूर्वक निष्पक्ष-भावसे तटस्थ होकर ऊहापोहात्मकरूपसे इसका अध्ययन किया जाय तो विरोधाभासका परिहार होकर समन्वयका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जायगा।

कुछ साधक इस वादको समझनेके लिए अनिर्वचनीय ख्यातिकी उपेक्षा करके आत्म-ख्यातिका सहारा लेकर उलझ जाते हैं। वास्तवमें इस दृष्टि-सृष्टि-वादका मूल स्रोत ही अनिर्वचनीय ख्याति है। भला मूलको काटकर फलकी आशा रखना कैसे उचित हो सकता है? संसारको बुद्धिका खेल मानना आत्म-ख्यातिरूपी बौद्धमतकी शरणमें जाना है। कुछ लोग इसे इष्टापत्ति मानकर अनिर्वचनीय ख्यातिकी अवहेलना करते हैं; वे दूसरे शब्दोंमें जगत्को मायाका परिणाम न मानकर व्यष्टि बुद्धिका ही परिणाम मानते हैं। इससे आनेवाले अनेक दोषोंका निरूपण इस लघु ग्रन्थमें किया गया है। वास्तवमें यह अनिर्वचनीय ख्यातिही जगत्के मिथ्यात्वको स्पष्ट करती हुई, दृष्टि-सृष्टि-वादके गुप्त रहस्य का उद्घाटन करती है। और उद्घाटित दृष्टि-सृष्टि-वाद ही अजात-वादको मुखरित करता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आशा है जिज्ञासुजन धैर्य-पूर्वक इस दृष्टि-सृष्टिका अवगाहन करके दृढ़ अपरोक्ष जगन्मिथ्यात्वका निश्चय प्राप्त करके एक अखण्ड अस्ति-भाति-प्रियरूपसे व्यापक सच्चिदानन्दघन परब्रह्मरूपसे स्थितिरूप परम पदको प्राप्त करके निज मानव जीवनको सफल करेंगे।

अबके इस तृतीय संस्करणमें श्रीविचार-सागर-दर्पणके प्रथम तरंगका कलेवर भी बढ़ाया गया है। यही इस संस्करणकी विशेषता है। पहले कुछ जिज्ञासु लोग यह प्रार्थना करते रहे कि प्रथम तरंग बढ़ाना चाहिए इसलिए तथा अन्य जिज्ञासुओंके भी संस्कार-वशात् ईश्वरीय प्रेरणा से प्रथम तरंग आशासे भी अधिक बढ़ गया है। इस पुस्तक का नाम दर्पण ही तो ठहरा। जैसे नतोदर दर्पण (Concave Mirror) में मुख बड़ा दिख जाता है, उसी प्रकार इस प्रथम तरंगमें श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराजका आन्तरिक भाव विस्तारको प्राप्त हो गया है। पहलेके दो संस्करणोंमें प्रथम तरंगके जो जो विषय छूट गए थे उन सभी विषयोंका सरल एवं विस्तृतरूपसे वर्तमान संस्करणमें प्रवेश हो गया है।

"अन्तरंग धारै तजै बहिरंगनको संग।"

इस पंक्तिका स्पष्टीकरण विस्तार-पूर्वक हुआ है। सगुण भेद-भक्ति तथा भेद-मूलक यज्ञादि कर्मोंका आत्म-ज्ञानसे सम-समुच्चय अर्थात् एक साथ मेल नहीं हो सकता, इस रहस्यका उद्‌घाटन, राम-गीता, शिव-गीता, देवी-गीता, उत्तर-गीता, भगवद्‌गीता, सनत्सुजातीय पंचदशी व पाराशर-स्मृति आदि अनेक ग्रन्थोंके प्रमाण देकर पर्याप्त परिश्रम-पूर्वक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

किया गया है। इससे यह पूर्णरूपसे स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि आत्मा और ब्रह्मके एकत्वका ज्ञान ही मोक्षका दाता है। शेष निष्काम कर्म व निष्काम उपासना आदि चित्त-शुद्धिके साधन हैं।

अत एव यह तृतीय संस्करण पहलेके संस्करणोंसे बड़ा एवं विशेष उपयोगी बन गया है। इसी कारण जिनके पास प्रथम संस्करण हैं उनके लिए भी यह संस्करण ग्राह्य रहेगा।

और इसलिए पृष्ठ-संख्या बढ़ जानेसे तथा काग़ज आदिके महंगे हो जानेके कारण अबके मूल्य पहलेसे बढ़ गया है।

आशा है इस विस्तृत संस्करणसे जिज्ञासुजन अपने मार्गका सुगमतासे सही परिचय प्राप्त करके, अन्य बहिरंग साधनोंसे हटकर वेदान्तके श्रवण मनन व निदिध्यासन-द्वारा आत्म-स्वरूप परमात्माका साक्षात्कार प्राप्त करके मानव ज़न्मके चरम लक्ष्य मोक्ष पदको प्राप्त करनेमें सफल होंगे।

इस प्रथम तरंगकी विस्तृत व्याख्यासे यदि किसी एक भी जिज्ञासुके हृदयमें ज्ञानकी गरिमा अंकित हो जाय और वह ज्ञान-मार्गपर चलकर आत्म-स्थितिको प्राप्त करले तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

अन्तमें मैं जिज्ञासुजनोंकी ब्रह्मनिष्ठाकी कामना करता हुआ इस प्राक्कथनको समाप्त करता हूँ।

इति शम्

अजमेर संवत् २०२०
अधिक आश्विन कृष्णा द्वितीया

स्वामी मनोहरदास
५-१०-१९६३

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्री-विचार-सागर-दर्पण

की

❋ विषय-सूची ❋

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	वस्तु-निर्देश-रूप-मंगलाचरण	.... १- ४
	॥ प्रथम तरंग ॥ (अथ अनुबन्ध-सामान्य-निरूपणम्)	
२	अनुबंधोंमें अधिकारीका वर्णन	.... ५- ६
३	ज्ञानके अन्तरंग साधन	.... ७-४३
४	संबंध और विषयका वर्णन	.... ४४
५	प्रयोजनका वर्णन	.... ४५
६	ग्रन्थके प्रयोजनमें शंका और समाधान	.... ४६-४९
७	आशिर्वादरूप मंगलाचरण	.... ५०
८	व्यावहारिक प्रणामका मंडन	.... ५१
९	आचार्य द्वारा ग्रन्थका अध्ययन कर्त्तव्य है	.... ५२
	॥ द्वितीय तरंग ॥ (अथ अनुबन्ध-विशेष-निरूपणम्)	
१०	अधिकारी खण्डन	.... ५३
११	अधिकारी-मण्डन	.... ५४
१२	आत्म-ज्ञानसे दुःखोंकी निवृत्ति	.... ५५
१३	अधिकारी-मण्डन	.... ५६
१४	मोक्षको सब चाहते हैं	.... ५७
१५	विषयका खण्डन और मण्डन	.... ५८
१६	साक्षी और ब्रह्मकी एकता	.... ५९-६०

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या विषय	पृष्ठ-संख्या
१७ संसारके मिथ्यापनेमें शंका	.... ६१
१८ शंकावादी—संसार मिथ्या नहीं है	.... ६२-६३
१९ शंकावादी—कर्मसे मोक्ष	.... ६४-६५
२० सिद्धान्ती—संसार मिथ्या है	.... ६६-६९
२१ कर्मसे मोक्ष नहीं हो सकता	.... ७०
२२ मोक्षका साधन केवल ज्ञान है	.... ७१
२३ इस ग्रन्थका आरम्भ सफल है	.... ७२

॥ तृतीय तरंग ॥

(अथ गुरु-शिष्य-लक्षण तथा गुरु-भक्ति-प्रकार-निरूपणम्)

२४ गुरु और शिष्यके लक्षण	.... ७३
२५ गुरुके लक्षण	.... ७४
२६ गुरु-भक्ति-प्रकार	.... ७५

॥ चतुर्थ तरंग ॥

(अथ उत्तमाधिकारी-उपदेश-निरूपणम्)

२७ शुभसंततिके तीन पुत्रोंकी कथा	.... ७६
२८ गुरु-मिलन	.... ७७
२९ मोक्षकी इच्छा भ्रान्तिसे होती है	.... ७८
३० आत्मा परमानन्द-स्वरूप है	.... ७९
३१ ज्ञानी भी कभी कभी आत्मविमुख होता है	.... ८०
३२ वास्तवमें संसार कहीं है ही नहीं	.... ८१
३३ असत्-ख्याति और आत्म-ख्याति	.... ८२
३४ अन्यथा-ख्याति और अख्याति	.... ८३
३५ अख्यातिका खण्डन	.... ८४
३६ अनिर्वचनीय-ख्याति	.... ८५-८९
३७ यह संसार अनिर्वचनीय है	.... ९०
३८ संसारका आधार व अधिष्ठान कौन है ?	.... ९१

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय		पृष्ठ-संख्या
३९	संसारका आधार व अधिष्ठान आत्मा है	....	९२
४०	सारे कल्पितका अधिष्ठान ही द्रष्टा है	....	९३
४१	मोक्षका साधन केवल आत्म-ज्ञान है	....	९४
४२	मैं ब्रह्म कैसे हूं ?	....	९५
४३	जीव, कूटस्थ, ईश्वर व ब्रह्म सभी एक हैं	....	९६
४४	घटाकाश व जलाकाश	....	९७
४५	कूटस्थ व जीवका वर्णन	....	९८- ९९
४६	मेघाकाशका वर्णन	....	१००
४७	ईश्वरका वर्णन	....	१०१
४८	जीव-ईश्वरमें भेदकी प्रतीति क्यों ?	....	१०२
४९	जीव-ईश्वरकी एकता किस दृष्टिसे है	....	१०३
५०	जीव-ब्रह्मकी एकतामें शंका	....	१०४
५१	कर्म करना व फल देना आभासमें है	....	१०५
५२	"मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान किसको होता है ?	....	१०६-१०७
५३	चिदाभसकी सात अवस्थाएं	....	१०८
५४	आभासको "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान मिथ्या होगा	....	१०९
५५	मुख्य-अभेद और बाव-अभेद	....	११०-१११
५६	साक्षी व चिदाभासका भान कैसे होता है ?	....	११२
५७	आभास व साक्षीके भानकी विधि	....	११३
५८	छः प्रकारके ज्ञान व उनके करण, प्रत्यक्ष-प्रमाण	....	११४
५९	अनुमान, शब्द और उपमान-प्रमाण	....	११५
६०	उपमान और अर्थापत्ति-प्रमाण	....	११६
६१	अनुपलब्धि प्रमाण	....	११७
६२	ज्ञानेन्द्रियोंको प्रत्यक्ष-प्रमाण कहते हैं	....	११८
६३	प्रत्यक्ष-ज्ञानकी विधि	....	११९
६४	प्रमाता, प्रमाण, प्रमिति व प्रमेय-चेतन	....	१२०

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
६५	प्रमाकी करण इन्द्रियाँ कैसे ?	.... १२१
६६	विशेषण और उपाधि	.... १२२
६७	आभास-वाद-अनुसार जीव व साक्षी	.... १२३
६८	आभासवादकी श्रेष्ठता	.... १२४-१२६
६९	आत्माके प्रत्यक्षकी विधि	.... १२७
७०	इन्द्रिय-सम्बन्ध विना ब्रह्म-दर्शन कैसे ?	.... १२८
७१	रामकृष्णादिकोंके शरीर ब्रह्म नहीं	.... १२९-१३१
७२	अवतारी व साधारण शरीरोंमें भेद	.... १३२
७३	अवतारी-शरीर किन कर्मोंके फल हैं ?	.... १३३-१३६
७४	अवतारी शरीर मायिक होते हैं	.... १३७-१४३
७५	अवतारोंको आत्म-भ्रांति नहीं होती	.... १४४-१४५
७६	अवतार किसे कहते हैं ?	.... १४६
७७	अवतारोंके भेद	.... १४७-१५०
७८	इन्द्रिय-सम्बन्ध-विना ब्रह्म-दर्शन	.... १५१
७९	ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है	.... १५२-१५६

॥ पंचम तरंग ॥

(अथ श्रीगुरुवेदादि-व्यावहारिक-प्रतिपादनम्
अथवा मध्यमाधिकारी-साधन निरूपणम)

८०	वेद और गुरु मोक्षके साधन कैसे ?	.... १५७
८१	अद्वैतवाद ही प्रामाणिक है	.... १५८-१६०
८२	राजाके मंत्री भछुंकी कथा	.... १६१
८३	सारा संसार स्वार्थी है	.... १६२
८४	भछुंको वैराग्यका होना	.... १६३
८५	सारे भोग्य-पदार्थ दुःखरूप हैं	.... १६४-१६६
८६	अपवित्रमें पवित्र बुद्धि कैसे ?	.... १६७
८७	यह शरीर अपवित्र है	.... १६८

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्याँ
८८	ब्रह्मचर्य का महत्त्व	.... १६९-१७०
८९	वीर्य-उत्पत्तिकी प्रणाली	.... १७१
९०	वीर्य-नाश घोर मूर्खता है	.... १७२
९१	ब्रह्मचर्य ही जीवन है	.... १७३
९२	गृहस्थमें ब्रह्मचर्य	.... १७४
९३	सन्तानोत्पत्तिमें पुरुषार्थ भी हेतु है	.... १७५
९४	चार प्रकारकी पाठशाला	.... १७६
९५	मनोवांछित सन्तानोत्पत्तिका रहस्य	.... १७७
९६	ब्रह्मचर्य-पालनके नियम	.... १७८
९७	पवित्र-संकल्प	.... १७९
९८	पवित्र-मातृभाव-दृष्टि	.... १८०
९९	सादी रहन सहन	.... १८१
१००	सत्सङ्गति	.... १८२
१०१	सद्ग्रन्थावलोकन	.... १८३
१०२	घर्षण-स्नान	.... १८४
१०३	सादा व ताजा अल्पाहार	.... १८५-१८६
१०४	निर्व्यसनता	.... १८७
१०५	दो बार मल-मूत्र-त्याग व इन्द्रिय-स्नान, नियमित व्यायाम	.... १८८
१०६	जल्दी सोना व जल्दी जागना, योगासनाभ्यास	.... १८९
१०७	योगासनाभ्यास, उपवास व दृढ़-प्रतिज्ञा	.... १९०
१०८	सततोद्योग व ईश्वर-भक्ति	.... १९१
१०९	एकान्तके आनन्दका वर्णन	.... १९२-१९३
११०	भछुके दृष्टान्तको सिद्धान्तमें जोड़ना	.... १९४
१११	द्वैतवादियोंका संग त्याज्य है	.... १९५

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
११२	मिथ्या दुःखका मिथ्या साधनसे नाश	.... १९६
११३	एक राजाका स्वप्न	.... १९७
११४	मिथ्या दुःखका मिथ्या साधनसे नाश	.... १९८
११५	समसत्ताकी आपसमें साधक-बाधकता	.... १९९
११६	तीन प्रकारकी सत्ता	२००
११७	प्रातिभासिक व व्यावहारिक सत्तामें भेद	२०१
११८	संसारकी उत्पत्तिका कोई क्रम नहीं	.... २०२-२०३
११९	मायाके स्वरूपका वर्णन	.... २०४-२०६
१२०	अज्ञानकी स्वाश्रयता व स्वविषता	.... २०७
१२१	वाचस्पतिका मत ठीक नहीं	.... २०८
१२२	अंशीरूप अज्ञान एक है	.... २०९
१२३	अज्ञान शुद्ध-ब्रह्मके आश्रित हैं	.... २१०
१२४	ईश्वरको जगदुत्पत्तिकी इच्छा क्यों ?	.... २११
१२५	सूक्ष्म-सृष्टिका निरूपण	.... २१२
१२६	अन्तःकरण और प्राणकी उत्पत्ति	.... २१३
१२७	ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय	.... २१४
१२८	पंचीकरण-निरूपण	.... २१५
१२९	स्थूल ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति	.... २१६
१३०	तीन शरीर व पाँच कोश	.... २१७
१३१	ईश्वरके पाँच कोशोंका वर्णन	.... २१८
१३२	विरोचनका सिद्धान्त	.... २१९
१३३	इन्द्रिय, प्राण व मन-आत्मवादी	.... २२०
१३४	विज्ञान-आत्मवादी बौद्धका मत	.... २२१
१३५	आनन्दमय कोशको आत्मा माननेवाले	.... २२२
१३६	आत्मा नित्य व चेतन-स्वरूप है	.... २२३
१३७	पांच कोशोंका आत्मासे विवेक	.... २२४

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१३८	पाँचों कोशोंसे आत्मा न्यारा है	.... २२५
१३९	पंचकोश-विवेक	.... २२६
१४०	आत्मामें संसाररूप बन्धन नहीं	.... २२७
१४१	वेदान्त-श्रवणका फल	.... २२८
१४२	ज्ञानी कर्त्तव्यकी आगमें नहीं झुलसता	.... २२९
१४३	कर्माभासका निरूपण	.... २३०
१४४	अपना असली स्वरूप साक्षी अकर्त्ता है	.... २३१
१४५	गोप्य तत्त्वका उपदेश	.... २३२-२३४
१४६	लयचिन्तन	.... २३५-२३७
१४७	ध्यान व ध्यानमें भेद	.... २३८
१४८	प्रतीक ध्यान	.... २३९
१४९	सम्पद, ध्येय व अहंग्रह ध्यान	.... २४०
१५०	मोक्षके भेद	.... २४१-२४२
१५१	ॐकारका अहंग्रह-ध्यान	.... २४३-२४४
१५२	कैवलल्य मोक्ष	.... २४५
१५३	कैवलल्य मोक्षका साधन	.... २४६
१५४	ॐद्वारा ब्रह्मका अहंग्रह ध्यान	.... २४७
१५५	ॐके अहंग्रह ध्यानका फल	.... २४८
१५६	सगुण ॐका अहंग्रह-ध्यान	२४९
१५७	निर्गुण ॐका अहंग्रह-ध्यान	.... २५०-२५२
१५८	निर्गुण ओंकारका ध्यान	.... २५३-२६४
१५९	लयचिन्तनका अनुवाद	.... २६५-२६६
१६०	ओंकारका चिन्तक ही मुनि है	.... २६७
१६१	निर्गुण ध्यानके अनधिकारीका कर्त्तव्य	.... २६८

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

॥ षष्ठ-तरंग ॥

(अथ श्रीगुरुवेदादि-सावन-वर्णनम्)

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१६२	सपना जाग्रत्-पदार्थोंकी स्मृति नहीं	.... २६६-२७१
१६३	स्वप्नमें सूक्ष्म-शरीर वाहर नहीं निकलता	.... २७२
१६४	स्वप्नमें कल्पित पदार्थ उत्पन्न होते हैं	.... २७३
१६५	स्वप्न अज्ञानका परिणाम व चेतनका विवर्त है	.... २७४
१६६	अत्यन्त-निवृत्ति व लयरूप-निवृत्ति	.... २७५
१६७	जाग्रत् व स्वप्नमें कोई भेद नहीं है	.... २७६-२७९
१३८	स्वप्नवत् जाग्रत् संसार भी मिथ्या ही है	.... २८०-२८४
१६९	वास्तवमें सृष्टिका कोई क्रम नहीं	.... २८५-२८७
१७०	दृष्टि-सृष्टि-वादका निरुपण	.... २८८-२९०
१७१	अगृघदेवको स्वप्नकी प्रतीति	.... २९१
१७२	अगृघदेवके तीन प्रश्न	.... २९२
१७३	सांख्यमतका कुछ निरूपण	.... २९३-२९४
१७४	सांख्यमतके आत्माका कथन व खण्डन	.... २९५-२९६
१७५	न्यायका कुछ निरूपण	.... २९७-२९८
१७६	न्याय-मतके आत्माका कथन व खण्डन	.... २९९-३००
१७७	आत्मा नित्य है	.... ३०१
१७८	आत्मा ज्ञान-स्वरूप है	.... ३०२
१७९	आत्मा आनन्द-स्वरूप है	.... ३०३-३०४
१८०	आत्मा व ब्रह्मकी एकता	.... ३०५
१८१	आत्मा नित्य है	.... ३०६-३०८
१८२	आत्मा सर्व व्यापक है	.... ३०९
१८३	आत्मा असंग है	.... ३१०

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१८४	संसाकार कर्त्ता ईश्वर है	.... ३११
१८५	ईश्वर एकदेशी नहीं किन्तु व्यापक है	.... ३१२-३१३
१८६	मोक्षका साधन केवल ज्ञान है	.... ३१४-३१५
१८७	ज्ञानमें कर्म उपासनाकी अपेक्षा नहीं	.... ३१६-३१७
१८८	ज्ञानीको कर्म-बन्धन नहीं होता	.... ३१८
१८९	ज्ञानीको कर्म उपासनाका उपयोग नहीं	.... ३१९
१९०	प्रारब्धानुसार कर्म ज्ञानके विरोधी नहीं	.... ३२०
१९१	चेतन-दृष्टिसे जीव ईश्वर दोनों एक हैं	.... ३२१
१९२	शक्ति-वृत्ति व लक्षणा-वृत्ति	.... ३२२
१९३	व्याकरण-मतकी शक्तिका खण्डन	.... ३२३
१९४	भट्टमतकी शक्तिका खण्डन	.... ३२४-३२५
१९५	सिद्धान्तमतानुसार शक्तिवर्णन	.... ३२६
१९६	शक्य व लक्ष्य अर्थका निरूपण	.... ३२७-३२८
१९७	जहति, अजहति व भाग-त्याग-लक्षणा	.... ३२९-३३०
१९८	चारों वेदोंके चार महावाक्य	.... ३३१
१९९	जीव व ईश्वरके स्वरूपका वर्णन	.... ३३२
२००	आभासवाद	.... ३३३
२०१	प्रतिबिंब-वाद	.... ३३४-३३६
२०२	महावाक्योंमें भाग-त्याग लक्षणा	.... ३३७-३३८
२०३	ओतप्रोतकी विधि	.... ३३९
२०४	अगृधदेवके स्वप्नकी समाप्ति	.... ३४०
२०५	मिथ्या गुरुवेदसे मिथ्या जगत्का परिहार	.... ३४१-३४२

॥ सप्तम तरंग ॥

(अथ जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति-वर्णनम्)

२०६	आत्म-ज्ञानसे कर्मोंका क्षय	.... ३४३

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
२०७	प्रारब्ध-फल शरीरको भोगना पड़ता है	.... ३४४
२०८	ज्ञानके बाद जन्मका अभाव	.... ३४५
२०९	ज्ञानीके व्यवहारमें नियमका आक्षेप	.... ३४६
२१०	समाधिके आठ अंग	.... ३४७-३५०
२११	सुषुप्तिसे निर्विकल्प-समाधिका भेद	.... ३५१
२१२	निर्विकल्प-समाधिका निरूपण	.... ३५२
२१३	निर्विकल्प-समाधिके चार विघ्न	.... ३५३-३५७
२१४	ज्ञानीके व्यवहारमें नियमका आक्षेप	.... ३५८
२१५	ज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम नहीं	.... ३५९-३६१
२१६	ज्ञानीका विदेहमोक्ष निश्चित है	.... ३६२-३६४
२१७	ज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम नहीं	.... ३६५-३६९
२१८	तीन प्रकारके प्रारब्धका निरूपण	.... ३७०
२१९	ज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम नहीं	.... ३७१
२२०	ज्ञानी सर्वथा मुक्त है	.... ३७२
२२१	तत्वदृष्टि व अदृष्टिका विदेहमोक्ष	.... ३७३
२२२	विद्याके अष्टादश प्रस्थान	.... ३७४-३७७
२२३	अष्टादश प्रस्थानोंका तात्पर्य	.... ३७८
२२४	तर्कदृष्टिका पितासे मिलाप	.... ३७८
२२५	शुभसंततिका प्रश्न	.... ३८०
२२६	तर्कदृष्टिका उत्तर	.... ३८१
२२७	पुराणोंका तात्पर्य	.... ३८२-३८४
२२८	मूर्ति-प्रतिपादनका तात्पर्य	.... ३८५-३८६
२२९	उत्तर-मीमाँसाकी प्रमाणता	.... ३८७-३८८
२३०	राजाकी मृत्यु और ब्रह्मलोककी प्राप्ति	.... ३८९
२३१	तर्कदृष्टिका विदेहमोक्ष	.... ३९०-३९२

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

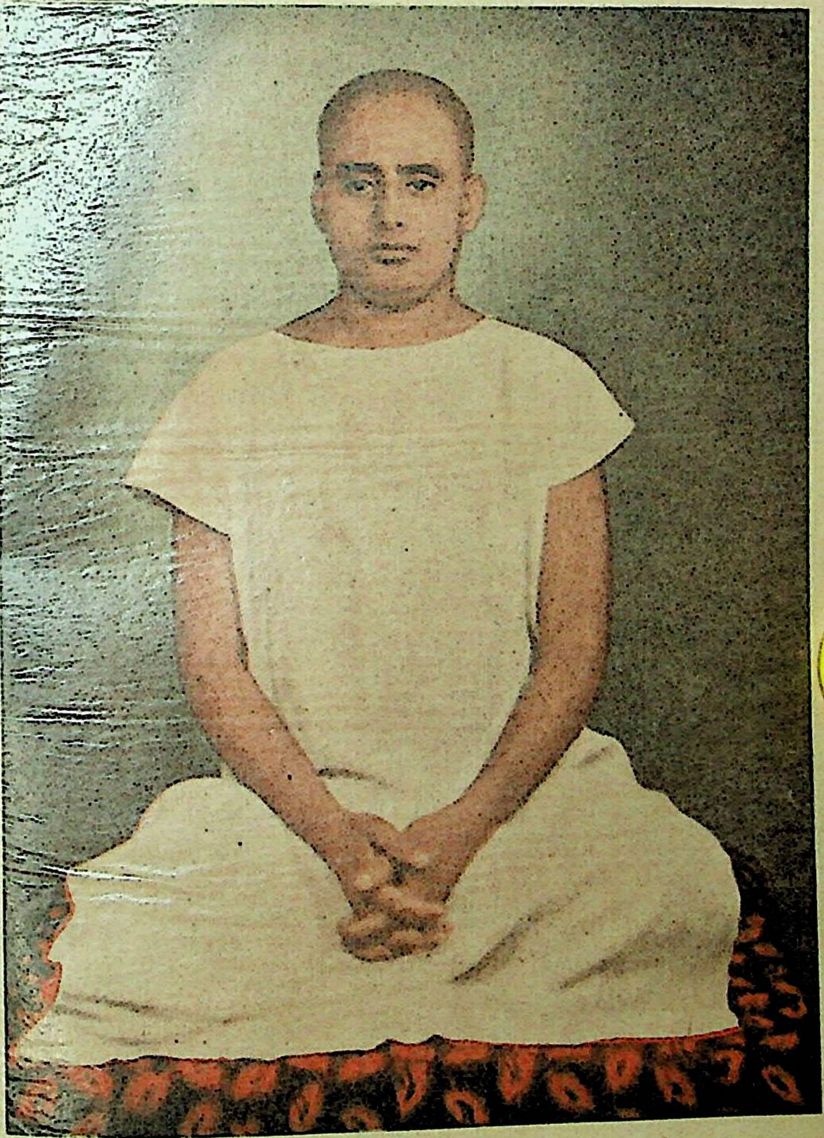

श्रीमत्स्वामी मनोहरदासजी महाराज

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

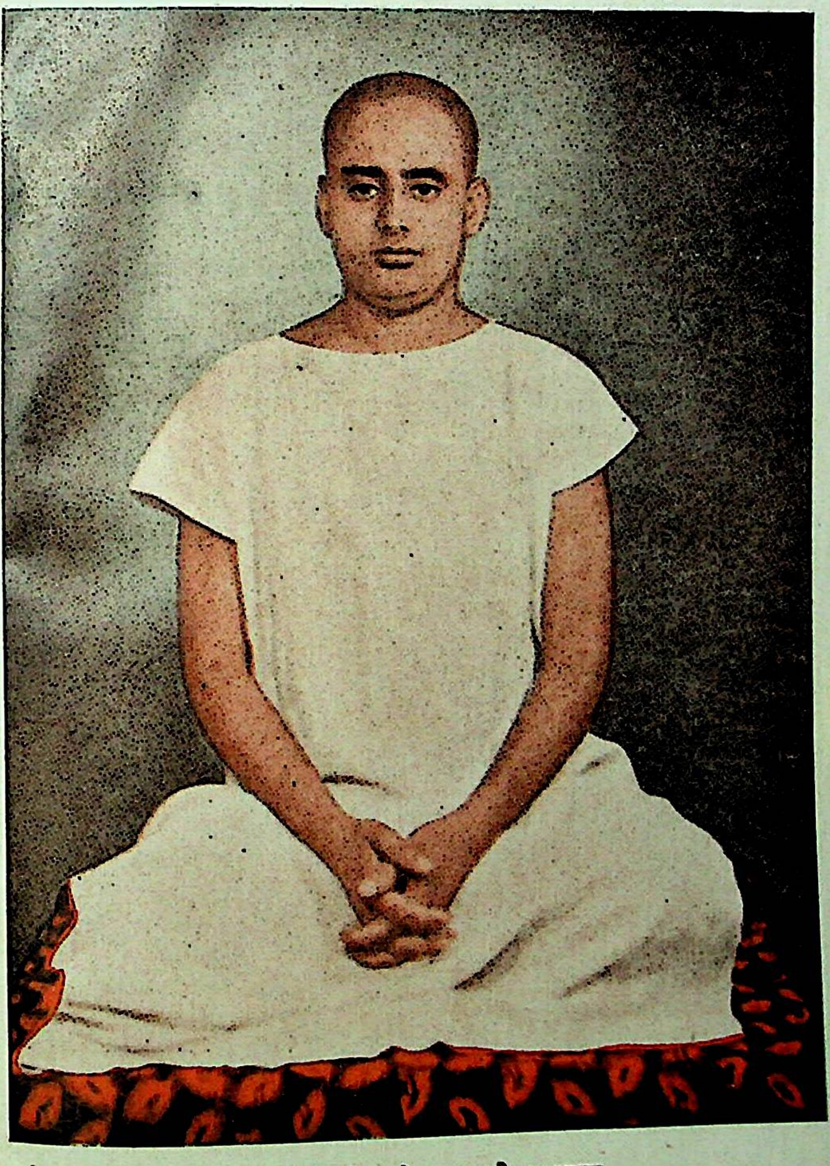

श्रीमत्स्वामी मनोहरदासजी महाराज

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्री-विचार-सागर-दर्पण

—: अथ वस्तु-निर्देश-रूप-मंगलाचरणम् :—

विघ्न अर्थात् ग्रन्थकी समाप्तिमें प्रतिबन्धक (रुकावट डालनेवाले) जो पाप होते हैं, उनकी निवृत्तिके लिये मन, वाणी और शरीरसे व्यापार करनेको कहते हैं मंगलाचरण करना।

शंका :— विघ्नोंके नाशके लिए स्वामी श्रीनिश्चलदासजी अपने मनमें ही मंगलाचरण करलेते, ग्रन्थमें दोहेरूप में लिखनेकी क्या आवश्यकता थी ?

उत्तर:— (१) यदि स्वामी श्रीनिश्चलदासजी मंगलाचरणको ग्रन्थमें न लिखते, तो आस्तिक लोग (जिज्ञासु) उनको नास्तिक समझकर उनके ग्रन्थकी ओर प्रवृत्त न होते।

(२) अपने पूर्वजलोग प्रत्येक शुभ कार्यको करते समय मंगलाचरण करते थे, इस परम्पराको बताने तथा कायम रखनेके लिए मंगलाचरणको ग्रन्थमें लिखना आवश्यक हुआ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(३) ग्रन्थके आदि, मध्य तथा अन्तमें मंगलाचरण करना चाहिये, शिष्योंको ऐसी शिक्षा देनेके लिये उन्होंने ग्रन्थके आदि, मध्य तथा अन्तमें मंगलाचरण लिखा।

मंगलाचरण (१) वस्तुनिर्देशरूप (२) आशीर्वादरूप तथा (३) नमस्काररूप भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। वे फिर अवांतर भेदसे सत्ताईस (२७) प्रकारके होते हैं। इनका विस्तार "बोध-रत्नाकर" आदि ग्रन्थोंमें लिखा है।

शंका :— कृपया इन तीनों मंगलाचरणोंको संक्षेपमें कहिए।

उत्तर :— सगुण अथवा निर्गुण परमात्माको यहाँ वस्तु कहते हैं। उसके निर्देश अर्थात् कथन करनेको कहते हैं "वस्तु-निर्देश-रूप-मंगलाचरण" करना। अपने इष्ट देव अथवा गुरु आदिको नमस्कार करनेको कहते हैं "नमस्काररूप मंगलाचरण" करना। अपने अथवा शिष्योंके इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करनेको कहते हैं "आशीर्वादरूप मंगलाचरण" करना।

इनमेंसे निर्गुण-वस्तु-निर्देशरूप मंगलाचरणको पांच दोहोंमें यहां ग्रन्थके आरम्भमें स्वामी श्रीनिश्चलदासजी महाराज करते हैं।

दोहा :—जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नामरूप आधार।
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार ॥१॥

अर्थ :— जो सुखमय है, जो नित्य है, जो प्रकाश अर्थात् ज्ञानस्वरूप है, जो विभु अर्थात् सर्वव्यापक है, जो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नामरूप जगत्का आधार अर्थात् अधिष्ठान है, जिसको बुद्धि नहीं जान सकती, तथा जो बुद्धिको जानता है, अथवा शब्दकी शक्ति-वृत्तिसे बुद्धि जिसको नहीं जान सकती, किन्तु शब्द की लक्षणा-वृत्तिसे बुद्धि जिसको जान सकती है, अथवा मलिन बुद्धि अर्थात् मलविक्षेप दोष-सहित बुद्धि जिसको नहीं जान सकती, किन्तु शुद्धबुद्धि फल-व्याप्तिसे नहीं, परन्तु वृत्ति-व्याप्तिसे ब्रह्मके आवरणरूप अज्ञानको हटाकर जिस ब्रह्मको विषय कर सकती है ; सो शुद्ध तथा अपार अर्थात् देश-काल-वस्तुके अन्तसे रहित ब्रह्म मैं हूँ।

दोहा :– अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेस।
विधि रवि चन्दा वरुन यम, सक्ति धनेस गनेस ॥२॥

अर्थ :—मेरा (कूटस्थ साक्षी) का स्वरूप अब्धि अर्थात् समुद्रकी तरह अपार अर्थात् अन्तरहित है। जिस प्रकार समुद्रकी लहरें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं किन्तु समुद्रमें ही कल्पित हैं, ठीक उसीप्रकार विष्णु, महेश, विधि (ब्रह्मा), रवि (सूर्य), चन्द्र, वरुण, यमराज, शक्तिदेवी, धनेश (कुबेर) गणेश इत्यादि सब देवतारूप लहरें समुद्ररूप मुझ शुद्ध चेतनसे भिन्न नहीं हैं, किन्तु ये सब मुझमें ही कल्पित हैं।

दोहा :– जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान।
ताको होत उपाधितें, मोमैं मिथ्या भान ॥३॥

अर्थ :— जिस कृपालु सर्वज्ञ ईश्वरका मुनिजन हृदयमें ध्यान करते हैं, वे ईश्वर, जैसे रस्सीमें सांप और स्वप्नमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नगर इत्यादि मिथ्या प्रतीत होते हैं, उसीप्रकार मुझ शुद्ध चेतनमें माया-उपाधिसे मिथ्या ही प्रतीत होते हैं।

दोहा:-ह्वै जिहिं जानै बिन जगत मनहु जेवरी साँप।
नसै भुजग जग जिहिं लहै, सोऽहं आपे आप ॥४॥

अर्थ :— जैसे जिस रस्सीको बिना जाने सांप प्रतीत होता है, वह रस्सी उस कल्पित सांपका अधिष्ठान मानी जाती है। इसी प्रकार जिस ब्रह्मको बिना जाने यह संसार वास्तविक प्रतीत होता है, वह ब्रह्म इस कल्पित संसारका अधिष्ठान है। और जैसे रस्सीरूप अधिष्ठानके ज्ञानसे कल्पित अर्थात् अध्यस्त सर्पकी निवृत्ति होती है, उसी प्रकार जिस अधिष्ठानरूप ब्रह्मको जाननेसे इस कल्पित संसारकी निवृत्ति होती है, वह अधिष्ठानरूप ब्रह्म मैं स्वयं हूँ।

दोहा :— बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।
सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रनाम ॥५॥

अर्थ :— सुकृति अर्थात् पुण्यात्मा जिज्ञासु-जन ज्ञानकी इच्छासे अन्तःकरण शुद्ध करनेके लिए जिस निर्गुण रामका भजन करते हैं, वह राम मेरा आत्मा अर्थात् स्वरूप ही है, अर्थात् वह राम मैं ही हूँ। फिर मैं किसको प्रणाम करूं, अर्थात् मुझसे भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं जिसे मैं प्रणाम करूँ।

॥ इति वस्तु-निर्देश-रूप-मंगलाचरणं समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रथमस्तरंगः

❋ अथ अनुबन्ध-सामान्य-निरूपणम् ❋

ग्रन्थके आदिमें सदा अनुबन्ध बतलाए जाते हैं। अधिकारी, विषय, प्रयोजन और सम्बन्ध, इन चारोंको अनुबंध कहते हैं। उनमेंसे पहले उत्तम अधिकारीका वर्णन करते हैं।

दोहा :— मल विछेप जाके नहीं, किन्तु एक अज्ञान।
ह्वै चव साधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान ॥

जिस पुरुषने निष्काम कर्म और उपासनाके द्वारा मल अर्थात् पाप, जिससे मनमें कामादि अशुभ संकल्प उत्पन्न होते हैं, और विक्षेप अर्थात् चंचलता, इन दोनोंको दूर कर दिया है और केवल अपने स्वरूपका अज्ञान ही शेष रह गया है; तथा (१) विवेक, (२) वैराग्य, (३) षट्सम्पत्ति और (४) मुमुक्षा, इन चार साधनोंसे सम्पन्न हो, वह उत्तम अधिकारी कहलाता है।

(१) विवेक :— आत्मा सत् है और जगत् मिथ्या है, इस प्रकार सत् और मिथ्याके विवेचन (अलग करने) को विवेक कहते हैं।

(२) वैराग्य :— ब्रह्मलोक तक जितने भी भोग हैं, उनको न चाहना, वैराग्य है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(३) षट्सम्पत्ति :—नीचे लिखे छः साधनोंको मिलाकर षट्सम्पत्ति कहते हैं।

(क) शम :— मनको विषयोंसे रोकना।

(ख) दम :— इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना।

(ग) श्रद्धा :— गुरु और वेदके वचन सत्य हैं, ऐसा विश्वास रखना।

(घ) समाधान :— गुरुके पास वेदान्तका उपदेश सुनते समय मन और किसी जगह नहीं भटके किन्तु उपदेशमें ही लगा रहे।

(ङ) उपराम अथवा उपरति :— परमात्माके अतिरिक्त सब भोग पदार्थोंको दुःखरूप समझना तथा उन भोगोंकी प्राप्तिके हेतुभूत स्त्री, पुत्र, धन आदि साधन सहित सब कर्मोंमेंसे आसक्तिको त्यागना।

(च) तितिक्षा :— भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, मान, अपमान आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेका स्वभाव।

(४) मुमुक्षा :— मोक्षका स्वरूप है 'सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति और जन्म-मरणरूप बंधनकी निवृत्ति', इस प्रकारके मोक्षकी इच्छा। मलविक्षेपसे रहित और इन चार साधनों सहित पुरुष उत्तम अधिकारी कहलाता है।

इस प्रकार विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति व मुमुक्षा ये चार, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ये तीन, तत्-त्वं पदके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थका संशोधन, ये कुल मिलकर आठ ज्ञानके 'अन्तरङ्ग साधन' हैं।

दोहा :– अन्तरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग ।
अन्तरंग धारै तजै, बहिरंगनको संग ।।

अर्थ :—ऊपर जो विवेकादि ज्ञानके आठ साधन बतलाए हैं ये ज्ञानके अन्तरंग (नज़दीकके) साधन कहलाते हैं और यज्ञ (अग्निहोत्रादि कर्म) तथा सगुण-उपासना आदि ज्ञानके बहिरंग (दूरके = चित्त-शुद्धि-द्वारा) साधन कहलाते हैं। जो जन आत्म-ज्ञानके इच्छुक हैं उनका यह कर्तव्य है कि विवेक, वैराग्य आदि अन्तरंग साधनोंको अपनानेके बाद यज्ञ व सगुण-उपासना आदि बहिरंग साधनोंको त्याग दें। शास्त्र भी कहता है :—

"जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्म-चोदनाम् ।"

अर्थात् जिज्ञासामें प्रवृत्त हुआ साधक कर्म-विधिका आदर न करे।" भाव यह है कि ज्ञान-मार्गमें चलनेके बाद फिर सगुण-उपासना-सहित यज्ञादिके विधायक उपासना-काण्ड-सहित कर्म-काण्डका आदर न करे यानी फिर लौटकर कर्म आदिकोंमें प्रवृत्त न होवे।

और जो लोग हठ करके फिर भेद-मूलक अग्निहोत्र आदि कर्म एवं भेद-भक्तिमें प्रवृत्त होते हैं तथा वेदोंके मर्मको न समझकर कर्म और ज्ञानका सम-समुच्चय (दोनोंका एक साथ मेल) गाते हैं, उनको समझाते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी राम-गीतामें श्रीलक्ष्मणजीसे कहते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन-
स्तदप्यसद्-दृष्ट-विरोध-कारणात् ।
देहाऽभिमानादभिवर्धते क्रिया
विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ।। ४ ।।"

अर्थ :— ऐसा (कर्म और ज्ञानका सम-समुच्चय) जो कोई कुतर्की कहते हैं, उनके कथनमें प्रत्यक्ष विरोध होनेके कारण वह ठीक नहीं है; क्योंकि अग्नि-होत्रादि कर्म देहाऽभिमानसे होते हैं और ज्ञान अहंकारके (देहाभिमानके) नष्ट होनेपर सिद्ध होता है।"

ज्ञान और कर्मके सम-समुच्चयका खण्डन करते हुए भगवान् राम दूसरी युक्ति देते हुए कहते हैं :—

"उदेति कर्माऽखिल-कारकाऽऽदिभि-
र्निहन्ति विद्याऽखिल-कारकाऽऽदिकम् ।।रा.गी.१ ५।।

अर्थात् कर्म, सम्पूर्ण कारक आदिकी (ऋत्विक्, यजमान आदिकी) सहायतासे होता है; किन्तु विद्या समस्त कारकादिका [दृढ मिथ्यात्वके निश्चय-द्वारा] नाश कर देती है।"

भाव यह है कि 'मैं कर्त्ता हूँ' 'मैं भोक्ता हूँ' इस भावनाके बिना यज्ञादि कर्म होते ही नहीं हैं और आत्म-ज्ञानसे कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व अभिमानका बाध हो जाता है। इसलिए कर्म और ज्ञान परस्पर विरोधी होनेके नाते, दोनोंका एक कालमें एक ही साधकके द्वारा अनुष्ठान नहीं बन

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सकता। अतः जिज्ञासुको क्या करना चाहिये, यह बतलाते हुए भगवान् राम कहते हैं :—

"तस्मात् त्यजेत् कार्यमशेषतः सुधी-
र्विद्या-विरोधान्न समुच्चयो भवेत्।
आत्माऽनुसन्धान-परायणः सदा
निवृत्त-सर्वेन्द्रिय-वृत्ति-गोचरः ।।"(रा.गी.१६)

अर्थ :– इसलिए समस्त इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्त होकर निरन्तर आत्म-चिन्तनमें लगा हुआ बुद्धिमान् जिज्ञासु सम्पूर्ण कर्मोंका सर्वथा त्याग कर दे। क्योंकि विद्याके (ब्रह्म-ज्ञानके) विरोधी होनेके कारण यज्ञादि कर्मोंका आत्म-विद्याके साथ समुच्चय (मेल) नहीं हो सकता।"

और मुमुक्षु चूंकि जन्म-मरणके चक्रसे छूटना चाहता है, उस जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेका उपाय केवल ब्रह्म और आत्माके एकत्वका ज्ञान ही है; कर्मादिसे साधक मृत्युको पार नहीं कर सकते। महाभारतके उद्योग-पर्वके 'सनत्सुजात-पर्व' नामक प्रकरणमें श्रीसनत्कुमारजी महाराज भी महाराज धृतराष्ट्रको यही उपदेश देते हुए कहते हैं :—

"कर्मोदये कर्म-फलाऽनुरागा-
स्तत्राऽनुयान्ति न तरन्ति मृत्युम्।
सदर्थ-योगाऽनवगमात् समन्तात्
प्रवर्तते भोग-योगेन देही ॥"(१/९)

अर्थ :– कर्मानुष्ठान करनेपर कर्म-फलमें आसक्त हुए जीव उसका (सुख-दुःखरूप कर्म-फलका) ही अनुसरण

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करते हैं। (उन्हें अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है।) अतः वे मृत्युको पार नहीं कर पाते। (उन्हें गर्भमें ऊंधा लटकना ही पड़ता है।) देहाभिमानी जीव सद्वस्तुके योगका (स्वरूपका) ज्ञान न होनेसे हो भोग-वश सब ओर (अनेक जन्मोंमें) भटकता रहता है।"

यहाँ श्रीसनत्कुमारजीने अज्ञानी व यज्ञादि कर्मोंमें आसक्त पुरुषोंका जन्म-मरणके चक्रमें भटकना अर्थात् नाशवान् लोकोंकी प्राप्ति करना वताया है। फिर इसी बातको श्रीसनत्सुजातीयके तीसरे अध्यायके १८वें श्लोकमें भी वे कहते हैं :—

"अन्तवन्तः क्षत्रिय ! ते जयन्ति,
लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मितेन।
ज्ञानेन विद्वांस्तेज अभ्येति नित्यं,
न विद्यते ह्यन्यथा तस्य पन्थाः ॥१८॥"

अर्थ :— हे क्षत्रिय ! वे (कर्म-परायण) लोग तो अपने किये हुए कर्म-द्वारा नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त होते हैं; किन्तु ज्ञानके द्वारा विद्वान् नित्य प्रकाशको (स्वयं प्रकाश अखंड सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्मको) प्राप्त होता है। इसके सिवाय उसका (मोक्षका) कोई और मार्ग है ही नहीं।"

वेद भी कहता है :—

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

अर्थात् उस आत्मस्वरूपको पहचानकर ही ज्ञानी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

महापुरुष मृत्युको पार करलेता है (जन्म मरणके चक्रसे छूट कर परम पद मोक्षको प्राप्त करलेता हैं) उस मोक्ष पदके लिए ज्ञानके सिवाय दूसरा मार्ग है ही नहीं ।"

और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने जो कर्मोंका उपदेश दिया है वह केवल निष्काम भावना तथा कर्तव्य बुद्धिसे, ज्ञान मार्गमें प्रवृत्त होनेसे पहले, केवल अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये ही दिया है । इस बातको समझाते हुए भगवान् स्वयं कहते हैं :—

"कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्म-शुद्धये ।।"(५/११)

अर्थात् योगी लोग आसक्तिको छोड़कर चित्त-शुद्धिके लिए शरीर, मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियोंसे कर्म भी किया करते हैं ।" यहां भगवान्ने निष्काम कर्मोंको केवल अन्तःकरण-शुद्धिका ही साधन बताया है । अतः चूंकि कर्म और ज्ञानके फल भी अलग अलग हैं इसलिए दोनोंका क्रम-समुच्चय (एकके बाद दूसरा) तो सिद्ध होता है परन्तु सम-समुच्चय (दोनोंका साथमें होना) किसी भी प्रकारसें सिद्ध नहीं हो सकता । इसी बातको स्पष्ट करते हुए भगवान् मनु भी कहते हैं :—

"तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययाऽमृत-मश्नुते ।"

अर्थात् [साधक] तपसे पापकी निवृत्ति करता है और आत्मज्ञानसे अमरत्व (मोक्ष-पद) प्राप्त करता है ।" और एक बार आत्म-ज्ञानसे कर्म और भेद-उपासनाके जनक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अज्ञानका सर्वथा नाश हो जानेपर फिर जीव और ब्रह्मका भेद सदाके लिए समाप्त हो जाता है। इस बातको समझाते हुए भगवान् पाराशरजी कहते हैं:—

"विभेद-जनकेऽज्ञाने, नाश-मात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेद-मसन्तं कः करिष्यति ॥"

अर्थात् भेद-जनक अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर फिर आत्मा और ब्रह्मका मिथ्या भेद कौन करेगा?" यानी अज्ञानके समाप्त होनेपर जीव और ब्रह्मकी स्वरूप-दृष्टिसे भेद-बुद्धि समाप्त हो जाती है तब वह ज्ञानी महापुरुष फिर भेद-उपासना एवं कर्म-काण्डमें प्रवृत्त नहीं होता।

और जो लोग भेद-भक्ति व यज्ञादि कर्मोंमें आग्रह रखते हैं उनका आत्म-निश्चय भी दब जाता है। यह समझाते हुए भगवान् पाराशरजी कहते हैं:—

"जनैः स्व-कर्म-स्तिमिताऽऽत्म-निश्चयैः"

अर्थात् अपने भेद-मूलक कर्मोंके कारण जिनका आत्म-निश्चय दब गया है।" इससे सिद्ध होता है कि साधकोंको ज्ञान-मार्गमें प्रवृत्त होनेके बाद फिर लौटकर भेद-भक्ति एवं यज्ञादि कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

भगवान् वासुदेव भी गीतामें समस्त यज्ञादि कर्मोंका त्याग ही साधकके लिए बतलाते हुए कहते हैं:—

"निराशी-र्यत-चित्तात्मा, त्यक्त-सर्व-परिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥" (४/२१)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् सम्पूर्ण कामनाओंसे रहित, सभी परिग्रहोंसे रहित (Non luxurious) एवं शरीर तथा मनका निरोध करनेवाला ज्ञानी महापुरुष केवल शरीरकी रक्षाके लिए कर्म करता हुआ दोष-ग्रस्त नहीं होता।" इस श्लोकमें भगवान्ने ज्ञानी तथा जिज्ञासुके लिए यज्ञादि कर्मोंका निषेध करते हुए केवल शारीरिक कर्मोंका विधान किया है। आगे भगवान् सर्व कर्मोंके त्यागीको ही अपना प्यारा भक्त कहते हैं। यथा:—

"सर्वाऽऽरम्भ-परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।" (१२/१६)

अर्थात् सब प्रकारके यज्ञादि कर्मोंका त्याग करनेवाला जो ज्ञानी भक्त है वह मुझे प्रिय है।" आगे फिर कहते हैं :—

"शुभाऽशुभ-परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।" (१२/१७)

अर्थात् सब प्रकारके शुभ और अशुभ कर्मोंका त्याग करनेवाला जो मेरा ज्ञानी भक्त है वह मुझे प्रिय है।" गुणातीत भी भगवान् उसको कहते हुए फर्माते हैं:—

"सर्वाऽऽरम्भ-परित्यागी गुणातीतः स उच्यते।" (१२/२५)

अर्थात् सब प्रकारके अनुष्ठान व यज्ञादि आरंभोंका त्याग करनेवाला जो ज्ञानी महापुरुष है वही गुणातीत कहा जाता है।" इसीप्रकार अनुगीतामें भी भगवान् कृष्ण आत्म-निष्ठके लिए कर्मोंमें प्रयोजनका अभाव दिखाते हुए कहते हैं:—

"नैव धर्मी न चाधर्मी न चैव हि शुभाशुभी।
यः स्यादेकासने लीनस्-तूष्णीं किंचिदचिन्तयन्॥"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः— जो एक आसनमें कुछ भी चिन्तन न करता हुआ चुपचाप आत्मामें लीन हो गया है, वह न धर्मवान् है न अधर्मवान् तथा न शुभ कर्म करनेवाला है न अशुभ कर्म करनेवाला है।" एवं शान्ति-पर्वमें भी भगवान् व्यासने शुकदेवजीके प्रति उपदेश देते हुए कहा है :—

"कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पार-दर्शिनः ॥"

अर्थः— जीव कर्मसे बँधता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है। इसलिए पारदर्शी यतिजन (ज्ञानी महापुरुष) भेद-मूलक यज्ञादि कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होते।"

भगवान् नारद भी इस प्रकार उपदेश देते हुए कहते हैं :—

"हित्वा गुणमयं पाशं कर्म हित्वा शुभाऽशुभम् ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा एवं भवति निर्गुणः ॥"

अर्थ :— गुण-कृत बन्धनको काटकर शुभ अशुभ कर्मोंसे मुक्त होकर तथा सत्य और मिथ्या दोनों ही कर्मोंको त्याग कर वह निर्गुण हो जाता है अर्थात् ज्ञान द्वारा निर्गुण परब्रह्मरूपसे स्थित हो जाता है।"

और जो लोग भेदमें आग्रह होनेसे आत्माऽनुभवरूप ज्ञान-मार्गमें प्रवृत्त नहीं होते हैं उन्हें आत्मघाती कहते हुए वेद कहता है :—

"अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तांस्ते प्रेत्याऽभिगच्छन्ति ये के चात्म-हनो जनाः ॥"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थ :— वे आनन्द-शून्य लोक जो कि घोर अन्धाकरसे व्याप्त हैं; उन लोकोंमें वे लोग जाते हैं, जो आत्मघाती (अज्ञानी) होते हैं।" यहाँ वेद आत्म-विमुखकी निन्दा कर रहा है। इस प्रकार जो लोग आत्म-विमुख होकर इस लोक तथा परलोकके विषयोंको भोगनेके लिए नाना प्रकारके यज्ञादि कर्मोंमें तत्पर रहते हैं उनके बारेमें श्रीसनत्कुमारजी कहते हैं :—

"त्यक्त्वाऽऽत्मरूपं विषयांश्च भुङ्क्ते स वै जनो गर्दभ एव साक्षात् ॥" (श्रीसनत्सुजातीय, ४/१५)

अर्थात् जो पुरुष आत्म-स्वरूपको (आत्माको पहचाननारूप ज्ञान-मार्गको) छोड़कर विषयोंका सेवन करता है वह तो साक्षात् गधा (महा मूर्ख) ही है।"

अतः साधक व्यक्तिको निष्काम कर्माचरण व उपासनाके बाद ज्ञान-मार्गमें ही लगना चाहिए। ज्ञानके बाद अथवा जिज्ञासा-कालमें वेदान्त-श्रवणके साथ साथ कर्म एवं भेद-भक्तिमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

शिव-गीतामें भी आया है कि कर्मादिसे कैवल्य मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है किन्तु केवल आत्म-ज्ञानसे ही मोक्ष पदकी प्राप्ति होती है। यथा :—

"न कर्मणा-मनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा।
कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम् ॥" (१/२)

अर्थ :— यह प्राणी न कर्मोंके अनुष्ठानोंसे, न दानसे और न तप ही से कैवल्य मोक्षको प्राप्त करता है परन्तु

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

केवल ज्ञानसे ही मोक्ष पदको पाता है।" अतः मुमुक्षु साधकको केवल ज्ञान-मार्गमें ही प्रवृत्त होना चाहिए। ज्ञानके बाद फिर कोई अन्य कर्तव्य शेष नहीं रहता। भगवान् शिवजी भी कहते हैं :—

"विश्वं शिवमयं यस्तु पश्यत्यात्मान-मात्मना।
तस्य क्षेत्रेषु तीर्थेषु किं कार्यं वाऽन्यकर्मसु ॥"(१६/१६)

अर्थ :– जो ज्ञानी महापुरुष सम्पूर्ण विश्वको शिवस्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) देखता है और वेदान्तके संस्कारोंसे युक्त शुद्ध-बुद्धि-द्वारा शिवस्वरूप आत्म-तत्त्वका (निजस्वरूपका) प्रत्यक्ष अनुभव करता है, उस महापुरुषके लिए तीर्थ-भूत क्षेत्रोंमें अर्थात् कुरुक्षेत्र व पुष्करादि तीर्थोंमें जानेसे क्या प्रयोजन है ? तथा यज्ञादि कर्मोंको करनेसे क्या लाभ है ? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं है।" अतः उस ज्ञानी महापुरुषके लिए कोई भी कर्तव्य शेष नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुनसे कहते हैं :—

"यस्त्वाऽऽत्म-रतिरेव स्यादात्म-तृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्-तस्य कार्यं न विद्यते ॥" (३/१७)

अर्थ :– जो पुरुष केवल आत्मामें क्रीडा करता है, आत्मामें तृप्त रहता है और आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, उसके लिए कोई कर्तव्य शेष रहता ही नहीं है।"

तथा भेद-भक्ति व भेद-मूलक यज्ञादि कर्म चूंकि जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले हैं अतः ज्ञानी अथवा साधक जिज्ञासु उनमें प्रवृत्त नहीं होते। और चूंकि कर्म और उपासना

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्वयं अज्ञानके कार्य हैं अतः वे अज्ञानको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसी बातको समझाते हुए देवी-गीतामें भगवती देवी कहती हैं :—

"न कर्म तज्जं नोपास्ति-विरोधाऽभावतो गिरे।
प्रत्युताऽऽशाऽज्ञान-नाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥" (४/९)

अर्थ :– हे पर्वतराज ! यज्ञादि कर्म और सगुण ब्रह्मकी उपासना (भेद-भक्ति), अज्ञानको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि ये अज्ञानसे उत्पन्न होते हैं, अतः इनका अज्ञानसे विरोध नहीं है इसलिए इन कर्मादिकोंसे अज्ञानका नाश तो क्या होगा, प्रत्युत इनसे अज्ञानके नाशकी आशा भी नहीं रखनी चाहिये।"

कुछ वादी लोग कर्म और ज्ञानका सम-समुच्चय (दोनोंका एक साथ चलना) कहते हैं, उनको उत्तर देती हुईं श्रीभगवती देवी कहती हैं :—

"इति केचिद्वदन्त्यत्र तद्विरोधान्न संभवेत्।
ज्ञानाद्-धृद्-ग्रन्थि-भेदः स्याद् धृद्-ग्रन्थौ कर्म-संभवः॥(४/१३)

अर्थ : — यहाँ (मोक्षकी साधनताके प्रसंगमें) कुछ मतवादी इस प्रकार (उपर्युक्त ज्ञान व कर्मका सम-समुच्चय) कहते हैं, वह असंभव है; क्योंकि कर्म और ज्ञानका परस्पर विरोध है। [विरोध कैसे है ? इस प्रश्नका उत्तर देती हुईं श्रीभगवती कहती हैं कि] क्योंकि ज्ञानसे हृदयकी गांठ खुलती है। [अर्थात् जड़ चेतनकी ग्रन्थि यानी अन्योन्याध्यास =शरीर और आत्माकी खिचड़ी (एकता) समाप्त हो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जाती है।] और हृदय-ग्रन्थिके रहते ही कर्म संभव हो सकता है।"

भाव यह है कि जब तक व्यक्ति अपनेको (आत्माको) शरीर तथा कर्ता भोक्ता मानता है तभी तक यज्ञादिरूप कर्म-काण्डमें प्रवृत्ति रहती है; अतः कर्म और ज्ञानका एक साथ मेल नहीं हो सकता। इसी बातको समझाती हुईं श्रीदेवी कहती हैं :—

"यौगपद्यं न संभाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः।
तमःप्रकाशयो-र्यद्वद्यौग-पद्यं न संभवि॥" (४/१४)

अर्थ :– इसलिए उन दोनोंका (कर्म और ज्ञानका) परस्पर विरोध होनेके कारण, यौगपद्य (सम-समुच्चय = एक साथ मेल) संभव नहीं हो सकता। जैसे परस्पर विरोधी पदार्थ अन्धकार और प्रकाशका एक मात्रामें एक साथ मेल संभव नहीं होता।"

अतः शम दम आदि साधन-संपत्ति एवं आत्म-ज्ञानकी तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न होनेपर, यज्ञादि कर्म व सगुण उपासना (भेद-भक्ति) आदिका त्याग करके प्रारब्धानुसार अन्य लौकिक कर्म करते हुए सदा वेदान्तके श्रवण, मनन व निदिध्यासन आदि में तत्पर रहना चाहिए, इस प्रकारका आदेश देती हुईं श्रीभगवती कहती हैं :—

"वेदान्त-श्रवणं कुर्यान्नित्य-मेव-मतन्द्रितः।
तत्त्वमस्याऽऽदि-वाक्यस्य नित्य-मर्थं विचारयेत्॥" (४/१८)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थ :– इस प्रकार आलस्यको छोड़कर सदा वेदान्तका श्रवण करना चाहिये। [केवल श्रवण ही नहीं परन्तु] 'तत्त्वमसि' आदि [अर्थात् वह (सच्चिदानंद ब्रह्म) तू (साक्षी कूटस्थ सामान्य चेतन) है। इस प्रकार आत्मा और परमात्माके एकत्व-बोधक] महावाक्योंके अर्थका नित्य विचार करना चाहिए। अर्थात् वेदान्तका श्रवण, मनन व निदिध्यासन (आत्म-ध्यान) सदा करते रहना चाहिए।"

श्रीभगवतीके इस कथनानुसार कैवल्य-मोक्षके इच्छुक मुमुक्षुको भेद-मूलक कर्म व उपासनाका चित्त-शुद्धिके बाद त्याग करके ज्ञान-मार्गमें ही सदा रत रहना चाहिए। क्योंकि यज्ञादि कर्म जन्म मरणके चक्रमें डालनेवाले हैं, इस बातको समझाते हुए वेद भी कहता है :—

"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा,
अष्टादशोक्त-मवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा,
जरा-मृत्यू ते पुनरेवापि यन्ति ॥"

अर्थ :– संसाररूप अनर्थके हेतु एवं ज्ञानसे निम्न कोटिका होनेके कारण जिनमें अवर (निकृष्ट=तुच्छ) कर्म आश्रित कहा गया है, वे ये [सोलह ऋत्विक् तथा यजमान और यजमानकी पत्नीरूप] यज्ञके अठारह साधन अनित्य बताए गए हैं। जो मूढ लोग श्रेयरूपसे (मोक्षके साधनरूपसे) इनकी प्रशंसा करते हैं, वे फिर जरा-मरणको ही प्राप्त होते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार अनेक वेद, स्मृति व युक्ति आदि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि यज्ञादि कर्म मोक्षके साधन नहीं हैं। ये निष्काम होनेपर केवल अन्तःकरणकी शुद्धि करते हैं। इसलिए ये ज्ञानके बहिरंग साधन कहलाते हैं। और सत्संग एवं गुरु-कृपासे होनेवाला आत्म-ज्ञान ही मोक्षका साक्षात् (Direct) साधन है। अतः तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न होनेके बाद, यज्ञादिक कर्म एवं भेद-भक्ति अर्थात् सगुण-उपासना आदि बहिरंग साधनोंका त्याग करके विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति, मुमुक्षा, वेदान्तका श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन तथा तत् त्वं पदार्थका संशोधन इन आठ ज्ञानके अन्तरंग साधनोंको ही जिज्ञासु-जनोंको धारण करना चाहिए, इस बातको बतलाते हुए श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज कहते हैं :—

"अन्तरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग।
अन्तरंग धारै तजै, बहिरंगनको संग।।"

अर्थात् विवेकादि आत्मज्ञानके आठ अंतरंग (साक्षात्) साधन हैं और सगुण-उपासना एवं यज्ञादि कर्म ज्ञानके बहिरंग साधन हैं अर्थात् चित्त-शुद्धि-द्वारा परम्परासे ज्ञानके साधन हैं। इसलिए ब्रह्मज्ञानके इच्छुक जिज्ञासुका यह कर्तव्य है कि वह विवेक, वैराग्य व श्रवण-मनन आदि ज्ञानके अंतरंग साधनोंको अपनावे और यज्ञ व भेद-उपासना आदि बहिरंग साधनोंको त्याग दे।" जिससे अद्वैतनिष्ठामें बाधा न पड़े। यदि भेद-मूलक कर्म व सगुण-उपासना भी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करता जायगा तो आत्म-निष्ठा (दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्म-अनुभूति) नहीं हो पाएगी। अतः भेदके संस्कारोंसे दूर रहकर, यदि जिज्ञासु आत्म-श्रवण व मननादि करेगा तो संशय व विपरीत-भावनासे रहित दृढ़ प्रत्यक्ष ब्रह्म-ज्ञानको प्राप्त करके, जीवन्मोक्षका अनुभव करता हुआ, प्रारब्ध समाप्त होने पर सदाके लिए दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति एवं परमानंद-स्वरूप पर-ब्रह्मरूपसे स्थितिरूप कैवल्य-मोक्षको प्राप्त करके अपना मनुष्य जन्म सफल कर लेगा।

अब यह सिद्ध हो चुका कि जिज्ञासुको बहिरंग साधनोंका त्याग करके अन्तरंग साधनोंको ही अपनाना चाहिये। अब उन अन्तरंग और बहिरंग साधनोंका अर्थ भी सुन लो :— जिनका श्रवणमें अथवा ज्ञानमें प्रत्यक्ष फल हो उन्हें अन्तरंग साधन कहते हैं। उनमें भी विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति और मुमुक्षा इन चार साधनोंका वेदान्त-श्रवणमें उपयोग है, क्योंकि इनके बिना व्यक्ति बहिर्मुख होनेसे वेदान्तका श्रवण नहीं कर सकता। एवं श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत्पद (ईश्वर-वाचक पद) व त्वंपद (जीव-वाचक पद) के अर्थका संशोधन, इन चार साधनों का आत्म-ज्ञानमें उपयोग है।

कई लोग बिना गुरुमुखके उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र व गीतादि वेदान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन करनेपर भी तत् और त्वं पदके अर्थका संशोधन न कर सकनेके कारण, अर्थात् भाग-त्याग-लक्षणाके द्वारा जीव और ईश्वरके वाच्य स्वरूपमेंसे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चिदाभास-सहित माया व अन्तःकरणादि विरोधी भागोंका बाध करके अविरोधी भाग लक्ष्य-स्वरूप सच्चिदानंद-स्वरूप सामान्य चेतनको लक्ष्य न कर सकनेके कारण, आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए तत्त्वं-पदार्थके संशोधनको महत्त्व देनेके लिए इसे अलग आठवां साधन गिनाया है। इस प्रकार विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, मुमुक्षा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत् और त्वं पदोंके अर्थका संशोधन, इन सबका ज्ञानमें साक्षात् उपयोग होनेके नाते ये आठ ब्रह्म-ज्ञानके अन्तरंग साधन कहलाते हैं।

तथा जिसका ज्ञानमें अथवा श्रवणमें प्रत्यक्ष फल न हो केवल अन्तःकरणकी शुद्धि ही जिसका फल हो उसे ज्ञानका बहिरंग साधन कहते हैं; जैसे यज्ञ और सगुण-उपासना आदिक कर्म। इन यज्ञादिकोंसे अन्तःकरणकी शुद्धि होकर आत्म-ज्ञानकी योग्यता प्राप्त होती है, फिर गुरु-मुख-द्वारा वेदान्तके श्रवण, मनन व निदिध्यासनसे ज्ञान प्राप्त होकर मोक्ष पद प्राप्त होता है। इस प्रकार ये कर्म भी परंपरासे अर्थात् अन्तःकरण-शुद्धि-द्वारा ज्ञान तथा मोक्षके साधन बनते हैं; इसी नाते इन्हें ज्ञानका बहिरंग साधन कहा जाता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब शास्त्र इन यज्ञादि कर्मोंको संसार अर्थात् जन्म-मरणरूपी चक्रका साधन बताते हैं तो फिर आप इन्हें ज्ञानका अथवा मोक्षका बहिरंग साधन भी क्यों कहते हैं? क्योंकि मुमुक्षुओंके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लिए यज्ञादि कर्मोंमें अरुचि उत्पन्न करनेके हेतु वेद कहता है "अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म" अर्थात् जिसमें अठारह ऋत्विक् आदि हैं, वह कर्म निकृष्ट है।" यहाँ यज्ञमें कर्तव्य-बुद्धिको हटानेके लिए वेदने यज्ञको निकृष्ट शब्दसे कहा है। अन्यत्र भी श्रुति कहती है:—

"एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरा-मृत्यू ते पुनरेवापि यन्ति॥"

अर्थात् यही (कर्म या कर्मजन्य स्वर्ग) श्रेय है, इस प्रकार जो मूढ कर्मका अभिनन्दन करते हैं, वे फिर भी जरा और मृत्युको प्राप्त होते हैं।" और जगह भी वेद कहता है :—

"यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीण-लोकाश्च्यवन्ते।" अर्थात् जिसे कर्मी (यज्ञादि कर्म-काण्डमें आसक्त) लोग रागवश नहीं जानते, इससे आतुर होकर स्वर्गसे गिर जाते हैं।" इस प्रकार भगवान् कृष्ण भी गीतामें अर्जुनको मुमुक्षु समझकर ज्ञानसे कर्मको निकृष्ट बतलाते हुए कहते हैं :—

"दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धि-योगाद्धनञ्जय।" (२/४९)

अर्थात् हे धनञ्जय! बुद्धि-योगकी (ज्ञान-योगकी) अपेक्षा कर्मयोग दूर अर्थात् निकृष्ट है।" तथा "न कर्मणा न प्रजया" अर्थात् न कर्मसे न प्रजासे" इत्याद्यर्थक श्रुतियोंसे 'कर्म मोक्षका साधन है' इसका निषेध किया गया है। स्मृति भी कहती है :—

"कर्मणा बद्धयते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् प्राणी कर्मसे बाँधा जाता है (जन्म-मृत्युके चक्रमें भटकता है) और विद्या (आत्मज्ञान) से छूट जाता है ।" इस प्रकार अनेक वेद व स्मृति आदि प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि केवल आत्मज्ञान ही मोक्षका साधन है और यज्ञादिक कर्म बन्धनके हेतु हैं न कि मोक्षके, फिर आप भेद-भक्ति तथा यज्ञरूप कर्मको मोक्ष अथवा ज्ञानके बहिरंग-साधनरूपसे भी स्वीकार कैसे करते हैं ?

समाधान :— ये सभी प्रमाण सत्य हैं परन्तु इन सबका भाव सकाम उपासना तथा सकाम कर्मको बन्धनका साधन बतलानेमें है। हम ज्ञानका बहिरंग साधन, सकाम कर्मोंको न कहकर निष्काम उपासना व निष्काम यज्ञादि कर्मोंको कहते हैं, इसलिए कोई विरोध नहीं है। ज्ञान-मार्गमें प्रविष्ट होनेके पहले साधक भले निष्काम (प्रभु-प्रसन्नता, मोक्ष अथवा ज्ञानके सिवाय और कोई कामना न रखते हुए) भक्ति व कर्मादिक-द्वारा अपने मनको निर्मल व गंभीर (चंचलतासे रहित) करके आत्मज्ञानका उत्तम अधिकारी बने। भगवान् भी अर्जुनसे कहते हैं :—

"यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म-बन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त-सङ्गः समाचार ॥" (३/९)

अर्थात् परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिए किये जानेवाले कर्मोंको छोड़कर दूसरे जितने काम्य (सकाम) और निषिद्ध कर्म हैं, उनसे लोग जन्म आदि बन्धनको ही प्राप्त होते हैं। इसलिए हे कौन्तेय ! तुम आसक्तिको छोड़कर केवल भगवान्की प्रसन्नताके लिए कर्म करो ।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"तत्कर्म यन्न बन्धाय ।" अर्थात् जो बन्धनका कारण न हो, वही सही कर्म है" इत्यर्थक स्मृतिसे ईश्वरके आराधनके लिए किया गया निष्काम कर्म बन्धक नहीं होता और उससे अतिरिक्त कर्म बन्धक होता है। निष्काम बुद्धिसे किए गए यज्ञादि कर्म अन्तःकरणको शुद्ध करते हैं यह बतलाते हुए भगवान् अर्जुनसे कहते हैं :—

"यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥" (१८/५)

अर्थात् यज्ञ, दान और [स्वाध्यायरूप] तप मुमुक्षुओंके सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले हैं अर्थात् अन्तःकरणके शोधक हैं और उसके द्वारा ज्ञान तथा मोक्षके साधन हैं।" अन्यत्र शास्त्र कहता है :—

"धर्मेण पाप-मपनुदति" अर्थात् साधक धर्मसे (निष्काम पुण्य कर्मसे) पापको नष्ट करता है।" वेद भी कहता है :—

"ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन......"अर्थात् ब्राह्मण यज्ञसे और दानसे ब्रह्म-तत्त्वको जाननेकी इच्छा करते हैं।" इस प्रकार श्रुति (वेद) ने भी निष्काम यज्ञ, दान आदि सत् कर्मोंके अनुष्ठानके बिना अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती, ऐसा कहा है। इसलिए जिस मुमुक्षुको आत्मज्ञान नहीं हुआ है उसको चित्तकी शुद्धिके लिए निष्काम कर्म अवश्य करने चाहियें। क्योंकि बिना चित्त-शुद्धिके दृढ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान नहीं होता और बिना ब्रह्मज्ञानके मोक्षपदकी प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार परंपरासे निष्काम

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यज्ञादि कर्म मोक्षके साधन माने जाते हैं। अतः मलिन अन्तःकरणवालेको इन बहिरंग साधनोंके बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होगा यह बतलाते हुए भगवान् अर्जुनसे कहते हैं:—

"न कर्मणा-मनारम्भान्-नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।"

अर्थात् कोई भी मलिन मनवाला पुरुष श्रौत व स्मार्त आदि निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान किये बिना [अन्तःकरण शुद्ध नहीं कर सकता और बिना चित्त-शुद्धिके वेदान्तका श्रवण, मनन व निदिध्यासन नहीं कर सकता और उसके बिना आत्मा और परमात्माके एकत्वका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और बिना आत्म-ज्ञानके] मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकता।" इस प्रकार अन्तःकरण शुद्धिके नाते, निष्काम सगुण-भक्ति तथा निष्काम यज्ञादिक कर्मोंको मोक्ष अथवा आत्म-ज्ञानका बहिरंग साधन कहा जाता है और विवेकादिकोंको ज्ञानका अन्तरंग साधन कहा जाता है। बहिरंग अर्थात् दूर तथा अन्तरंग माने समीप। भेद-भक्ति तथा यज्ञादि कर्मोंका त्याग करके तथा उनके साधन स्त्री, धन व पुत्रादिकोंमें आसक्तिको छोड़कर जो वेदान्तके श्रवण व मननादिमें प्रवृत्त होता है वह साधक ज्ञानका अधिकारी है। ज्ञानके अधिकारीमें यज्ञादिक संभव नहीं हैं इसलिए उन्हें दूर अर्थात् बहिरंग कहा जाता है और विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमें रहते हैं इसलिए उन्हें समीप अर्थात् अन्तरंग कहा जाता है। उनमें भी इतना भेद है विवेकादिकोंका

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वेदान्त-श्रवणमें उपयोग है और श्रवणादिकोंका ज्ञानमें उपयोग है। इसलिए विवेकादिकोंकी अपेक्षासे श्रवणादिक अन्तरंग हैं और उनकी अपेक्षासे विवेकादिक बहिरंग हैं। यद्यपि विवेकादिकोंको भी ज्ञानके अन्तरंग साधन ही सभी ग्रन्थोंमें बतलाया है बहिरंग नहीं, परन्तु विवेकादिकोंका ज्ञानके साधन श्रवणमें प्रत्यक्ष फल है और श्रवणादिकोंकी तरह विवेकादिक जिज्ञासुको उपादेय (ग्रहण करने योग्य) हैं, यज्ञादिकोंकी तरह हेय (छोड़ने योग्य) नहीं हैं इसलिए उन विवेकादिकोंको ज्ञानका अन्तरंग साधन कहा जाता है और यज्ञादिकोंकी अपेक्षासे भी अन्तरंग (समीप) हैं, इसलिए भी उन्हें अन्तरंग साधनोंमें गिना जाता है। हमने यहाँ केवल श्रवणादिकोंकी अपेक्षासे ही विवेकादिकोंको बहिरंग साधन कहा है।

और विचारसे देखिये तो ज्ञानके मुख्य अन्तरंग साधन "तत्त्वमसि" आदि महावाक्य हैं, श्रवणादिक भी नहीं; क्योंकि श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं हैं, किन्तु बुद्धिके दोष जो असंभावना और विपरीत-भावना हैं उनको नष्ट करके परंपरासे ज्ञानमें उपयोगी हैं।

अब श्रवण मननादि किस प्रकार असंभावना और विपरीत-भावनाको नष्ट करते हैं, इस बातको समझनेके लिए पहले श्रवणादि तथा असंभावनादिका स्वरूप समझना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्रवणका स्वरूप समझाते हुए पञ्चदशीकार श्रीस्वामी विद्यारण्यजी महाराज तृप्तिदीप प्रकरणमें लिखते हैं :—

"वेदान्ताना-मशेषाणा-मादि-मध्याऽवसानतः ।
ब्रह्मात्मन्येव तात्पर्यमिति धीः श्रवणं भवेत् ॥१०१॥"

अर्थ :– आदि मध्य और अन्तमें कहींसे भी युक्तियों द्वारा विचार करनेपर सब वेदान्तोंका (उपनिषदोंका) तात्पर्य, ब्रह्मरूप आत्मामें अर्थात् आत्मा और ब्रह्मके एकत्वमें ही है ऐसा जो निश्चय वह 'श्रवण' होता है।" इसी बातको समझाते हुए श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज लिखते हैं :—"युक्तिसे वेदान्त-वाक्योंका तात्पर्य-निश्चय श्रवण कहलाता है।" यहाँ 'युक्ति' शब्दसे वेदान्तरूप उपनिषदोंके तात्पर्यका निश्चय करानेवाले षड्लिंगों (तात्पर्यका निर्णय करानेवाले छः थर्मामीटर अर्थात् निर्णायकों) का ग्रहण है। वे छः लिंग (निर्णय करनेके साधन) ये हैं :—

"उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्य-निर्णये ॥"

टीका :–(१) उपक्रम (आरम्भ) और उपसंहार (समाप्ति) की एकरूपता यह प्रथम लिंग (निश्चायक) है। जैसे:– वेदान्त अर्थात् उपनिषदोंमें आदि तथा अन्तमें एक ब्रह्मरूप अद्वितीय तत्त्वका प्रतिपादन किया गया है।

(२) अभ्यास अर्थात् आवृत्ति (बार बार निरूपण) जैसे :– वेदान्तोंमें बार बार जीव और ब्रह्मकी एकताका वर्णन आया है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(३) अपूर्वता अर्थात् अविषयता (किसीका विषय= Object न बनना) जैसे :— वेदान्तका प्रतिपाद्य अद्वितीय परब्रह्म श्रुतिसे भिन्न अन्य किसी प्रमाणका विषय नहीं है अथवा ब्रह्मस्वरूप आत्मदेव स्वप्रकाश होनेसे किसी भी प्रमाणका विषय नहीं हैं। वेदान्त (उपनिषद्) तो केवल आवरणका भंग करते हैं । कहा भी है "सर्वे वेदान्ता आवरण-भंगे प्रवृत्ताः ।" अर्थात् सभी वेदके अन्तिम काण्ड उपनिषद् आवरणके भंगमें ही प्रवृत्त हुए हैं।" इस प्रकार जो ब्रह्ममें अविषयता है वही अपूर्वता है ।

(४) फल अर्थात् प्रयोजन जैसे :— वेदान्तके श्रवणादिसे उत्पन्न हुए अद्वैत ब्रह्मके ज्ञानसे सर्व दुःखोंकी निवृत्ति व परमानंदकी प्राप्तिरूप अद्वैत ब्रह्म-स्वरूप मोक्ष पदकी प्राप्ति फल कहा गया है ।

(५) अर्थवाद अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तुकी प्रशंसा तथा उससे विपरीतकी निंदा करना; जैसे :— उपनिषदोंमें अद्वैत परब्रह्मके ज्ञानकी (अभेद-ज्ञानकी) प्रशंसा तथा द्वैत-(भेद)-ज्ञानकी निंदा कही गई है ।

(६) उपपत्ति अर्थात् दृष्टान्त आदि युक्तियोंसे कथन करना; जैसे :— वेदान्तमें अनेक युक्तियोंसे जीव और ब्रह्मकी एकतारूप अद्वैत-तत्त्वका वर्णन किया गया है ।

इन छः लिंगों द्वारा वेदान्त वाक्योंका अद्वैत ब्रह्ममें तात्पर्य है ऐसा निश्चय होता है और वह निश्चय ही श्रवण कहलाता है तथा वेदान्त शास्त्रका अभ्यास भी इस निश्चयका साधन होनेके नाते श्रवण कहलाता है ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मननका स्वरूप समझाते हुए श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज लिखते हैं :— "जीव और ब्रह्मके अभेदकी साधक तथा भेदकी बाधक युक्तियोंसे अद्वितीय ब्रह्मका चिंतन मनन कहलाता है।"

पंचदशीकार श्रीस्वामी विद्यारण्यजी महाराज भी श्रवणका उपसंहार करते हुए मननका स्वरूप समझाते हुए कहते हैं :—

"समन्वयाध्याय एतत् सूक्तं, धी-स्वास्थ्य-कारिभिः ।
तर्कैः संभावनाऽर्थस्य द्वितीयाध्याय ईरिता ॥"
(तृप्तिदीप० श्लो० १०२)

अर्थ :– भगवान् व्यासने इसी 'श्रवण' का [ब्रह्मसूत्र= वेदान्त-दर्शनके] समन्वय नामके प्रथम अध्यायमें भली भांति वर्णन किया है तथा दूसरे अध्यायमें [अद्वितीय तत्त्वको समझनेमें जो जो अड़चने होती हैं उन सबको हटाकर] बुद्धिका सन्तोष करदेनेवाले तर्कों अर्थात् युक्तियोंसे अद्वैतरूप अर्थकी संभावना की है [कि श्रवण किया हुआ अर्थ यों यों संभव है] उसीको मनन कहते हैं।"

निदिध्यासन (आत्म-ध्यान) का स्वरूप समझाते हुए श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज कहते हैं:— "अनात्माकार वृत्तिके व्यवधानसे रहित ब्रह्माकार-वृत्तिकी स्थितिको **निदिध्यासन** कहा जाता है और निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थाको ही **समाधि** कहते हैं। इसलिए समाधिका भी निदिध्यासनमें अन्तर्भाव होनेसे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

समाधिको ज्ञानके आठ साधनोंसे पृथक् नहीं माना गया है। इस निदिध्यासनका दूसरा नाम एकाग्रता भी है। यह एकाग्रता ब्रह्माभ्याससे प्राप्त होती है। उस ब्रह्माभ्यासका स्वरूप समझाते हुए पंचदशीकार कहते हैं :—

"तच्चिन्तनं तत्कथन-मन्योऽन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेक-परत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदु-र्बुधाः॥" (७/१०६)

अर्थ :— जीव और ब्रह्मके एकत्व-स्वरूपका अर्थात् अद्वैत-तत्त्वका चिन्तन करना, उसीका कथन करना, एक दूसरेको उसी तत्त्वको समझाना तथा सदा केवल तन्निष्ठ होकर रहना, इसीको ज्ञानी लोग ब्रह्माभ्यास कहते हैं।" ऐसा ब्रह्माभ्यास करते करते चित्तकी एकाग्रतारूप निदिध्यासनकी प्राप्ति होती है। साधकके लिए इस निदिध्यासनका आदेश देती हुई श्रुति भगवती कहती है —

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।
नानुध्यायाद्-बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्॥"

अर्थ :—धीर (ब्रह्मचर्य आदि साधनोंसे युक्त) ब्राह्मण (ब्रह्मपदको चाहनेवाले मुमुक्षु) को उचित है कि उसी आत्मस्वरूप परमात्माको पूर्णरूपसे जानकर [जिससे आत्मा और परमात्माके अभेद (एकत्व) में किसी प्रकारके संशयादि न रह जाँय] प्रज्ञा (निदिध्यासन=एकाग्रता) करे अर्थात् ब्रह्म और आत्माके एकत्व-ज्ञानकी निरन्तर धारा बहा दे। अनात्माको विषय करनेवाले बहुतसे शब्दोंका ध्यान [और कथन दोनों] छोड़ दे; क्योंकि वह [द्वैत-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ध्यान व द्वैत-कथन] केवल मन और वाणीकी थकावटका कारण ही होता है।" द्वैतमूलक शब्दोंका ध्यान करनेसे मन व्यर्थ थकता है तथा द्वैत-प्रतिपादक शब्दोंको बोलनेसे वाणीको व्यर्थ परिश्रम होता है। इस प्रकार वेदने अपने मुखसे इसी **निदिध्यासनका** वर्णन किया है।

ये श्रवण, मनन व निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं हैं परन्तु **असंभावना** (संशय) और **विपरीत-भावना** इन बुद्धिके दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं।

'यह रस्सी है या सर्प है' इस प्रकार एकमें विरुद्ध अनेक कोटिवाले ज्ञानको **असंभावना** अर्थात् संशय कहते हैं। संशय दो प्रकारका होता है (१) **प्रमाणगत संशय** (२) **प्रमेयगत संशय**।

(१) वेदान्त-वाक्य अद्वितीय ब्रह्मके अर्थात् जीव ब्रह्मके एकत्वके प्रतिपादक हैं अथवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं इस प्रकार प्रमाणमें (वेदान्तमें = उपनिषदोंके वचनोंमें) जो संशय होता है उसे **प्रमाणगत संशय** कहते हैं। ऐसा संशय ऊपर कहे हुए श्रवणसे नष्ट होता है।

(२) जीव व ब्रह्मका अभेद सत्य है अथवा भेद सत्य है? इत्यादिरूपसे अनेक प्रकारवाला प्रमेय (जानने योग्य अद्वैत-तत्त्व व मोक्ष आदि पदार्थ) में जो संशय होता है उसे **प्रमेयगत संशय** कहते हैं। यह प्रमेयगत संशय ऊपर कहे हुए मनन से दूर होता है।

विपरीत-भावनाका स्वरूप समझाते हुए पंचदशीकार लिखते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"यद्यथा वर्तते तस्य तत्त्वं हित्वाऽन्यथात्वधीः ।
विपरीता भावना स्यात् पित्रदावरिधीर्यथा ॥" (७/११०)

अर्थ :– जिस [सीपि आदि] पदार्थका जो स्वरूप है, उसके उस स्वरूपको छोड़कर उसे अन्यथा [चांदी आदिरूपसे] समझ लिया जाय, यह 'विपरीत-भावना' कहलाती है। [इसीको 'अतत्को 'तत्' समझ लेना भी कहा जाता है] जैसे किसी नासमझ बालक या युवकको पिता आदि हितैषियोंमें शत्रु-बुद्धि हो जाती है उसे भी विपरीत-भावना कहते है।"

जैसे रस्सीमें 'यह सर्प है' इस प्रकारकी जिस अविद्याकी वृत्तिको भ्रान्ति-ज्ञान कहते हैं वही **विपर्यय** अथवा **विपरीत-भावना** कहलाती है, उसीको **ज्ञानाध्यास** और **विपरीत-ज्ञान** भी कहते हैं। इस लक्षणके अनुसार देहादिको आत्मा समझना तथा जगत्को सत्य मान बैठना विपरीत-भावना है। इस विपरीत-भावनाका वर्णन करते हुए पंचदशीकार लिखते हैं :—

"आत्मा देहादि-भिन्नोऽयं मिथ्या चेदं जगत्तयोः ।
देहाद्यात्मत्व-सत्यत्वधी-र्विपर्यय-भावना ॥" (७/१११)

अर्थ :— सच्ची बात यह है कि यह आत्मा देहादियोंसे भिन्न है और यह जगत् मिथ्या है, ऐसा होनेपर भी आत्माको तो देहादिरूप मान लेना तथा जगत्को सत्य समझ लेना, यही विपरीत-भावना है।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यह विपरीत-भावना निदिध्यासनसे दूर होती है। इस बातको समझाते हुए श्रीस्वामी विद्यारण्यजी महाराज भी लिखते हैं :—

"तत्त्व-भावनया नश्येत् साऽतो देहातिरिक्तताम् ।
आत्मनो भावयेत् तद्विन्मथ्यात्वं जगतोऽनिशम् ॥" (७/११२)

अर्थ :— वह विपरीत-भावना क्योंकि तत्त्व-भावनासे (आत्मा देहादिसे भिन्न है तथा यह जगत् मिथ्या है, ऐसा निरन्तर ध्यान अर्थात् निदिध्यासन करते रहनेसे) नष्ट हो जाती है। इसलिए साधकका यह कर्त्तव्य है कि वह दिनरात निरन्तर आत्माकी देहादिसे भिन्नता तथा सच्चिदानंद-स्वरूपता (परब्रह्मरूपता) की और देहादि जगत्के मिथ्यापनकी भावना किया करे।" इस प्रकारकी मानसिक स्थितिरूप निदिध्यासन से अर्थात् वृत्तिकी एकाग्रतासे विपरीत-भावना नष्ट होती है।

इसप्रकार श्रवण, मनन व निदिध्यासन ये तीनों असंभावना व विपरीत-भावनाको नष्ट करनेवाले हैं और असंभावना व विपरीत-भावना ज्ञानके प्रतिबन्धक (रुकावट डालनेवाले) हैं इसलिए प्रतिबन्धकोंके नाश-द्वारा परम्परासे श्रवणादि ज्ञानके हेतु (साधन) हैं, साक्षात् हेतु नहीं। ज्ञानके साक्षात् साधन तो कानमें पड़े हुए वेदान्त-वाक्य हैं। जैसे नेत्रोंमें डाला हुआ अंजन, नेत्र-रोगकी निवृत्ति द्वारा (परंपरासे) सूर्यके दर्शनका साधन है, साक्षात् नहीं; सूर्यके दर्शनका साक्षात् साधन तो नेत्र हैं। उसी प्रकार श्रवणादि ज्ञानके प्रतिबन्धक-रूप असंभावनादिकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निवृत्ति द्वारा ज्ञानके साधन हैं; बाकी ज्ञानके साक्षात् साधन तो श्रोत्रसंबंधी वेदान्त-वाक्य हैं। वे वेदान्त-वाक्य दो प्रकारके होते हैं। (१) अवांतर-वाक्य (२) महावाक्य। परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपको बतलानेवाले वाक्य अवान्तर-वाक्य कहलाते हैं। जैसे "सत्यं ज्ञान-मनन्तं ब्रह्म" (तै० २-२) "य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्यु-र्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः········ ।" (छा० ८-७-१) अर्थात् जो आत्मा [धर्माधर्मादिरूप] पापशून्य, जरारहित, मृत्युहीन, विशोक, क्षुधारहित व पिपासा-रहित है············ ।" इत्यादि। तथा जीव और परमात्माकी एकताके बोधक वाक्योंको महावाक्य कहते हैं। जैसे "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि। इनमें अवांतर-वाक्यसे परोक्ष ज्ञान होता है और महावाक्यसे अपरोक्ष ज्ञान होता है। "ब्रह्म है" इस ज्ञानको परोक्ष ज्ञान कहते हैं तथा 'ब्रह्म मैं हूँ" इस ज्ञानको अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं। जब आचार्य "तू (तुम्हारा वास्तविक स्वरूप) ब्रह्म है" इस महावाक्यका उच्चारण करता है, तब उस वाक्यका उत्तम अधिकारी श्रोताके कानसे संबन्ध होते ही "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा अपरोक्ष बोध (प्रत्यक्ष ज्ञान) श्रोताको हो जाता है परन्तु श्रोताके कानसे यदि महावाक्यका संबन्ध न हो अर्थात् यदि श्रोता उस वाक्यको सुने ही नहीं तो ज्ञान नहीं होगा इसीलिए श्रोत्र-संबन्धी वाक्य ही ज्ञानका हेतु (साधन) माना जाता है।

श्रोत्र-संबन्धी अवान्तर-वाक्य परोक्ष ज्ञानका हेतु है और श्रोत्र-संबन्धी महावाक्य अपरोक्ष ज्ञानका हेतु है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

महावाक्यसे सबको अपरोक्ष ही ज्ञान होता है, परोक्ष नहीं।

वेदान्तके एकदेशीका मत

सिद्धान्तके एक देशका आश्रय लेकर स्वतंत्र अपनी तरफसे कुछ अधिक निरूपण करनेवालेको एकदेशी कहा जाता है। एकदेशीका यह मत है:—

(१) श्रवण, मनन व निदिध्यासनके सहित महावाक्यसें अपरोक्ष ज्ञान होता है। और

(२) केवल महावाक्यसे परोक्ष ज्ञान होता है, अपरोक्ष नहीं। यदि केवल महावाक्यसे अपरोक्ष ज्ञान मान लिया जाय तो श्रवण, मनन व निदिध्यासन व्यर्थ हो जायेंगे।

सिद्धान्ती :– केवल महावाक्यसे ही अपरोक्ष ज्ञान होता है और श्रवणादिसे असंभावना तथा विपरीत-भावनाका नाश होता है इसलिए श्रवणादि भी व्यर्थ नहीं हैं।

एकदेशी :– जिस वस्तुका अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान हो जाता है उसमें फिर किसीको भी असंभावना (संशय) और विपरीत-भावना (भ्रान्ति) नहीं होती। इसलिए केवल महावाक्यसे प्रत्यक्ष ज्ञानको माननेवाले आपके मतमें "तत्वमसि" आदि महावाक्योंसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जानेके बाद असंभावना और विपरीत-भावना हो नहीं सकती; और जब संशय और भ्रान्ति ही नहीं होगी तो फिर उसके निवारणार्थ श्रवण व मननादिकी भी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। अतः अनावश्यक होनेसे श्रवणादि साधन जिनको "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निदिध्यासितव्यः ।" इस श्रुतिने ब्रह्म-साक्षात्कारके जो साधन बताये हैं, वे सब व्यर्थ हो जायेंगे। इस प्रकार श्रवणादिके व्यर्थ सिद्ध हो जानेसे यह मत वेद-विरुद्ध प्रतीत होता है। और "केवल महावाक्य सुननेसे परोक्ष ज्ञान होता है तथा फिर श्रवण, मनन व निदिध्यासन करनेसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान होता है।" इस हमारे मतमें श्रवणादि व्यर्थ न होनेसे हमारा मत वेद-संगत होनेके कारण समीचीन है। [यह बहुत ग्रन्थकारोंका मत है]

॥ एकदेशी मतकी असमीचीनता ॥

सिद्धान्ती :– जो वस्तु व्यवहित (काल और देश द्वारा दूर) होती है उसका शब्दसे परोक्ष (अप्रत्यक्ष) ही ज्ञान होता है, अपरोक्ष ज्ञान किसी प्रकारभी नहीं हो सकता। जैसे व्यवहित (दूर) स्वर्ग नरक अथवा लंदन आदिका और इन्द्र आदि देवताओंका, शास्त्र अथवा रेडियो आदिरूप शब्दसे परोक्ष ही ज्ञान होता है। और जो पदार्थ अव्यवहित (वर्तमान तथा समीप) होता है, उसका शब्दसे परोक्ष तथा अपरोक्ष दोनों प्रकारके ज्ञान होते हैं।

एकदेशी :— अव्यवहित (वर्तमान तथा समीप) वस्तुका अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान ही होता है, परोक्ष ज्ञान कैसे होगा ?

सिद्धान्ती :— जहाँ अव्यवहित वस्तुको शब्द 'अस्ति' (है) रूपसे बतलाता है वहाँ अव्यवहित वस्तुका भी परोक्ष ही ज्ञान होता है। जैसे कोई दश गाँवके भंगेड़ी चुकी (भाँग) पीकर इकट्ठे हो दूसरे गाँवमें मेला देखने जा रहे थे। रास्ते

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में उन्हें मृगतृष्णाका जल दिखाई दिया। उस जलको सत्य मानकर चलते चलते जब पार हो गए तब उनका मुखिया अपनेको छोड़कर बाकी सबको गिनने लगा। गिनतीमें नौ आनेसे रोने लगा कि 'हाय दशवाँ डूब गया।' किसी पथिक दयालु पुरुषने उससे रोनेका कारण पूछा। भंगेड़ियोंके उस मुखियाने कहा "हम दश जने मेला देखने चले थे। हममेंसे एक जना इस सामनेवाले जलमें डूब गया है।" उस बुद्धिमान पुरुषने देखा कि सामने तो जल है नहीं और पूरे दश होने पर भी, नशेमें स्वयंको भूलकर दशवेंके लिए मुखिया रो रहा है तब उससे कहा "घबराओ मत दशवाँ है।" तब उसे सत्य वक्ता समझ कर उस भंगेड़ीको दशवां स्वयं अव्यवहित होने पर भी "दशम पुरुष है" इस प्रकार 'अस्ति' (है) रूपसे बतलाए गए अव्यवहित अपने दशवें स्वरूपका भी शब्दसे परोक्ष ही ज्ञान हुआ।

और जहाँ अव्यवहित (वर्तमान तथा समीप) वस्तुका 'यह है' [जैसे 'यह गीता है'] इस प्रकार शब्द बोध कराता है वहाँ उस अव्यवहित पदार्थका शब्दसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान ही होता है, परोक्ष नहीं। जैसे जब उस भंगेड़ियोंके मुखियाने पूछा कि "दशवाँ यदि है तो कृपया बताओ कि वह कहाँ है ?" तब उस दयालु पुरुषने और नौ आदमियोंको गिनते हुए अलग करके फिर जोरसे कहा कि "जो तू इन नौ आदमियोंको देख रहा है वह इन सबका साक्षी दशवाँ तू है।" इस प्रकार "दशवाँ तू है" इस शब्द द्वारा बतलाए

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गए अपने दशवेंपनका उसको अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान होगया। क्योंकि यह ज्ञान यद्यपि 'दशवाँ तू है' इस शब्दसे हुआ है फिर भी दशवाँ व्यक्ति अव्यवहित (अत्यन्त समीप) है अतः प्रत्यक्ष ज्ञान ही उसका होता है। इसी प्रकार ब्रह्म यद्यपि आत्मस्वरूप है, अतः अत्यन्त अव्यवहित (अत्यन्त समीप) है, फिर भी ब्रह्मके स्वरूप-बोधक 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि अवान्तर वाक्य ब्रह्मका अस्तित्वमात्र बतलाते हैं न कि उसकी आत्म-स्वरूपताको। अतः उन अवान्तर वाक्योंसे उस आत्मस्वरूप ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान ही होता है।

और "दशवां तू है" इस वाक्यकी तरह श्रोताको 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य आत्मरूपसे ब्रह्मका बोध कराते हैं। इसलिए महावाक्यसे अव्यवहित ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान नहीं किन्तु अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान ही होता है।

यहाँ यह रहस्य है :- जैसे दशम पुरुषको मन और नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष करने योग्य अपने दशवेंपनका, मन व नेत्ररूप साधन-सामग्रीके होने पर भी अपरोक्ष बोध नहीं हुआ; किन्तु "दशवाँ तू है" इस वाक्यसे ही अपरोक्ष ज्ञान हुआ है इसलिए दशमके अपरोक्ष ज्ञानका प्रमाण (मुख्य साधन) तो शब्द है, मन और नेत्र उस शब्दके सहकारी हैं। उसी प्रकार ब्रह्मके साक्षात्कारका प्रमाण (मुख्य साधन) तो महावाक्यरूप शब्द है तथा साधनों द्वारा शुद्ध मन उसका सहकारी है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

एकदेशी :– जिस पदार्थका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसके विषयमें असंभावना और विपरीत-भावना नहीं हुआ करतीं। अतः महावाक्यके श्रवण-मात्रसे ही यदि ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है तो फिर संशय व भ्रान्तिके न रहनेसे वेद-विहित श्रवण, मनन व निदिध्यासन अनावश्यक होनेसे व्यर्थ हो जायेंगे।

सिद्धान्ती :– यह आपका कथन ठीक नहीं; क्योंकि प्रत्यक्ष दर्शन होने पर भी दूषित अन्तःकरणमें संशय व भ्रान्ति बनी रहती है। जैसे राजाको जंगलमें गए हुए अपने भर्छ नामक मंत्रीका प्रत्यक्ष ज्ञान होनेपर भी विपरीत-भावना (भ्रान्ति) दूर नहीं हुई; उसी प्रकार महावाक्यसे ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान होनेपर भी जिसकी बुद्धिमें असंभावना व विपरीत-भावनारूप दोष होते हैं, उनका दोष-रूप-कलंक-सहित ज्ञान मोक्षरूपी फलका हेतु नहीं होता। ऐसे संशयालु व भ्रान्त साधकको दोषकी निवृत्तिके लिए श्रवणादि करना चाहिए और जिस उत्तम साधकके हृदयमें संशयादि दोष नहीं हैं उसके लिए श्रवणादिकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतः अकृतोपासन (जिसने पूर्व उपासनादि साधनों द्वारा अपना मन शुद्ध नहीं किया है ऐसे साधक) के लिए वेद-विदित श्रवणादिक असंभावनादि दोषोंके निवर्त्तक होनेसे सफल होनेके नाते व्यर्थ नहीं हैं। और उत्तम अधिकारीके हृदयमें संशयादि दोषोंके न रहनेसे उसे केवल महावाक्यके श्रवण-मात्रसे ही ब्रह्मका अपरोक्ष

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ज्ञान हो जाता है। पंचदशीकार श्रीस्वामी विद्यारण्यजी महाराज भी इसी बातको समझाते हुए कहते हैं :—

"ब्रह्मापरोक्ष्य-सिद्ध्यर्थं महावाक्य-मितीरितम्
वाक्य-वृत्तावतो ब्रह्मापरोक्ष्ये विमति-र्नहि ॥" (७।७०)

अर्थ :— वेदान्तके आचार्य भगवान् शंकराचार्यजीने वाक्य-वृत्तिमें 'ब्रह्मका अपरोक्ष (साक्षात्कार) करनेके लिए ही महावाक्य हैं' ऐसा कहा है। इसलिए महावाक्यसे ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेमें कोई विप्रतिपत्ति (वैमत्य) नहीं रहती।" इस प्रकार आचार्योंका स्पष्ट संकेत होनेपर भी जो एकदेशी महावाक्यसे परोक्ष ज्ञान मानते हैं उन्हें संकेत करते हुए श्रीपंचदशीकार लिखते हैं :—

"एवं सति महावाक्यात् परोक्ष-ज्ञान-मीर्यते।
यैस्तेषां शास्त्र-सिद्धान्त-विज्ञानं शोभतेतराम् ॥" (७।७९)

अर्थ :— इतना सब सुन चुकनेपर भी जो लोग यह कहते ही जाते हैं कि महावाक्यसे परोक्ष ज्ञान ही होता है उनका शास्त्र-सिद्धान्तोंका ज्ञान तो बहुत बढिया है अर्थात् हंसीके योग्य है।" वास्तवमें वे सिद्धान्त-रहस्यको नहीं जानते। इस प्रकार उनपर उपहास करते हुए श्रीविद्यारण्य स्वामीजी कहते हैं :—

"स्वतोऽपरोक्ष-जीवस्य ब्रह्मत्व-मभिवाञ्छतः।
नश्येत् सिद्धाऽपरोक्षत्व-मिति युक्ति-र्महत्यहो ॥" (७।८१)

अर्थ :— सिद्धान्ती हंसीमें कहता है तुम्हारी यह युक्ति बड़ी भारी युक्ति रही कि जो जीव अभी तक स्वतः अपरोक्ष

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(प्रत्यक्ष) था, उसे जब ब्रह्म-भावकी इच्छा हुई तो उसकी [पहलेसे] सिद्ध अपरोक्षता भी जाती रही।" तात्पर्य यह है कि, क्योंकि आत्मा ब्रह्मरूप है यह ज्ञान 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि महावाक्यरूप शब्दसे हुआ और 'शब्दसे जो ज्ञान होता है वह परोक्ष होता है' यह सिद्धान्त मान लेनेपर जो आत्मा पहिले प्रत्यक्ष था अब परोक्ष बन गया। अतः महावाक्योंको परोक्ष (अप्रत्यक्ष) ज्ञानका जनक मानना ठीक नहीं है। यदि उपर्युक्त दोषको एकदेशी इष्टापत्ति माने तो उसपर श्रीपंचदशीकार कहते हैं :—

"वृद्धि-मिष्टवतो मूल-मपि नष्टमिती-दृशम् ।
लौकिकं वचनं सार्थं सम्पन्नं त्वत्-प्रसादतः ॥" (७।८२)

अर्थात् तुम्हारे जैसे अविचार-शीलकी कृपासे यह लौकिक वचन सार्थक हो गया कि 'सूद चाहने वालेका मूल-धन भी नष्ट हो गया'।"

एकदेशी :– यदि एक बार महावाक्य सुनने-मात्रसे अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है तो फिर "आवृत्ति-रसकृदुपदेशात्" इस ब्रह्मसूत्र (वेदान्त-दर्शन) के सूत्र द्वारा भगवान् वेद-व्यासजीने बार बार श्रवणादि करनेका आदेश क्यों किया है ?

सिद्धान्ती :– यह हम पहले कह चुके हैं कि वेदोंने तथा आचार्योंने श्रवणादिका विधान उन साधकोंके लिए किया है जिनका मन, पूरा शुद्ध न होनेसे असंभावना (संशय) व विपरीत-भावना (भ्रान्ति) रूपी दोषोंसे युक्त होनेके कारण

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

महावाक्यके सुननेसे भी अपरोक्ष ज्ञान दृढ नहीं होता अर्थात् संशयादि रह जाते हैं। ऐसे साधकोंके लिए भगवान् शंकराचार्यजी भी श्रवणादिका विधान करते हुए कहते हैं :—

"अहं ब्रह्मेति-वाक्यार्थ-बोधो यावद् दृढीभवेत् ।
शमादि-सहितस्तावदभ्यसेच्छ्रवणादिकम् ॥"

अर्थ :– जब तक किसीको "मैं ब्रह्म हूँ" इस वाक्यके अर्थ का ज्ञान दृढ (असंभावना व विपरीत-भावनासे रहित) न हो जाय, तब तक वह शमदमादिसे युक्त होकर, श्रवणादिका अभ्यास किया करे।"

बाकी उत्तम अधिकारीके लिए तो भगवान् वसिष्ठजी कहते हैं "हेरामजी! फूल मसलनेमें भी देरी लगती है, आत्मज्ञान होनेमें इतनी भी देरी नहीं लगती।" अतः यह सिद्ध हुआ कि अन्य अधिकारियोंको संशयादि निवृत्त करनेके लिए श्रवणादि आवश्यक हैं परन्तु उत्तम अधिकारीको तो महावाक्यके श्रवण-मात्रसे ही दृढ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होजाता है।

जैसे हाथने ढक्कनरूपी प्रतिबन्धकको हटाया फिर भी आँखने हीरेको देखा यही कहा जाता है, अर्थात् हीरेके दर्शनका साधन नेत्र है हाथ नहीं; इसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञानके साधन महावाक्य हैं श्रवणादि नहीं। परन्तु ज्ञानके प्रतिबन्धक संशयादि दोषोंके नाशक होनेके नाते श्रवणादि भी ज्ञानके हेतु कहलाते हैं। और श्रवणादिकोंके हेतु (साधन) विवेकादिक हैं। इसलिए विवेकादि भी ज्ञानके साधन कहलाते हैं। अतः विवेकादि चार साधनोंसे संयुक्त जो साधक है वही अधिकारी है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

॥ सम्बन्ध-वर्णन ॥

दोहा :— प्रतिपादक-प्रतिपाद्यता, ग्रन्थ ब्रह्म सम्बन्ध ।
प्राप्य-प्रापकता कहत, फल अधिकृतको फंद ॥

सम्बन्ध :— (१) ग्रन्थका और विषयका प्रतिपाद्य-प्रतिपादक-भाव सम्बन्ध है । ग्रंथ प्रतिपादक (बतलानेवाला) है और विषय प्रतिपाद्य (बतलाने योग्य) है ।

(२) अधिकारी और फलका प्राप्य-प्रापक-भाव सम्बन्ध है । फल प्राप्य (पाने योग्य) है और अधिकारी प्रापक (पानेवाला) है ।

(३) अधिकारीका और विचारका कर्तृ-कर्त्तव्य-भाव सम्बन्ध है । अधिकारी कर्त्ता (करनेवाला) है और विचार कर्त्तव्य (करने योग्य) है ।

(४) ग्रन्थका और ज्ञानका जन्य-जनक-भाव सम्बन्ध है । विचार-द्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक (उत्पन्न करनेवाला) है और ज्ञान जन्य (उत्पन्न होनेवाला) है ।

विषय-वर्णन

दोहा :— जीव ब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि ।
तिनको जे अंतर लहै, ते मतिमन्द अबुद्धि ॥

टीका :— जीव और ब्रह्मकी एकता इस ग्रन्थका विषय है । जिसका प्रतिपादन (कथन) किया जाता है उसे विषय कहते हैं । इस ग्रन्थमें जीव और ब्रह्मकी एकताका

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रतिपादन किया जायगा। इसलिए वह एकता इस ग्रन्थका विषय है। समस्त वेदके वचन भी इसी एकता (आत्मा और परमात्माकी एकता) का वर्णन करते हैं। इसलिए जो लोग जीव और ब्रह्मका वास्तविक भेद कहते हैं वे मन्द-बुद्धि, विचार-हीन और वेदके विरोधी हैं।

॥ प्रयोजन-वर्णन ॥

दोहा :– परमानन्द स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि।
जगत समूल अनर्थ पुनि, ह्वै ताकी अतिहानि॥

प्रपंचका कारण अज्ञान और प्रपञ्च दोनों जन्म व मरणरूपी दुःखके कारण हैं। इसलिए दोनों अनर्थ कहलाते हैं। इस-अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिको **मोक्ष** कहते हैं। वह (मोक्ष) ग्रन्थका परम प्रयोजन है और अवान्तर प्रयोजन ज्ञान है। (१) जिसमें व्यक्तिकी अभिलाषा (इच्छा) होती है वह **परम प्रयोजन** कहलाता है, उसे **पुरुषार्थ** भी कहते हैं। और सभी व्यक्तियोंको जिस दुःखकी निवृत्तिमें और सुखकी प्राप्तिमें अभिलाषा (इच्छा) होती है, वही **मोक्ष का स्वरूप** है।

अतः परम प्रयोजन मोक्ष है, ज्ञान नहीं, क्योंकि सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिका साधन तो ज्ञान है परन्तु ज्ञान सुख-प्राप्तिरूप व दुःख-निवृत्तिरूप नहीं है। इसलिए ज्ञान अवान्तर प्रयोजन है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(२) जिसके द्वारा परम प्रयोजनकी प्राप्ति होती है वह अवांतर प्रयोजन कहलाता है। ग्रन्थके पढ़नेसे ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परम प्रयोजनकी प्राप्ति होती है; इसलिए ज्ञान अवान्तर प्रयोजन है।

॥ ग्रन्थके प्रयोजनमें शंका और समाधान ॥

॥ शंका-पूर्वक उत्तरका कवित्त ॥

जीवको स्वरूप अति, आनंद कहत वेद।
ताकूँ सुख-प्राप्तिको, असंभव बखानिये॥
आगे जो अप्राप्त वस्तु, ताकी प्राप्ति संभवत।
नित्य-प्राप्त वस्तुकी तौ, प्राप्ति किम मानिये?॥
ऐसी संका लेस आनि, कीजै न विस्वास हानि।
गुरुके प्रसादतैं, कुतर्क भले भानिये॥
करको कंकन खोयो, ऐसो भ्रम भयो जिहिं।
ज्ञानतैं मिलत इम, प्राप्त-प्राप्ति जानिये॥

शंका :– आपने अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन कहा, सो ठीक नहीं है; क्योंकि "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" अर्थात् प्रज्ञान (चेतन-स्वरूप) जो जीव है वह आनंदरूप ब्रह्म है। इस प्रकार चारों वेदोंमें जीवका स्वरूप परमानंद बतलाया है तथा आप इस बातको स्वीकार भी करते हैं। और जो वस्तु अप्राप्त होती है उसकी प्राप्ति बन

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सकती है तथा जो वस्तु सदा प्राप्त है उसकी प्राप्ति कहना बनता नहीं, इसलिए सदा परमानंद-स्वरूप आत्माको परमानंद की प्राप्ति कहना सब प्रकारसे असंभव है।

समाधानः– प्रिय वत्स! इस शंकासे ग्रन्थके प्रयोजनमें विश्वास दूर नहीं करना, किन्तु आत्म-विद्याके उपदेशक जो गुरुदेव हैं, उनकी कृपासे दृष्टान्त-द्वारा शंका दूर कर देनी चाहिये। वह दृष्टान्त सुनो :–

जैसे किसीके हाथमें कंकन था। उसे यह भ्रम हो गया कि 'मेरा कंकन खो गया' बादमें किसीके कहनेसे उसे ऐसा ज्ञान हो गया कि 'मेरा कंकन तो मेरे हाथमें ही है।' तब वह कहने लगा कि "मेरा कंकन मिल गया है।" इस प्रकार पहलेसे प्राप्त कंकनकी भी प्राप्ति कही जाती है।

इसी प्रकार परमानंद-स्वरूप आत्माके बारेमें जीवको अविद्याके कारण ऐसी भ्रान्ति होती है कि 'मेरा असली स्वरूप आत्मा परमानंद स्वरूप नहीं है किन्तु परमानद स्वरूप तो ब्रह्म है। उस ब्रह्मका और मेरा वियोग हो गया है। उपासना करके उस ब्रह्मको मैं प्राप्त कर लूंगा। इस प्रकार की भ्रान्ति बहुत अज्ञानी प्राणियोंको हो रही है।

शंका :– भगवन्! ऐसा तो बहुत पण्डित भी कहते हैं।

समाधान :– प्रिय वत्स! ब्रह्मका वियोग कोई भी क्यों न कहे, उसे वैसा ही समझना चाहिए; क्योंकि जो जीव और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मकी अलग सत्ता मानकर वास्तविक भेद मानते हैं, वे अज्ञानी ही कहे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको पुण्य संस्कारोंके जगनेपर यदि कभी ब्रह्मज्ञानी आचार्यसे वेदान्त ग्रन्थोंके श्रवणका अवसर मिल जाता है, तब उस सुने हुए अर्थका निश्चय हो जानेपर, इस प्रकार कहने लगते हैं कि 'ग्रन्थ और आचार्यकी परम कृपासे हमें परमानंदकी प्राप्ति हुई है।" उनके इस कथनका अभिप्राय यह है कि आत्मा तो परमानंद-स्वरूप पहले भी था परन्तु 'मेरा आत्मा परमानंद-स्वरूप है' इस प्रकार अनुभव नहीं हो रहा था। इसलिए अप्राप्तकी तरह था। आचार्य-द्वारा ग्रन्थके श्रवणसे परमानंद-स्वरूप का भान हुआ है इसलिए परमानंदकी प्राप्ति कह देते हैं। इस प्रकार प्राप्तकी भी प्राप्ति बनती है। अतः परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रन्थका प्रयोजन संभव है, इस विषयमें कोई भी असंभावना (संशय) नहीं करनी चाहिए।

जैसे नित्य प्राप्तकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है वैसे नित्य निवृत्तकी निवृत्ति भी प्रयोजन संभव है। जैसे रस्सी में सर्प नित्य निवृत्त है और रस्सीके ज्ञानसे निवृत्त होता है उसी प्रकार आत्मामें जन्म-मरणादि-दुःखरूप संसार नित्य निवृत्त है अर्थात् तीनों कालोंमें है ही नहीं, परन्तु अविद्याके कारण कल्पित प्रतीत हो रहा है। इस कल्पित बन्धनकी निवृत्ति आत्मज्ञानसे ही होती है। इसलिए नित्य निवृत्तकी निवृत्ति और नित्य प्राप्तकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका :– भगवन् ! कारण (अज्ञान) के सहित जगत्की निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन आपने कहा वह संभव नहीं है। क्योंकि निवृत्ति नाम ध्वंसका है तथा ध्वंस और नाश दोनोंका एक ही अर्थ होता है। नाश अभावरूप है और ब्रह्मकी प्राप्ति भावरूप है। इसलिए एक मोक्षमें भावरूपता और अभावरूपता दोनों धर्मोंकी प्रतीति होती है। वे दोनों एक जगह मोक्षरूप अधिकरणमें कैसे बन सकते हैं ? क्योंकि भावरूपता और अभावरूपता दोनों परस्पर दिन और रात्रिकी तरह विरोधी हैं। वे एक काल और एक वस्तुमें नहीं रह सकतीं; इसलिए ग्रन्थका प्रयोजन संभव नहीं है :—

इस असंभावना (शंका) के समाधानका दोहा

अधिष्ठानतैं भिन्न नहि।
जगत-निवृत्ति बखान ॥
सर्प-निवृत्ती रज्जु जिम।
भये रज्जुको ज्ञान ॥

समाधान :– "कल्पितकी निवृत्ति ज्ञातत्व-धर्मसे उपलक्षित अधिष्ठानरूप होती है" इस भाष्यकारके सिद्धान्ताऽनुसार कारण-सहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान सामान्य चेतन ब्रह्मरूप है, ब्रह्मसे भिन्न नहीं। जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रस्सीरूप है वैसे "समस्त कल्पित पदार्थोंकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होती है, अधिष्ठानसे पृथक् नहीं होती।" यह भाष्यकार आचार्य शंकरका सिद्धान्त है। इसलिये अनर्थ (अज्ञान-सहित जगत्) की निवृत्ति ब्रह्मरूप है, क्योंकि जो सम्पूर्ण अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है वह भावरूप है। इस प्रकार अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेसे ग्रन्थका प्रयोजन बनता है, यह बात सिद्ध हुई।

इस प्रकार इस प्रथम तरंगमें इस ग्रन्थके अधिकारी सम्बन्ध, विषय और प्रयोजन इन चारों अनुबन्धोंका सामान्य रूपसे वर्णन हुआ। अन्तमें श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज इस प्रथम तरंगको पढ़नेवाले जिज्ञासुओंको आशीर्वाद देनेके लिए अपने आचार्य श्रीदादू महाराजजीसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं :—

दोहा :— जो जन प्रथम तरंग यह, पढै ताहि तत्काल।
करहु मुक्त गुरु-मूर्ति ह्वै, दादू दीन-दयाल॥

अर्थ :— हे दीनदयाल श्रीदादू महाराज ! जो अधिकारी इस प्रथम तरंगको पढ़ें, उन्हें आप बिना विलम्बके गुरुदेवका रूप धारण करके अपने उपदेशामृत-द्वारा ज्ञान प्राप्त करवा कर इस जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त करदें।" इस दोहेमें श्रीनिश्चलदासजी महाराज व्यावहारिक दृष्टिसे अपने आचार्योंके प्रति सदा श्रद्धा-भाव बनाए रखना चाहिये ऐसा संकेत कर रहे हैं। मंगलाचरणमें "**काकूं करूं प्रणाम**" पारमार्थिक दृष्टिसे अपने अद्वैत-स्वरूप आत्म-तत्वको लक्ष्य करके कहा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गया है। अतः ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज प्रणाम करनेका खण्डन करते हैं; क्योंकि उन्होंने इस प्रकार कई स्थलोंपर व्यावहारिक-रूपसे प्रणाम आदि किया है। जैसे श्रीविचार-सागरके छठे तरंगमें श्रीगणपतिजीका स्मरण करते हुए कहते हैं :–

दोहा :– नासै विघ्न समूलतैं, श्री-गनपतिको नाम।
जा चिन्तन बिन ह्वै नहीं, देवन हूं के काम ॥

आगे भगवान् विष्णु व शिवजीको प्रणाम करते हुए कहते हैं :–

सोरठा :– असुरनको संहार, लछमी पारवती-पती।
तिन्हे प्रनाम हमार, भजतनकूं संतत भजै ॥

आगे शक्तिसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं :—

दोहा :– जा सक्तीकी सक्ति लहि, करै ईस यह साज।
मेरी बानीमैं वसहु, ग्रन्थ सिद्धिके काज ॥

आगे अपने आचार्यश्रीसे प्रार्थना कहते हुए लिखते हैं :–

दोहा :– बंध-हरन सुख-करन श्री, दादू दीन-दयाल।
पढै सुनै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जंजाल ॥

वहाँ अन्तमें वेदान्त-शास्त्रके कर्त्ता आचार्य भगवान् श्रीवेद-व्यासजीको नमस्कार करते हुए लम्बी कविता लिखते हुए अन्तमें कहते हैं :–

"करत प्रनाम ताहि, निश्चल पुकारिके ॥"

इससे सिद्ध हुआ कि–"श्रीस्वामी निश्चलदासजी महाराज व्यावहारिक-रूपसे प्रणाम आदिका खंडन नहीं करते, प्रत्युत

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मंडन ही करते हैं। और "गुरुमूर्ति ह्वै" इन शब्दोंसे इस बातका भी संकेत कर रहे हैं कि इस ग्रन्थसे पूर्ण बोध तो आचार्यके मुखसे श्रवण करनेसे ही होगा। अतः जिज्ञासु-जनोंको अवसर निकाल कर इस ग्रन्थका स्वाध्याय आचार्यों द्वारा करना चाहिए। ॐ शम्।

इति श्री-विचार-सागर-दर्पणे अनुबन्ध-सामान्य-निरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

द्वितीयस्तरंगः

अथ अनुबन्ध-विशेष-निरूपणम्

प्रथम तरंगमें जिन चार अनुबन्धोंका सामान्यरूपसे वर्णन किया था, उन्हींका इस द्वितीय तरंगमें शंका समाधान सहित कुछ विस्तारसे वर्णन करते हैं।

शंका :— आपने प्रथम तरंगमें कहा कि मल विक्षेप रहित तथा चार साधन सहित पुरुष इस ग्रन्थका अधिकारी है। उन चार साधनोंमें एक मुमुक्षा भी बतलाई। मुमुक्षा अर्थात् मोक्षकी इच्छा। सो मोक्षकी इच्छा किसीको भी नहीं होती; क्योंकि मोक्षके दो अंश हैं— (१) कारण (अज्ञान) सहित संसारकी निवृत्ति और (२) ब्रह्मकी प्राप्ति। इनमेंसे कारण सहित संसारकी निवृत्ति तो कोई नहीं चाहता; किन्तु दुःखोंकी निवृत्ति सब चाहते हैं। दुःख तीन प्रकारके होते हैं—(१) आध्यात्मिक (रोग, भूख इत्यादिसे दुःख) (२) आधिभौतिक (चोर, शेर, सर्प आदिसे दुःख) व (३) आधिदैविक (यक्ष, राक्षस आदिसे तथा सर्दी गर्मी आदिसे उत्पन्न दुःख)। इन तीनों दुःखोंकी निवृत्ति अपने अपने उपायोंसे हो जाती है।

और ब्रह्मकी प्राप्ति भी कोई नहीं चाहता; क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हम उसी वस्तुको प्राप्त करना चाहते हैं जिस वस्तुका हमने पहिले कभी अनुभव किया हो; परन्तु ब्रह्मका अनुभव तो किसीने किया ही नहीं है। अतः ब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छा भी किसीको नहीं होगी। इससे सिद्ध हुआ कि कोई भी पुरुष न तो कारण-सहित संसारकी निवृत्ति चाहता है और न ब्रह्मको प्राप्त करना ही चाहता है, प्रत्युत (बल्कि) सब विषय सुखको ही चाहते हैं, न कि मोक्षको; अतः मोक्षकी इच्छा न होनेसे कोई अधिकारी नहीं है, इसलिए यह ग्रंथ बनाना ही निरर्थक है ?

उत्तर :– प्रिय वत्स ! तुमने मोक्षके प्रथम अंशपर आक्षेप करते हुए कहा कि संसारकी निवृत्ति कोई नहीं चाहता, किन्तु दुःखोंकी निवृत्ति सब चाहते हैं। और वह दुःखोंकी निवृत्ति अपने अपने उपायोंसे हो जाती है। किन्तु दवा आदि उपायोंसे भी दुःखोंकी निवृत्ति कभी हो जाती है, कभी नहीं भी होती। और यदि हो भी जाती है, तो भी सदाके लिए नहीं होती, तथा सब लोग यह चाहते हैं कि हमारे दुःखोंकी निवृत्ति ऐसी होजाय कि दुःख फिर कभी न आएं, अर्थात् सब दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति ही चाहते हैं। सो जब तक जन्म मरणका चक्कर चलता रहेगा, जब तक शरीरोंका धारण होता रहेगा, तब तक दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं हो सकती। और इसी जन्म मरणके चक्करको ही संसार कहते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कि जब तक कारण-सहित संसारकी निवृत्ति न होगी, तब तक दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं हो सकती; और हम सब दुःखोंकी निवृत्ति सदाके लिए ही चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि हम सब कारण-सहित संसारकी अत्यन्त निवृत्ति ही चाहते हैं।

शंका :— भगवन् ! आपने कहा कि दुःखोंकी निवृत्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक शरीरकी निवृत्ति नहीं होती; यह कैसे और यह भी कृपा करके बताइये कि शरीरकी निवृत्ति कैसे होगी ?

उत्तर :— देखिये, सब शरीर पुण्य और पापसे ही बनते हैं। देवताओंके शरीरोंकी उत्पत्तिमें अधिक पुण्य हेतु (कारण) पड़ते हैं और पशु-पक्षी आदि नीच योनियों में अधिक पाप हेतु पड़ते हैं और मनुष्योंमें भी जो उच्च हैं उनमें अधिक पुण्य तथा जो नीच हैं उनके शरीरोंमें अधिक पाप कारण पड़ते हैं। तात्पर्य यह है कि सभी शरीरोंमें पाप भी कारण पड़ते ही हैं; और पाप दुःखोंके कारण हैं। अतः इससे सिद्ध हुआ कि सभी शरीरोंमें दुःखोंको भोगना ही पड़ता है, अर्थात् जब तक शरीरोंकी निवृत्ति नहीं होगी, तब तक दुःखोंकी निवृत्ति भी नहीं हो सकती। और यह शरीरकी निवृत्ति (जन्म मरणके चक्करकी निवृत्ति) आत्मज्ञानके बिना नहीं हो सकती और इस ग्रंथमें आत्मज्ञानका वर्णन है; इसलिये यह ग्रंथ सार्थक है।

शंका :— बिना आत्मज्ञानके शरीरकी निवृत्ति नहीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होगी, सो कैसे ?

उत्तर :- शरीर बनता है पुण्य पाप कर्मोंसे और पुण्य पाप बनते हैं राग-द्वेषसे । राग-द्वेष बनते हैं अनुकूल और प्रतिकूल ज्ञानसे (यह मेरे सुखका साधन है, ऐसा समझनेको 'अनुकूल समझना' कहते हैं और इससे मुझे दुःख मिलेगा ऐसा समझनेको 'प्रतिकूल समझना' कहते हैं) । सो अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान 'भेद-ज्ञान'से उत्पन्न होता है; क्योंकि जिसको हम अपने स्वरूपसे भिन्न समझते हैं उसीमें अनुकूलता तथा प्रतिकूलता बन सकती है, अपने आपमें तो अनुकूलपना और प्रतिकूलपना होता ही नहीं है । यह भेद-ज्ञान अपने स्वरूपके अज्ञानसे उत्पन्न होता है, और वह स्वरूपका अज्ञान, बिना स्वरूपको पहचाने, दूर नहीं हो सकता । जैसे रस्सीका अज्ञान रस्सीके जाननेसे ही निवृत्त हो सकता है, वैसे ही अपने स्वरूपका अज्ञान भी अपने आपको पहिचाननेसे ही निवृत्त होगा और अपने आपको पहिचाननेको ही आत्मज्ञान कहते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि आत्मज्ञानसे आत्माका अज्ञान नष्ट होता है और आत्माके अज्ञानके नष्ट होनेसे भेदज्ञान (द्वैतज्ञान) की निवृत्ति होती है, और भेदज्ञानके नष्ट होनेसे ही अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान नष्ट होते हैं । अनुकूल और प्रतिकूल ज्ञानके नष्ट होनेसे राग-द्वेष नष्ट होते हैं । राग-द्वेषकी निवृत्तिसे पुण्य और पापकी निवृत्ति होती है । पुण्य-पापकी निवृत्ति से शरीरकी निवृत्ति होती है । अतः यह सिद्ध हुआ कि दुःखों

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

की निवृत्तिके लिये, जिस शरीरकी निवृत्तिकी आवश्यकता है, वह शरीरकी निवृत्ति बिना आत्मज्ञानके नहीं हो सकती।

शंका :– भगवन् ! आपकी कृपासे यह तो समझमें आगया कि मोक्षका पहिला अंश संसारकी निवृत्ति है, और उसको सब चाहते हैं; किन्तु ब्रह्मका जब किसीने अनुभव ही नहीं किया है, तो उसे कौन चाहेगा ?

उत्तर :– हे जिज्ञासु ! तुम्हारी यह शंका ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जाननेसे ही हो रही है। "ब्रह्म नित्य सुख-स्वरूप है," ऐसा वेदका सिद्धान्त है; और सुखका अनुभव सभीने किया है, इसलिए सभी लोग सुख-स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त करना चाहते हैं। और यह जो तुमने कहा कि सब लोग विषय-सुखको चाहते हैं, सो बात नहीं है, किन्तु सब लोग केवल सुखको ही चाहते हैं। वह सुख चाहे विषयोंसे मिले, चाहे बिना विषयोंके; जैसे :– सुषुप्ति और समाधिमें। और जो सुख विषयोंसे मिलता है, वह तो क्षणिक है, और हम लोग तो नित्य सुख अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त करना चाहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि सब लोग जन्म-मरण रूप संसारकी निवृत्ति और नित्य सुखरूप ब्रह्मकी प्राप्तिको चाहते हैं; और इसीको ही दूसरे शब्दोंमें मोक्ष कहते हैं। उसको सब लोग चाहते हैं, अर्थात् सब मुमुक्षु होनेके कारण अधिकारी हैं, इसलिए यह ग्रंथ निरर्थक नहीं है।

शंका :– भगवन् ! इस ग्रन्थके अधिकारी होनेसे इसका लिखना सार्थक है, यह बात तो समझमें आगई;

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

परन्तु आपने इस ग्रन्थका विषय, जो जीव ब्रह्मकी एकता बतलाई, वह समझमें नहीं आई; क्योंकि जीव अविद्या, अस्मिता (बुद्धि और आत्माके एकताकी प्रतीति अर्थात् सामान्य अहंकार) राग, द्वेष, और अभिनिवेश (मृत्युके भयसे शरीरकी रक्षामें आग्रह) इन पाँचों क्लेशोंवाला है, और ब्रह्म इन पाँचों क्लेशोंसे रहित है। जीव परिच्छिन्न (सीमित) है और ब्रह्म व्यापक है। जीव अनेक हैं और ब्रह्म एक है। ऐसे बिल्कुल विरुद्ध धर्मवाले जीवका ब्रह्मसे अभेद (एकता) कैसे होगा ? और यदि हम हठसे जीव ब्रह्मको एक समझनेके लिए, जीवको अनेक न समझकर एक मानेंगे तो एक जीवके सुखी दुःखी होनेसे सभीको सुख दुःखका भान होना चाहिए; और एकके मुक्त होनेसे सभी मुक्त होने चाहियें।

उत्तर:— प्रिय वत्स ! हमारे जीव ब्रह्मकी एकताके तात्पर्यको न समझनेसे ही तुम्हें यह शंका उठ रही है। हम सारे जीवकी ब्रह्मसे एकता नहीं करते, किन्तु जीवका जो अधिष्ठान, कूटस्थ, साक्षी भाग है, उस साक्षी और ब्रह्मकी आपसमें एकता करते हैं। और ये जो राग-द्वेष सुख-दुःख, बन्धन-मोक्ष हैं, ये सब अन्तःकरणके धर्म हैं। इसी बातको कहते हुए स्वामी श्रीनिश्चलदासजी महाराज लिखते हैं :—

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक, नहीं भेद को गन्ध।
रागद्वेष मतिके धरम, तामैं मानत अन्ध॥

और अन्तःकरण अनेक हैं, इसलिए एकके सुखी-दुःखी होनेसे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सब सुखी-दुःखी भी नहीं होते।

शंका :– भगवन् ! आपने एकता करते समय अन्तःकरण इत्यादिको छोड़कर केवल साक्षी भागसे ब्रह्मकी एकता बतलाई, सो साक्षी यद्यपि सुख-दुःखसे रहित है, किन्तु एक नहीं नाना हैं; क्योंकि जैसे मेरा साक्षी मेरे अन्तःकरण के सुखको और अन्तःकरणके धर्मोंको जानता है, वही साक्षी यदि सबमें एक होता, तो सबके अन्तःकरणके धर्मोंको भी जानता। किन्तु हम देखते हैं कि सबका साक्षी अलग अलग अपने अपने अन्तःकरणके धर्मोंको जानता है। इसलिए वह एक नहीं अनेक हैं, और ब्रह्म एक है, ऐसा वेदका सिद्धान्त है। तो फिर साक्षी और ब्रह्मकी भी एकता कैसे हो सकती है ?

उत्तर :– हे सौम्य ! यह जानना इत्यादि अन्तःकरणके धर्म हैं, न कि साक्षीके। साक्षी तो केवल उस वृत्तिको सत्ता व स्फूर्ति देनेवाला तथा उसका प्रकाशक है। उस वृत्तिकी उपाधिसे उस प्रकाशक चेतनका नाम साक्षी पड़ता है, और वृत्तिका जो नानापन तथा वस्तुको जानना इत्यादि क्रियाएँ हैं, उनका मिथ्या आरोप उस शुद्ध चेतनमें होनेसे हम उस शुद्ध चेतनको भ्रान्तिसे जाननेवाला तथा अनेक मानते हैं। जैसे महाआकाश एक है, किन्तु हम घड़ेकी उपाधिसे उसे घटाकाश कहते हैं। यदि घड़े अनेक हैं, और कहीं लिये जारहे हैं, तो बच्चोंको ऐसी भ्रान्ति होती है कि घटाकाश भी अनेक हैं और कहीं लिए जारहे हैं। किन्तु जैसे अनेकपना और लियाजानापना दोनों घड़ेके धर्म हैं और हमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

घटाकाशमें भ्रान्तिसे प्रतीत होते हैं। ठीक इसी प्रकार किसी वस्तुको जानना और नानापना ये सब अन्तःकरणकी वृत्तिके धर्म हैं, परन्तु साक्षीमें मिथ्या प्रतीत होते हैं। जाननेवाली जो अन्तःकरणकी वृत्ति है, वह सबकी भिन्न भिन्न है; क्योंकि अन्तःकरणभी सबके भिन्न भिन्न हैं, इसीलिए हम एक दूसरेके सुख-दुःखको नहीं जान सकते; किन्तु साक्षी जो शुद्ध चेतन है, वह तो सबमें एक है। अतः उस प्रकाशरूप एक साक्षीकी ब्रह्मसे एकता हो सकती है।

जैसे सामान्य-प्रकाश-रूप बिजली सब बल्बोंमें एक है, किन्तु बल्बोंकी उपाधिसे जो विशेष प्रकाश बनता है, वह भिन्न भिन्न होता है। लाल बल्बकी उपाधिसे लाल, हरेकी उपाधिसे हरा तथा सफेदकी उपाधिसे सफेद प्रकाश दीखता है और ये भिन्न भिन्न प्रकाश भिन्न भिन्न पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं। अब यदि कोई ऐसा कहे कि सामान्य-प्रकाशरूप बिजली सब जगह एक है तो जिस समय मेरे इस मकानमें जैसा लाल प्रकाश करती है, उसी समय सभी मकानोंमें मेरे यहाँ जैसा लाल प्रकाश क्यों नहीं होता? तो हम कहेंगे कि यद्यपि वह सामान्य प्रकाश तो सब जगह एक है, किन्तु मकानको प्रकाशित करना उसका धर्म नहीं है। वह तो केवल बल्बोंको सत्ता देनेवाला तथा प्रकाशित करनेवाला है। किन्तु मकानमें प्रकाश फैलानेवाले बल्ब सबके भिन्न भिन्न हैं, इसलिए एक बल्बको जलानेसे सब बल्ब नहीं जलते। इसी प्रकार सामान्य-चेतन-रूप साक्षीके एक होनेपर भी अन्तःकरण-रूप बल्ब सबके भिन्न भिन्न हैं और अन्तःकरणके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

धर्म भी सबके भिन्न भिन्न हैं तथा उन धर्मोंका ज्ञान भी भिन्न भिन्न होता है। जैसे बटन दबाने से पहले भी, सामान्य बिजली तो मौजूद ही रहती है, किन्तु ज्यों ही बटनको दबाया जाता है त्योंही बल्बके हरे स्वरूप और मकानकी वस्तुओंका प्रकाश होता है, वैसे ही इस जाग्रत् अवस्था-रूपी बटनके दबनेके पहिले भी सामान्य चेतन साक्षी तो मौजूद ही रहता है, किन्तु ज्योंही जाग्रत्-अवस्था-रूपी बटन दबता है; अर्थात् ज्यों ही जाग्रत् अवस्था आती है, त्योंही अन्तःकरणके धर्मोंका तथा बाह्य संसारके पदार्थोंका ज्ञान होने लगता है। यह जाग्रत् अवस्था अथवा स्वप्न-अवस्थारूपी बटन जिस जिसका, जहाँ जहाँ और जब जब दबता रहता है उस उसको वहाँ वहाँ और तब तब ज्ञान होता रहता है, किन्तु साक्षी चेतन तो बिजलीकी तरह सदैव निर्विकार तथा सामान्य-प्रकाशरूपसे स्थित (कायम) रहता है। उस साक्षी और ब्रह्मकी एकता होती है। वह साक्षी जीवका लक्ष्यार्थ है। इसी नाते हम जीव और ब्रह्मकी एकताका वर्णन करते हैं। वह संगत है असंगत नहीं, अर्थात् उचित है, अनुचित नहीं।

शंका :— भगवन् ! आपने परमानन्द-स्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति और जन्म-मरण-रूप संसारकी निवृत्ति इस ग्रंथका प्रयोजन बतलाया था, और यह कहा था कि संसाररूपी बन्धनकी निवृत्ति आत्मज्ञानसे ही हो सकती है, जैसे रस्सीमें कल्पित सर्पकी निवृत्ति रस्सीके ज्ञानसे ही हो सकती है। किन्तु यह बात वहीं घट सकती है जहाँ सर्प मिथ्या हो। सच्चे सर्पकी निवृत्ति तो चाहे कितना ही रस्सीका ज्ञान करते रहो, नहीं होगी; इस

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रकार यदि यह संसार भी मिथ्या होता तो इसकी निवृत्ति आत्मज्ञानसे हो सकती। किन्तु यह संसार तो सत्य है, इसलिए इसकी निवृत्ति किसीके ज्ञानसे नहीं होगी; क्योंकि जैसे घड़ा बनानेके लिए मिट्टी, कुम्हार, चक्र डंडे इत्यादि की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार किसी भी वस्तुको मिथ्या सिद्ध करनेके लिए पांच कारणोंको बतलानेकी आवश्यकता पड़ती है :- (१) **सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार :-** जैसे सर्पकी भ्रान्ति उसीको हो सकती है, जिसने पहिले कभी सच्चा सर्प देखा हो, उसी प्रकार यदि संसारसे पहिले कोई सच्चा संसार होता तो हम मानते कि उस सच्चे संसारके ज्ञानके जो संस्कार हैं, उनसे इस संसारकी भ्रांति हो रही है; किन्तु आपके मतमें तो ब्रह्मके अतिरिक्त कोई सत्य है ही नहीं, और जब इस संसारसे पहिले कोई दूसरा सत्य संसार ही नहीं था तो उसके संस्कार भी न होंगे; तो फिर उसके (इस संसारसे पहिले किसी दूसरे सत्य संसारके) संस्कारोंके न होनेसे, इस संसारकी भ्रान्ति कैसे हो सकती है? इसलिए यह संसार मिथ्या नहीं, किन्तु सत्य है।

(२) **प्रमेय-दोष अर्थात् अधिष्ठानमें सादृश्य दोष-** जैसे :- रस्सी जो सर्पका अधिष्ठान है, उसमें सर्पकी भ्रान्ति इसलिए होती है कि वह भी सर्पके सदृश लम्बी टेढ़ी रखी हुई है, किन्तु पत्थरमें कभी सर्पकी भ्रान्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार आत्मामें संसारकी भ्रान्ति हम तभी मान सकते हैं, जब आत्मा भी संसारके सदृश हो, किन्तु आत्मा और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

संसार तो बिल्कुल अंधकार और प्रकाशकी तरह आपसमें विपरीत स्वाभाववाले हैं। आत्मा अन्दर है और संसार बाहर है। आत्मा प्रकाशक है और संसार प्रकाश्य अर्थात् प्रकाशित होने योग्य है। इस प्रकार जब दोनोंमें एक-जैसापन नहीं है, तो फिर आत्मामें संसारकी भ्रान्ति कैसे हो सकती है ?

(३) प्रमाताका दोष अर्थात् प्रमाता (अन्त:करण) में भय इत्यादि दोष :– जैसे डरपोक आदमीको ही सर्पकी भ्रान्ति होती है, न कि शूरवीरको ।

(४) प्रमाणका दोष अर्थात् प्रमाण (नेत्र-आदि इन्द्रियों) में धुंधलापन इत्यादि दोष :– जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति उसीको हो सकती है जिसके नेत्रमें धुंधलापन हो, अथवा कुछ अंधेरेके कारण धुंधलापन हो। किन्तु यहाँ तो ये प्रमाता और प्रमाण दोष दोनों ही नहीं दीखते; क्योंकि अन्त:करण तथा नेत्रादिक इन्द्रियाँ तो सृष्टिके पहिले थी ही नहीं; फिर यह सृष्टिकी भ्रान्ति किसको होती है ?

(५) अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान अर्थात् अधिष्ठानरूप-आत्माका अज्ञान :– सो आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, उसका अज्ञान कैसे हो सकता है; क्योंकि ज्ञान और अज्ञान दोनों प्रकाश और अंधकारकी तरह एक दूसरेके विरोधी हैं। और दूसरा जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति उसीको हो सकती है जिसको रस्सीरूपी अधिष्ठानके विशेषरूप (सूक्ष्म तन्तु, उमेठापन, बट इत्यादि रस्सीपन) का अज्ञान हो, और साथ साथ उस रस्सीके सामान्यरूप (लम्बापन, पतलापन यह-पन और है-पन)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का ज्ञान भी हो किन्तु ब्रह्ममें तो सामान्यपन और विशेषपन है ही नहीं; वह तो निर्विशेष है। इसलिए जब ब्रह्मका सामान्यरूपसे ज्ञान और विशेषरूपसे अज्ञान सिद्ध नहीं होता है तो फिर उसमें संसारकी भ्रान्ति भी सिद्ध नहीं हो सकती।

जब यह सिद्ध हुआ कि संसार भ्रान्तिरूप नहीं है, तो फिर इसकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसे नहीं हो सकती; जैसे सच्चे सर्पकी निवृत्ति रस्सीके ज्ञानसे नहीं हो सकती। यदि सच्चे सर्पको निवृत्त करना है तो डण्डेसे भगाना अथवा मारनारूपी कर्म करनेकी आवश्यकता है। इसी प्रकार इस सच्चे संसारसे यदि हम मोक्ष चाहते हैं तो वह कर्मसे ही हो सकता है, न कि ज्ञानसे; क्योंकि मोक्षका अर्थ है दुःखोंसे छूटना। सो जब तक शरीर कायम रहेगा, तब तक मोक्ष नहीं हो सकता और यह शरीर पुण्य तथा पाप कर्मोंका फल है। अब हम नये पुण्य और पाप नहीं करेंगे तो उनका आगेके लिए सम्बन्ध नहीं बनेगा और यदि भूलमें कुछ पाप कर्म हो भी जाएँ तो उनका प्रायश्चित्त कर लेंगे, जो प्रायश्चित्त शास्त्रने असाधारण रूपसे (खास खास) बतलाए हैं। और जो पहिले जन्मोंके पाप कर्म हैं तथा जिनका हमें पता नहीं कि कौनसा प्रायश्चित्त करें, उनके लिए साधारण प्रायश्चित्त रामनामका जप, गंगा-स्नान आदि करनेसे वे नष्ट हो जाएँगे; तथा जो इस जन्मके और पहिले जन्मोंके पुण्य कर्म हैं, हम उनके फलकी इच्छा न रखेंगे तो वे अपने आप नष्ट हो जाएँगे।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जैसे आप लोग कहा करते हो कि निष्काम कर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और सकाम कर्म करनेसे अपना अपना फल प्राप्त होता है, वैसे हम भी यदि निष्काम हो जाएँगे, तो हमें उनका फल नहीं मिलेगा। बाकी रहे नित्य और नैमित्तिक कर्म, जिनके नहीं करनेसे पाप लगता है और करनेसे कोई फल नहीं होता, उनको तो हम करते रहेंगे; जिससे उनके नहीं करनेसे जो पाप लगता है, वह नहीं लगेगा।

और जो काम्य कर्म भिन्न भिन्न कामनाओंसे किये जाते हैं, जिनसे हमें किसी लोक इत्यादि की प्राप्ति हो वे हम करेंगे नहीं। शेष (बाकी) जो प्रारब्ध कर्म हैं, उनको हम इसी जन्ममें भोग लेंगे।

इस प्रकार करनेसे जब सब पुण्य-पाप कर्म समाप्त हो जायेंगे, तब हमारा अपने आप मोक्ष हो जायगा। अतः ज्ञानकी कोई आवश्यकता नहीं है। और आपने आत्म-ज्ञान-द्वारा इस जन्म-मरण-रूपी बन्धन की निवृत्ति, जो इस ग्रन्थका प्रयोजन (फल) बतलाया, सो गलत दीखता है; क्योंकि मोक्ष ज्ञानका फल नहीं किन्तु कर्मका फल है।

उत्तर :— हे जिज्ञासु ! तुमने किसी वस्तुको मिथ्या सिद्ध करनेके लिए जो पाँच कारण बताए और कहा कि इनके बिना कोई वस्तु मिथ्या सिद्ध नहीं हो सकती है, सो ठीक नहीं; क्योंकि इन पाँच कारणोंके बिना भी भ्रान्ति देखी जाती है। तुमने पहिला कारण बताया, सत्य वस्तुके ज्ञानके संस्कार; किन्तु यह नियम नहीं है। क्योंकि हम देखते

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं कि जिस पुरुषने सिनेमामें अथवा किसी चित्रमें कोई सर्प देखा हो, जो सत्य नहीं है, तो उसको भी उस मिथ्या सर्पके ज्ञानके संस्कारोंसे, रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति हुआ करती है। यह बात दूसरी है कि वह सिनेमावाला सर्प भी किसी बाह्य सर्पका चित्र है; परन्तु यहाँ प्रसंग यह चल रहा है कि जैसे बाह्य व्यावहारिक सत्तावाले सर्पको देखनेसे संस्कार बनते हैं वैसे प्रातिभासिक सत्तावाले (प्रतीतिमात्र) मिथ्या सर्पको देखनेसे भी संस्कार बनते हैं और उन संस्कारोंसे भी रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति बन सकती है। और इस मिथ्या संसारका **प्रवाह** अनादि कालसे चलता आ रहा है। जब नई सृष्टि होती है, तो पहिलेकी सृष्टिके संस्कार रहते ही हैं, जिन संस्कारोंसे हमें फिर संसारके सत्यत्वकी भ्रान्ति उत्पन्न होती रहती है। जैसे इस जन्मसे पहिले जन्ममें जो मिथ्या शरीर, पुत्र, स्त्री इत्यादि **भोग-सामग्री** थी, उसमें सत्यत्व भ्रान्तिके संस्कारोंसे इस जन्ममें प्राप्त हुए शरीर, पुत्र, स्त्री इत्यादि भोग सामग्रीमें भी सत्यत्वकी भ्रान्ति हो रही है। इससे यह सिद्ध होता है कि संसारको सत्य समझना भ्रान्ति है; और इस भ्रान्तिकी निवृत्ति उसके अधिष्ठानरूप आत्माके ज्ञानसे ही हो सकती है; क्योंकि भ्रान्तिकी निवृत्ति अधिष्ठानके ज्ञानसे ही हुआ करती है।

और तुमने दूसरा कारण बताया **प्रमेयका दोष** अर्थात् अधिष्ठानके **सदृशपनेका** दोष। किन्तु यह भी कोई नियत कारण नहीं है; क्योंकि हम देखते हैं कि सदृशताके बिना

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भी भ्रान्ति हो सकती है; जैसे आत्मामें जातिकी भ्रान्ति (जैसे मैं ब्राह्मण हूँ, स्त्री हूँ इत्यादि)। आत्मामें जातिकी (ब्राह्मणपने आदिकी) सदृशता किसी भी प्रकारसे नहीं है तो भी भ्रान्ति होती ही है। और जैसे शंखमें पीलेपनकी भ्रान्ति, मिश्रीमें कड़वेपनकी भ्रान्ति और आकाशमें तम्बूपने व नीलेपनेकी भ्रान्ति होती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, बिना सादृश्य दोषके भी भ्रान्ति हो सकती है।

तीसरा कारण तुमने **प्रमाता (अन्तःकरण) में भय आदि दोष** बतलाए। किन्तु यह भी नियम नहीं है; क्योंकि हम देखते हैं कि शूरवीरको भी रस्सीमें साँपकी भ्रान्ति और विरक्त (लोभ-रहित) को भी सीपिमें चाँदीकी भ्रान्ति हो जाती है।

चौथा कारण बताया था **प्रमाण दोष**, अर्थात् आँख आदि इन्द्रियोंमें दोष। किन्तु यह भी नियम नहीं है; क्योंकि हम देखते हैं, कि सभी पुरुषोंको आकाशमें नीलेपनकी तथा तम्बूके आकारकी भ्रान्ति होती है; तो क्या सबकी आँखें खराब हो गयी हैं? किन्तु यह तो हो ही नहीं सकता कि सबकी आँखोंमें धुन्धलापन आ जाए। इससे यह सिद्ध होता है कि **बिना इन्द्रिय-दोषके भी भ्रान्ति हो सकती है।**

पाँचवां कारण **अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान** बतलाते हुए, तुमने कहा कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इसलिये उसका अज्ञान हो नहीं सकता; क्योंकि ज्ञानरूप आत्मा और अज्ञान दोनों परस्पर विरोधी हैं। किन्तु यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि जैसे लकड़ीमें व्यापक सामान्य अग्नि लकड़ीकी विरोधी नहीं है, किन्तु विशेषरूपसे प्रकट हुई अग्नि ही लकड़ीकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विरोधी है, उसी प्रकार आत्मा अर्थात् व्यापक सामान्य चेतन अज्ञानका विरोधी नहीं है, किन्तु अन्तःकरणकी वृत्तिके सहित चेतन (विशेष चेतन) ही अज्ञानका विरोधी है। जैसे हम देखते हैं कि सुषुप्ति अवस्थामें अज्ञान भी है और सामान्य चेतन भी साक्षीरूपसे विराजमान है, किन्तु वहाँ अन्तःकरणकी वृत्तिके न होनेके कारण विशेष चेतन है नहीं, जो अज्ञानको नष्ट करे। वहाँ तो केवल सामान्य चेतन है, जो अज्ञानका विरोधी नहीं प्रत्युत (बल्कि) प्रकाशक है। और यह नियम है कि व्यापक पदार्थका विरोधी हो नहीं सकता। जैसे जिस कमरेमें प्रकाश पूर्णरूपसे व्यापक होगा उस कमरेमें अंधकार रह नहीं सकता। सामान्य चेतन ब्रह्म चूंकि सर्वव्यापक है अतः अज्ञानका ज्ञानस्वरूप ब्रह्म यदि विरोधी होता तो अज्ञान कहीं रहता ही नहीं। अज्ञान रह रहा है इसमें अज्ञानियोंका अनुभव प्रमाण है। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञानस्वरूप सामान्य चेतन ब्रह्म अपनी शक्तिरूप अज्ञानका विरोधी नहीं है प्रत्युत (बल्कि) प्रकाशक है।

और तुमने यह कहा था कि "जिस वस्तुका सामान्यरूपसे ज्ञान हो और विशेषरूपसे अज्ञान हो, उसी वस्तुमें ही भ्रान्ति होती है, किन्तु आत्मामें तो सामान्यपना और विशेषपना है नहीं; इसलिए उसमें संसारकी भ्रान्ति नहीं हो सकती।" सो तुम्हारा यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि किसी भी वस्तु का जो स्वरूप अधिक समयमें और अधिक देशमें रहता है वह उस वस्तुका सामान्य-स्वरूप कहलाता है। और जो स्वरूप कम समयमें और कम देशमें रहता है, वह उस वस्तुका विशेष-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रूप कहलाता है। आत्माका जो सत् स्वरूप (है-पन) है, वह अधिक समयमें और अधिक मनुष्योंको प्रतीत होता है; क्योंकि हम देखते हैं कि ज्ञानी अथवा अज्ञानी, सभीको सदा "मैं हूँ", ऐसी अपने "है-पन" की प्रतीति तो होती ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह "है-पन" (सत्-पना) आत्माका **सामान्य स्वरूप** है और उस सामान्य स्वरूपका ज्ञान सभीको रहता है। और आत्माका जो चेतन, आनन्द, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध और नित्य मुक्त स्वरूप है, सो कम समयमें (केवल ज्ञान होनेके बाद) और कम मनुष्योंको (केवल ज्ञानियोंको ही) प्रतीत होता है; इसलिए वही आत्माका विशेष स्वरूप है। और उस विशेष स्वरूपका सबको ज्ञान नहीं है। इसलिए जो तुमने पाँचवां कारण बताया, कि अधिष्ठानके सामान्य-रूपका ज्ञान और विशेष-रूपका अज्ञान होना चाहिए, वह कारण तो यहाँ घटता है अर्थात् मौजूद है; क्योंकि संसारके अधिष्ठान आत्माके सामान्य-स्वरूप (है-पन) का ज्ञान और विशेष-स्वरूप (चेतन, आनन्द आदि) का अज्ञान होनेसे आत्मामें संसारकी भ्रान्ति सिद्ध होती है। जिस वस्तुकी भ्रान्ति होती है, उसे मिथ्या कहते हैं तथा मिथ्या वस्तुकी निवृत्ति उसके अधिष्ठानके ज्ञानसे ही होती है इसलिए संसार की निवृत्ति आत्मज्ञानसे ही हो सकती है, न कि किसी दूसरे उपायसे। अतः आत्मज्ञान-द्वारा संसारकी निवृत्ति करना इस ग्रन्थका प्रयोजन (फल) ठीक ही है, गलत नहीं।

और जो तुमने कर्मसे मोक्षका प्रतिपादन करते हुए कहा :— "मुमुक्षु पाप कर्म और सकाम कर्मोंको छोड़ दे,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जिससे उसको नीचलोक अथवा उत्तमलोककी प्राप्ति नहीं होगी। और नित्य नैमित्तिक कर्मोंको नहीं करनेसे जो पाप लगता है, वह उनके करते रहनेसे नहीं लगेगा। इस जन्ममें अथवा इससे पहलेके जन्मोंमें जो पाप किये हैं, उनका साधारण और असाधारण प्रायश्चित्त करनेसे नाश हो जायगा। तथा पहिले किये हुए जो सकाम कर्म हैं उनके फलकी इच्छा छोड़ देनेसे उनका फल मिलेगा नहीं; इस प्रकार आत्माके ज्ञानके बिना ही जन्मका अभावरूप मोक्ष मिल जायगा।" सो तुम्हारा यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि **नित्य नैमित्तिक कर्मोंका भी स्वर्गरूप फल है** यह बात भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्यजी महाराजने युक्ति और प्रमाणोंसे सिद्ध की है। इसलिए नित्य नैमित्तिक कर्मोंको करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ती तो होगी, परन्तु मोक्ष नहीं हो सकता। और यह जो तुमने कहा कि नित्य नैमित्तिक कर्म नहीं करनेसे पाप लगता है इसलिये उस पापको हटानेके लिए नित्य और नैमित्तिक कर्म करने चाहियें; सो ठीक नहीं है। क्योंकि नित्य नैमित्तिक कर्मोंका नहीं करना, यह एक प्रकारका अभाव है, और पापका उत्पन्न होना एक प्रकारका भाव है। भगवान्ने गीताके दूसरे अध्यायमें कहा है:— **"नासतो विद्यते भावः"** अर्थात् अभावसे कभी भावकी उत्पत्ति नहीं होती। इससे यह सिद्ध हुआ कि **नित्य तथा नैमित्तिक कर्मोंका फल पापकी अनुत्पत्ति नहीं है किन्तु उनका स्वर्ग इत्यादि फल है, न कि मोक्ष।** और जो तुमने यह कहा कि पहिले जन्मोंके सकाम कर्मोंके फलकी इच्छाको छोड़ देनेसे,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उनका फल नहीं मिलेगा, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि यदि इच्छाके नहीं रहनेसे ही फल नहीं मिलता, तो दुःखकी इच्छा तो किसीको होती ही नहीं, फिर पाप कर्मोंका फल दुःख भी किसीको नहीं मिलना चाहिये। और **"नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प-कोटि-शतैरपि"** यह शास्त्रका सिद्धान्त है कि सैकड़ों कोटि कल्प बीतनेपर भी कर्म बिना फल दिये नष्ट नहीं होता। इस शास्त्रके अनुसार भी "केवल इच्छा के न रहने मात्रसे कर्म फल नहीं देता", यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

आत्मज्ञानीके तो कर्म नष्ट हो सकते हैं; क्योंकि कर्म, कर्त्ता, और फल ये आत्मामें वास्तवमें तो हैं ही नहीं; केवल अज्ञानसे ही कल्पित हैं। उस अज्ञानका विरोधी केवल ज्ञान है। इसलिए अज्ञानसे कल्पित जो कर्मादिक हैं, उनका नाश भी केवल ज्ञानसे ही होता है। जैसे सपनेमें निद्राके दोषसे जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, उनका जाग्रत्में निद्राके उड़ जानेसे अभाव हो जाता है। उसी प्रकार अज्ञानरूप निद्रासे प्रतीत होनेवाले जो कर्म, कर्त्ता और फल हैं, उनका भी ज्ञान-अवस्थारूप जाग्रत्के आनेपर, अविद्यारूप निद्राके टूट जानेसे, नाश हो जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानीके कर्मादिक तो ज्ञानरूपी जाग्रत् अवस्थाके आने पर नष्ट हो सकते हैं, किन्तु जब तक आत्मज्ञान उत्पन्न नहीं होगा तब तक कर्मादिकोंका अभावरूप मोक्ष कभी नहीं हो सकता।

और जो तुमने यह कहा :— कि "निष्काम कर्म करनेसे और कोई फल नहीं मिलता किन्तु उससे केवल अन्तः-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करणकी शुद्धि होती है, यह बात जैसे वेदान्तमें मानते हैं, वैसे हम भी पहले किये हुए कर्मोंके फलकी इच्छा नहीं रखेंगे, तो हमें भी कर्मोंका फल नहीं मिलेगा।" यह कथन ठीक नहीं है; क्योंकि वेदान्तका तात्पर्य यह है कि जो निष्काम कर्म करता है उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है और यदि अन्तःकरण शुद्ध होनेके बाद ज्ञान-द्वारा मोक्ष हो गया तब तो कर्म अपना फल नहीं देंगे। क्योंकि मोक्ष होनेके बाद, सूक्ष्म शरीरका अभाव हो जाता है और जब सूक्ष्म शरीर ही नहीं रहता तो फिर पुण्य-पाप कर्म अपना फल सुख दुःख किसको देंगे। किन्तु यदि ज्ञान न होकर मोक्ष न हुआ, तब तो कर्म अपना फल अवश्य ही देंगे। और जो सकाम भावसे कर्म करता है उसको तो केवल कर्मका फल ही मिलेगा, न कि अन्तः-करणकी शुद्धि। इससे यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष केवल ज्ञानसे ही हो सकता है न कि कर्मसे। क्योंकि निष्काम कर्म अन्तःकरणकी शुद्धि-द्वारा ज्ञान प्राप्त करवाकर परम्परा से मोक्षके साधन बन सकते हैं, किन्तु मोक्षका साक्षात् साधन तो केवल ज्ञान ही है। इसी प्रकार ग्रन्थके अधिकारी, विषय और प्रयोजन बन सकते हैं और इनके बननेसे जो हमने पहिले तरंगमें सम्बन्ध बतलाये हैं, उनपर कोई शंका नहीं हो सकती। इसलिए इस ग्रन्थका आरंभ सफल है।

इति श्रीविचारसागरदर्पणे अनुबन्ध-
विशेष-निरूपणं नाम द्वितीयस्तरंगः समाप्तः ।।२।।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तृतीयस्तरंगः

अथ श्रीगुरुशिष्यलक्षण
तथा
गुरुभक्ति-प्रकार-निरूपणम्

प्रथम तरंगमें जो अधिकारीके लक्षण बताये थे, वे लक्षण जिसमें हों वही शिष्य कहलाता है। जिस प्रकार समुद्रका जल यों पीनेसे खारा लगता है और पेटमें गड़बड़ करके दुःखी करता है, किन्तु बादलों द्वारा बरसनेके बाद वही जल मीठा हो जाता है और प्यास भी बुझा देता है। इसी प्रकार चार साधन सम्पन्न शिष्य जब इस ग्रंथको गुरु-मुखसे सुनेगा, तभी आत्मशाँति प्राप्त कर सकेगा, अन्यथा नहीं। क्योंकि इस ग्रन्थमें जो कहीं-कहीं कठिन कड़ियाँ आती हैं, उनका अपने आप अर्थ करनेसे अनर्थ भी हो सकता है। परन्तु गुरु-मुख-द्वारा सुननेसे ही उनके वास्तविक अर्थका ज्ञान प्राप्त करके, जिज्ञासु जीवन्मुक्तिका आनन्द लूट कर विदेह-मोक्ष (कैवल्य-मोक्ष) को प्राप्त हो सकता है।

शंका :— भगवन् ! यह तो आपने केवल शिष्यका लक्षण बतलाया और कहा कि इस ग्रन्थको गुरुमुखसे अवश्य पढ़ना

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चाहिये। किन्तु जब तक हम गुरुको पहिचानेंगे ही नहीं तो उसे प्राप्त कैसे करेंगे ? इसलिए कृपया यह बतलाइये कि गुरुके लक्षण क्या हैं तथा हम उनके पास कैसे जावें और कैसे उनके उपदेश सुनें ?

उत्तर :— गुरुके लक्षण तो शास्त्रोंमें अनेक कहे हैं किन्तु उनमें प्रधान पाँच लक्षण हैं।

(१) ब्रह्म-श्रोत्रिय (वेद पढ़ा हुआ) (२) ब्रह्म-निष्ठ (ब्रह्म और आत्माके अभेद ज्ञानमें जिसकी निष्ठा हो) (३) शिष्यकी बुद्धिमें जो पाँच प्रकारकी भेद-भ्रान्ति है [(१) जीव ईश्वरका भेद (२) जीवोंका परस्पर भेद (३) जीवोंका जड़से भेद (४) ईश्वरका जड़से भेद (५) जड़का परस्पर भेद] उसको नाना युक्तियोंसे दूर करनेमें समर्थ हो। (४) द्वैतको हटाकर अद्वैत, अमल (शुद्ध), असंग ब्रह्मका आत्म-रूपसे साक्षात्कार करावे, और (५) वास्तवमें सारा संसार मिथ्या है, ऐसा दृढ़ निश्चय करानेवाला, गुरु (आचार्य) कहलाता है।

आचार्य शब्दकी व्युत्पत्ति भी शास्त्रमें इस प्रकार बतलाई गई है :—

"आचिनोति च शास्त्रार्थं माचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कथ्यते ॥"

अर्थात् जो शास्त्रके अर्थ (रहस्य) को जानकर, उस पर चलता है, और दूसरोंको भी चलाता है, वही **आचार्य** है; क्योंकि स्वयं शास्त्रोक्त **आचरण** करनेसे और दूसरोंको वैसा **आचरण** करवानेसे ही **आचार्य** नाम पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकारके गुरु (आचार्य) को प्राप्त करनेके बाद, श्रद्धा से उन्हें नमस्कार इत्यादि करके अपने तन मन धनको उनके चरणोंमें अर्पण करना चाहिये। [तन मन धन अर्पण करनेका तात्पर्य यह है कि गुरु जैसी आज्ञा दें, उसी प्रकार तनसे सेवा करना, मनसे उनके सद्विचारोंको भली प्रकार ग्रहण करके उन्हें सर्वत्र समाजमें प्रचारित करना तथा धनको उनके आदेशानुसार सामाज़िक सेवाके कार्योंमें लगाना] और गुरुकी आज्ञामें उसे सदा तत्पर रहना तथा गुरुमें ईश्वरसे भी अधिक भक्ति रखकर ही उनसे वेदान्तका उपदेश सुनना चाहिए।

इति श्रीविचारसागरदर्पणे गुरु-शिष्य-लक्षण-गुरु-भक्ति-प्रकार-निरूपणं नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चतुर्थस्तरंगः

अथ उत्तमाधिकारी-उपदेश-निरूपणम्

इस चतुर्थ तरंगसे गुरु और शिष्योंके वार्तालापकी एक कथा चलती है। इस कथामें, तीन प्रकारके अधिकारी कौन कौनसे होते हैं और उनको कैसे उपदेश दिया जाता है यह बतलाया जायगा।

एक शुभसन्तति नामका राजा था। उसके तीन पुत्र थे। एकका नाम **तत्त्वदृष्टि** था (जिसकी सदा तत्त्वपर ही दृष्टि रहती थी)। वह उत्तम अधिकारी था। दूसरेका नाम **अदृष्टि** था जिसकी कोई खास दृष्टि (ज्ञान) न थी। वह मध्यम श्रेणीका अधिकारी था। तीसरेका नाम था **तर्क-दृष्टि** जिसकी हमेशा तर्कप्रधान दृष्टि रहती थी अर्थात् वह सबको तर्कसे ही देखना चाहता था वह कनिष्ठ अधिकारी था। उन तीनों पुत्रोंको एक दिन राजाने एकान्तमें बुलाकर कहा:—

।। इंदव छंद ।।

"राजसमाज तजौं सब मैं अब।
जानि हिये दुख ताहि असारा।।
और तु लोक दुखी अपनै दुख।
मैं भुगत्यो जग क्लेस अपारा।।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जे भगवान[1] प्रधान अजान[2] स- ।
मान दरिद्रन ते जन सारा ।।
हेतु विचार हिये जगके भग[3] ।
त्यागि लखूँ निजरूप सुखारा ।।"

"अब हे पुत्रो ! मैं इस राज्यके व्यवहारसे बहुत तंग आ गया हूँ। अब इस राज्यको तुम लोग सम्हालो । मैं तो आत्म-ज्ञान प्राप्त करके, संसारके दुःखोंसे छूटकर, परमानन्दरूप मोक्षको प्राप्त करना चाहता हूँ" उन लड़कोंके कोई पुण्य कर्म उदित हो रहे थे व उन पुण्यकर्मोंके प्रतापसे उन लड़कोंको ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि यदि राज्यका व्यवहार दुःखदायक हैं और आत्मज्ञानको प्राप्त करनेसे ही परमानन्दरूप मोक्ष प्राप्त होगा तो फिर हम सब इस दुःखरूप राज्य-बंधनमें क्यों बंधे । हम ही क्यों न चलकर किसी योग्य गुरुकी तलाश करें और उनकें उपदेश-द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्षको प्राप्त करें । ऐसा सोचकर वे तीनों गुरुकी तलाशमें निकल पड़े । तलाश करते करते उन्होंने किसी तपोवनमें गंगाके किनारेपर शिष्योंको आत्मज्ञानका उपदेश देते हुए एक ब्रह्मनिष्ठ तथा ब्रह्मश्रोत्रिय महात्माके दर्शन किए । वहाँ उनके उपदेशको सुनकर तीनोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और ऐसी अटूट श्रद्धा उत्पन्न हुई कि इनसे ही हमरा कल्याण हो सकता है । ऐसा निश्चय करके वे वहीं आश्रममें गुरुसेवा करने लगे । उनको बड़ी श्रद्धासे सेवा करते हुए देखकर महात्माने उनसे वहाँ आनेका कारण पूछा । जब उनकी बातचीतसे महात्माजीने यह देखा कि ये तीनों भाई जिज्ञासु हैं, तब उनसे कहा "यदि तुम्हें कोई

१ भगवान=ऐश्वर्यवान् २ अजान=अज्ञानी ३ भग=ऐश्वर्य ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका हो तो पूछो"। तब तत्त्वदृष्टि, जो उन सब भाइयोंमें बड़ा था हाथ जोड़कर कहने लगा कि :—

शंका :— भगवन्! मैंने कर्म और उपासनाका अभ्यास बहुत ही किया है किन्तु मुझे तो संसारकी फांसी अधिक लग रही है, अर्थात् संसारके झंझट तो बढ़ ही रहे हैं। इसलिए मेरी यह इच्छा है कि मुझे आप कोई ऐसा रास्ता बतलावें जिससे मेरे संसारके दुःख नष्ट हों व परमानन्द प्राप्त हो।

उत्तर :— हे शिष्य ! वह परमानन्दकी प्राप्ति और जन्म-मरणरूपी दुःखके निवृत्तिकी जो इच्छा तुझे हो रही है, वह भ्रान्तिसे उत्पन्न हुई है; क्योंकि तुम्हारा असली स्वरूप स्वयं परमानन्द-स्वरूप ही है। तुझमें जन्म-मरण इत्यादि दुःख हैं ही नहीं। तू तो शुद्धचेतनरूप ब्रह्म है।

शंका :— प्रभो ! यदि मैं स्व यंपरमानन्द-स्वरूप ही हूँ तो फिर मुझे विषयोंके संगसे आनन्दका भान क्यों होता है ?

उत्तर :— प्रिय वत्स ! यह शंका तुझे इसलिए हो रही है कि तुझे यह पता नहीं है कि आनन्द किसको आता है ? कब आता है ? और कहाँसे आता है ? अब सुनो। सुख और दुःख ये दोनों मनको होते हैं। जब मनकी वृत्ति किसी विषयमें तल्लीन हो जाती है अर्थात् एकाग्र हो जाती है तब सर्वत्र व्यापक व आनन्दस्वरूप आत्माका प्रतिबिम्ब उसी समय मन (अन्तःकरण) में पड़ता है। ऐसा नियम है कि जैसा बिम्ब होता है वैसा ही प्रतिबिम्ब पड़ता है, क्योंकि हम देखते हैं कि यदि बिम्ब काला हो तो प्रतिबिम्ब भी काला, बिम्ब गोरा हो तो प्रतिबिम्ब भी गोरा, बिम्ब जड़ हो तो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रतिबिम्ब भी जड़, बिम्ब प्रकाशरूप हो तो प्रतिबिम्ब भी प्रकाशरूप और बिम्ब आनन्दस्वरूप हो तो प्रतिबिम्ब भी आनन्दस्वरूप ही पड़ता है। अत एव उस आनन्दस्वरूप आत्माका, जब विषयोंमें एकाग्र हुए मनमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, तब मनमें आनन्दकी झलक आती है। किन्तु वह विषयी समझता है कि यह आनन्द विषयोंसे आ रहा है। परन्तु वस्तुतः वह आनन्द तो प्रतिबिम्बरूपसे, आत्मासे ही आता है। यदि उसी समय ही [विषय भोगते समय] किसी दुःख-जनक समाचारको सुनें अथवा किसी कारण यदि हमारी वृत्ति उस विषयमें एकाग्र न होकर चंचल हो जाय, तब तो उसी समय आनन्दस्वरूप आत्माका प्रतिबिम्ब ज्योंका त्यों पड़ना बन्द हो जायगा और उसी समय आनन्दकी झलक न आकर दुःख ही प्रतीत होगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारा असली स्वरूप तो आनन्दस्वरूप है, किन्तु उस आनन्दकी झलक मनमें तभी आती है जब मन एकाग्र होता है। यदि विषय स्वयं आनन्दस्वरूप होते तो दुःखका समाचार सुनने पर भी आनन्द आता ही रहता; अथवा जब तक विषय रहते तब तक भी आनन्द आता ही रहता। किन्तु हम देखते हैं कि खीरसे तृप्त (धापे) हुए मनुष्यको यदि उसी समय, और दूसरी कितनी ही बढ़िया खीर क्यों न दी जाय, उसे आनन्द नहीं आएगा। और यदि विषयोंमें ही आनन्द होता तो विषयोंके बिना कभी आनन्द आता ही नहीं। किन्तु हम देखते हैं कि एकान्तमें सुषुप्ति अवस्था (गहरी नींद) में अथवा समाधिमें जहाँ विषयोंका नाम भी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं होता है, ऐसी अवस्थामें स्थित पुरुषको भी आनन्द आता ही है। इससे यह सिद्ध होता हैं कि विषय स्वयं आनन्दस्वरूप नहीं हैं, किन्तु अपना असली स्वरूप (आत्मा) ही आनन्दस्वरूप है।

ऐसा जिसको ज्ञान हो जाता है वह ज्ञानी पुरुष सदा अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा अपने स्वरूपका आनन्द लेता रहता है। और विषय भोगते समय भी जो आनन्द आता है उसको भी वह समझता है कि यह तो मेरे स्वरूपानन्दकी ही छाया है। इसी प्रकार सदा उसकी स्वरूपाकार ही वृत्ति बनी रहती है। किन्तु कभी कभी प्रारब्ध-वश, व्यवहारमें तल्लीन होनेके कारण वह ज्ञानी अपने स्वरूपको भूल भी जाता है, अर्थात् उसको कभी कभी अपने स्वरूपका विस्मरण भी हो जाता है; उस आत्म-विस्मरणका कारण है **लेश-अज्ञान**। किन्तु यह लेश-अज्ञान उसके आत्मस्वरूपके निश्चयमें बाधक नहीं पड़ता है। जैसे सिनेमाको देखते समय कभी कभी लोग भूलसे उस खेलको थोड़े समयके लिए सच्चा मानकर ताली बजाने, हंसने अथवा रोने लगजाते हैं, किन्तु उस थोड़े समयका हंसना रोना इत्यादि उनके सिनेमाके असली स्वरूप के निश्चयमें अर्थात् यह केवल झूठा खेल-मात्र है, इस निश्चयमें बाधक नहीं पड़ता है अर्थात् उसका सिनेमाका मिथ्यात्व-निश्चय टूटता नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानीको भी उस लेश-अज्ञानसे अपने स्वरूपका निश्चय टूटता नहीं है। परन्तु जो अज्ञानी लोग हैं वे तो हमेशा बहिर्मुख ही रहते हैं अर्थात् अपने आत्म-स्वरूपको भूले हुए ही रहते हैं। इसी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बातको बतलाते हुए श्रीनिश्चलदासजी महाराज लिखते हैं :—

"ह्वै विस्मृत व्यवहारमैं, कबहुक ज्ञानी संत ।
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तू जान सिद्धन्त ।।"

शंका :— भगवन् ! आपकी कृपासे 'मैं परमानन्द-स्वरूप हूँ' यह तो मेरी समझमें आ गया । परन्तु यह जो आपने पहिले कहा, कि जन्म-मरणसे लेकर जितना भी दुःखरूप संसार है वह मुझमें नहीं है; तो फिर किसमें है यह कृपा करके समझाइये ।

उत्तर :— हे शिष्य ! जैसे रस्सीमें कल्पित सर्प वास्तवमें हुआ ही नहीं है उसी प्रकार यह सारा जन्म-मरणरूप कल्पित संसार भी वस्तुतः कहीं है ही नहीं । यह न तुझमें है, न मुझमें है, व न कहीं औरमें है ।

शंका :— प्रभो ! यदि यह जन्म-मरण आदि दुःखरूप संसार कहीं है ही नहीं, तो फिरप्र त्यक्ष प्रतीत क्यों हो रहा है ?

उत्तर :— हे प्रिय शिष्य ! जैसे स्वप्नका संसार आकाशमें नीलापन, सीपिमें चाँदी, और रस्सीमें सर्प ये सब वास्तवमें नहीं होते हुए भी अपने अपने अधिष्ठान रस्सी इत्यादिके अज्ञानसे मिथ्या प्रतीत होते हैं; ठीक इसी प्रकार यह जन्म-मरण आदि दुःखरूप संसार, वास्तवमें नहीं होता हुआ भी अधिष्ठानरूप आत्माके अज्ञानसे (आत्मा और ब्रह्मके अभेद को न जाननेसे) ही मिथ्या प्रतीत हो रहा है ।

६

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका :– दयालो ! आपने संसारको मिथ्या बतलानेके लिये जो रस्सीमें सर्प इत्यादिके उदाहरण दिये, वे उदाहरण ही मुझे पूरे समझमें नहीं आ रहे हैं कि रस्सी इत्यादिमें सर्प आदिकी भ्रान्ति कैसे होती है। और जब तक ये दृष्ठान्त ही समझमें नहीं आऐंगे तब तक संसारकी मिथ्या प्रतीति कैसे होती है यह भी समझमें नहीं आसकता। क्योंकि रस्सीमें सर्पकी भ्रान्तिका कथन करनेवाले चार मत मैंने सुने हैं, जिनको ख्याति (प्रतींति और कथन) भी कहते हैं। अब उन चार मतोंमें कौनसा मत ठीक है यह मेरी समझमें नहीं आता।

(१) **शून्यवादी बौद्ध** तो कहते हैं:—"रस्सीमें तथा अन्य सब जगह सर्प अत्यन्त असत् है (बिल्कुल हैं ही नहीं)। उस अत्यन्त असत् सर्पकी रस्सीमें प्रतीति होती है"। इस कथनको **असत्-ख्याति** कहते हैं।

(२) **क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध** कहते हैं:—"यह असत्-ख्याति गलत है; क्योंकि अत्यन्त (बिल्कुल) असत् पदार्थकी भी यदि प्रतीति हुआ करती, तो वन्ध्या (बाँझ) के पुत्र और खरगोशके सींगोंकी भी प्रतीति होती। इसलिए वास्तव में बुद्धि ही सर्पके आकारको धारण करती है अर्थात् बुद्धिमें ही सर्प है और वह बुद्धि **क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा** है। इसलिये वस्तुतः क्षण क्षणमें बदलनेवाली बुद्धि जिसको हम आत्मा कहते हैं उसीकी ही सर्परूपसे प्रतीति होती है।" इस प्रकारके कथनको **आत्मख्याति** कहते हैं।

(३) **नैयायिक** और **वैशेषिक** कहते हैं:—"यदि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्षणिक बुद्धिने ही सर्पका रूप धारण किया होता तो क्षण-मात्रसे अधिक समय तक प्रतीति नहीं होती। इसलिए यह आत्मख्याति ठीक नहीं है, किन्तु अन्यथा-ख्याति ही माननी चाहिये।" उनका कहना यह है :— "जैसे कभी पित्तके दोषसे ऐसा रोग हो जाता है कि मनुष्य चौगुना भोजन कर लेता है अर्थात् उसकी पाचन-शक्ति बढ़ जाती है, उसी प्रकार आँखोंके दोषसे नज़र बढ़ जानेके कारण जंगलमें बिलमें पड़ा हुआ सर्प ही नज़दीक पड़ी हुई रस्सीमें दीखता है।" इस कथनको **अन्यथा-ख्याति** कहते हैं, क्योंकि सर्प है एक जगह और दिखता है दूसरी जगह। इसपर **नव्य नैयायिक चिन्तामणिकार** आक्षेप (ऐतराज़) करते हुए कहते हैं :—"यदि आँखोंके दोषसे, दूर जंगलवाला सर्प यहाँ नज़दीक रस्सीमें दीखता है, तो रास्तेके जो वृक्ष इत्यादि पदार्थ हैं वे क्यों नहीं दीखते। इसलिए यह कहना भी गलत है। वास्तवमें अन्यथा-ख्यातिका अर्थ यह है कि **वस्तु हो कुछ और दीखे कुछ**। जैसे यहाँ है रस्सी किन्तु दीखती है सर्परूपसे"।

(४) इसपर **प्राभाकर** और **सांख्यमतवाले** कहते हैं :— "यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि पदार्थ हो एक और ज्ञान हो दूसरेका, यह असंभव है। क्योंकि ज्ञान सदा **वस्तु-तन्त्र** होता है याने ज्ञान सदा ज्ञेय (जानने योग्य पदार्थ) के अनुसार ही होता है, अर्थात् जैसा ज्ञेय होगा वैसा ही ज्ञान होगा। इसलिए अन्यथा-ख्यातिको न मानकर **अख्यातिको** ही मानना चाहिए।" वे अख्यातिका इस प्रकार कथन करते हैं :— "जिस समय रस्सीमें सर्पका व्यवहार होता है, उस समय अंधकार और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भय इत्यादि दोषोंके कारण दो ज्ञानोंका अविवेक होनेसे अर्थात् ये दो ज्ञान परस्पर भिन्न हैं ऐसा ज्ञान न होनेसे हम "यह सर्प है" ऐसा व्यवहार कर बैठते हैं। वे दो ज्ञान हैं (१) रस्सीके सामान्य-अंश अर्थात् यह-पन और है-पन (यह है) का **प्रत्यक्षज्ञान**, व (२) उसी समय पहिले देखे हुए सर्पका **स्मृतिरूप ज्ञान** (सर्पकी स्मृति)। इन दोनों ज्ञानों (रस्सीके यह-पन, और है-पनका प्रत्यक्ष तथा सर्पकी स्मृति) की भिन्नताको न जाननेसे "यह सर्प है" ऐसा व्यवहार होता है।" इस प्रकारके कथनको **अख्याति** कहते हैं। हे भगवन्! इस प्रकार रस्सीमें सर्पकी प्रतीतिके विषयमें मैंने ये चार मत सुने हैं, अब इनमेंसे कौनसा मत ठीक है, यह आप कृपा करके बताएँ।

उत्तर :– हे शिष्य! ये चारों मत युक्ति-हीन तथा असंगत हैं। पहिलेके तीनों मतोंमें तो तुमने दोष देख ही लिए, अब इस अख्याति मतमें जो दोष हैं वे भी सुनो। एक तो वे जो यह कहते हैं :—"जिस समय रस्सीमें सर्प दीखता है उस समय सर्पकी स्मृति होती है" वह ठीक नहीं है; क्योंकि सर्पकी स्मृतिसे कभी भय नहीं होता, किन्तु उस समय तो भय होता है। और भ्रमकी निवृत्ति होनेके बाद ऐसा कहा जाता है कि "मुझे रस्सीमें मिथ्या सर्प दिखाई दिया था", "मुझे सर्पकी स्मृति हुई थी" ऐसा कोई नहीं कहता। इसलिए उस समय सर्पकी स्मृतिको मानना ठीक नहीं है। और दूसरा दोष यह भी है कि "यह सर्प है" यहाँ ज्ञान एक ही प्रतीत होता है, दो नहीं। तीसरा दोष यह है कि एक ही समय अंतःकरणमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्मृतिरूप और प्रत्यक्षरूप ये दो ज्ञान नहीं हो सकते; क्योंकि हम देखते हैं कि जब हमें किसीकी याद आती है तो उसी समय सामने रखी हुई वस्तु नहीं दीखती और जिस समय हम सामने किसी वस्तुका प्रत्यक्ष करते हैं तो उस समय हम दूसरी बातें भूल जाते हैं। इसलिए जब एक समय स्मृति और प्रत्यक्ष ये दो ज्ञान हो ही नहीं सकते तो फिर उनके अविवेकसे [विवेक (भेद) के अज्ञानसे] 'यह सर्प है' ऐसा व्यवहार कैसे हो सकता है ? इस प्रकार हे शिष्य ! ये चारों ख्यातियाँ गलत हैं। इसलिए सर्पकी भ्रांति कैसे होती है यह समझानेके लिए मैं तुम्हें वेदान्त-सिद्धान्तके अनुसार **अनिर्वचनीय ख्याति** बतलाता हूँ।

जिस प्रकार अंधकारमें किसी वस्तुको देखनेके लिए जब हम टार्च जलाते हैं तब टार्चके काँचमेंसे जो प्रकाश निकलता है वह पहिले अंधकारको चीरता है (हटाता है) फिर वस्तुको जनवाता है। इसी प्रकार किसी वस्तुको जाननेके लिए जब अंतःकरणकी वृत्ति आँखोंके द्वारा बाहर निकलकर वस्तु तक पहुंचती है तो उस समय दो काम होते हैं। एक तो वृत्ति उस वस्तुके अज्ञानको हटाती है और दूसरा उस वृत्तिमें आया हुआ चिदाभास वस्तुको जनवाता है। जब वृत्ति अज्ञानको हटाती है तो उस अज्ञान के हटानेको कहते हैं **वृत्ति-व्याप्ति** और जब वृत्तिमें आया हुआ चिदाभास (फल-प्रतिबिम्ब) पदार्थको जनवाता है तो उस जनवानेको कहते हैं **फलव्याप्ति**। किन्तु ये वृत्तिव्याप्ति और फलव्याप्ति वहीं होती हैं जहाँ वस्तुका यथार्थ ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होता है। परन्तु जहाँ वस्तुका यथार्थ ज्ञान न होकर, कुछ भ्रान्ति होती है (जैसे रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति) तो वहाँ मंद अंधकारके कारण अथवा आँखोंमें धुन्धलेपनके कारण अंतःकरणकी वृत्ति आँखोंसे बाहर निकलकर रस्सी तक जाती तो है, किन्तु वहाँ रस्सीके विशेष-रूपके अज्ञानको नष्ट नहीं कर पाती; इसलिए रस्सीका ज्ञान नहीं होता; बल्कि रस्सीके स्वरूपको ढांकनेवाला अज्ञानका आवरण (पर्दा) रह ही जाता है। अज्ञान जितना भी है वह सारा चेतनके आश्रित है, यह वेदान्तका सिद्धान्त है। और वह चेतन सर्व-व्यापक होनेके कारण जितने देशमें रस्सी है उतने देशमें भी विद्यमान (मौजूद) ही है। उस चेतनको **रस्सी-उपहित-चेतन** कहते हैं। उस रस्सी-उपहित-चेतनके आश्रित जो अज्ञान है, जिसको अंधकार इत्यादि दोषोंके कारण वृत्ति नष्ट नहीं कर पाती उसमें, पहिले देखे हुए सर्पके संस्कारोंके कारण, क्षोभ (परिवर्तन) होता है और उस अज्ञानका तमोगुण अंश क्षुब्ध होकर (बदलकर) सर्पके आकारको धारण करता है अर्थात् उस अज्ञानका तमोगुण अंश ही सर्पके रूपमें बदल जाता है। और जो अन्तःकरणकी वृत्ति आँखोंके साथ बाहर निकलकर रस्सी तक जाती है वह अंधकार आदि दोषोंके कारण रस्सीके केवल सामान्य अज्ञानको ही नष्ट कर पाती है; परन्तु विशेष-रूपका अज्ञान रह जाता है। वह रस्सीके सामान्य अंश (यह-पन व है-पन) को विषय करनेवाली जो वृत्ति अर्थात् यह कुछ लम्बीसी टेढ़ीसी वस्तु पड़ी है ऐसी जो इदमाकार वृत्ति उससे उपहित चेतन (साक्षि-चेतन) के आश्रित अविद्या

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(अज्ञान) का सत्त्वगुण अंश सर्प-ज्ञानके रूपमें परिणत होता है (बदल जाता है) अर्थात् साक्षीके आश्रित उस अज्ञानका सत्त्वगुण अंश सर्प-ज्ञानाकार परिणामको प्राप्त होता है। उस सर्प और सर्प-ज्ञानको अनिर्वचनीय, मिथ्या, कल्पित, अध्यास और भ्राँति भी कहते हैं।

वह भ्राँति-ज्ञान अन्तःकरणकी वृत्तिरूप तो है ही नहीं; क्योंकि वृत्ति तो अंधकार इत्यादि दोषोंके कारण बेकार हो जाती है, इसलिए उसको अज्ञानकी वृत्ति-रूप ज्ञान अर्थात् **भ्रान्ति-ज्ञान** कहते हैं। हे शिष्य ! इस प्रकार तुमने यह सुना कि सर्पका अधिष्ठान, **रस्सी-उपहित-चेतन** है और सर्प-ज्ञानका अधिष्ठान **साक्षि-चेतन** है। अथवा यों दूसरा पक्ष समझो कि सर्प और सर्प-ज्ञानका अधिष्ठान एक **साक्षि-चेतन** ही है। क्योंकि रस्सीके समीप पहुंची हुई जो अन्तःकरणकी इदमाकार-वृत्ति (यह है ऐसी वृत्ति) है, उसमें स्थित साक्षि-चेतनके आश्रित जो अविद्या है, वही सर्पाकार और सर्पके ज्ञानाकार परिणामको प्राप्त होती है।

वृत्ति-उपहित-चेतन साक्षीके आश्रित जो अज्ञान है उसका तमोगुण अंश तो सर्परूपमें पलटता है और सत्त्वगुण-अंश सर्पके ज्ञानरूपमें पलटता है; इसलिए सर्प और सर्पज्ञानका अधिष्ठान **वृत्ति-उपहित-चेतन साक्षी** ही है ! उस सर्प-भ्राँतिको **अनिर्वचनीय** तो इसलिए कहते हैं कि उसका निर्वचन (कथन) सत् और असत् इन शब्दोंसे हो ही नहीं सकता। क्योंकि रस्सीके ज्ञानके बाद सर्प-भ्रान्तिकी निवृत्ति हो जाती है इसलिए उसको हम सत् भी नहीं कह सकते और यदि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

असत् कहें तो वंध्या (बाँझ) के पुत्र और खरगोशके सींगों की तरह उसकी प्रतीति ही नहीं होनी चाहिए, किन्तु प्रतीति तो होती है; इसलिए हम उस कल्पित सर्प और सर्पज्ञानको **अनिर्वचनीय** कहते हैं। जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्प और सर्प-ज्ञान ये दोनों अनिर्वचनीय उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार संसार और संसारका ज्ञान ये दोनों भी अनिर्वचनीय ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए ये दोनों वास्तवमें तुम्हारे असली स्वरूप (आत्मा) में हैं ही नहीं, केवल मिथ्या (आत्माके अज्ञानसे) ही प्रतीत हो रहे हैं।

वह रस्सीमें **कल्पित सर्प** और **उसका ज्ञान** दोनों अविद्या (अज्ञान) के **परिणाम** और चेतनके **विवर्त** हैं। जब उपादान कारण बदलकर दूसरा रूप धारण करता है, जैसे दूध जब दहीमें बदलता है, तब हम उस दहीको दूधका परिणाम कहते हैं; उसी प्रकार जब अज्ञान बदलकर सर्प और सर्प-ज्ञानका रूप धारण करता है, तब हम उसको (उस सर्प और सर्प-ज्ञानको) अज्ञानका **परिणाम** कहते हैं और अधिष्ठान स्वयं न बदलकर यदि दूसरे रूपमें दीखे तो उस दूसरे कल्पित स्वरूपको अधिष्ठानका **विवर्त** कहते हैं, जैसे तन्तु अपने स्वरूपको न छोड़कर कपड़ेरूपमें दीखती हैं तो कपड़ा तन्तुओंका **विवर्त** कहलाता है, और जैसे ज़ेवर स्वर्णके विवर्त हैं, उसी प्रकार सर्प और सर्प-ज्ञान ये दोनों रस्सी-उपहित-चेतन व साक्षीके विवर्त हैं। क्योंकि सर्पकी उत्पत्ति होनेपर भी रस्सी-उपहित-चेतन व साक्षी चेतनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अथवा (१) उपादान-कारणके समान स्वभाव (सत्ता) वाला अन्यथा स्वरूप **परिणाम** कहलाता है और (२) अधिष्ठानसे विपरीत स्वभाववाला अन्यथा स्वरूप **विवर्त** कहलाता है ।

(१) जैसे उपादान-कारण अविद्या अनिर्वचनीय (कल्पित) है जैसे रस्सीमें सर्प और उसका ज्ञान भी अनिर्वचनीय (कल्पित) है । अत एव रस्सीमें कल्पित सर्प और उसका ज्ञान दोनों अविद्याके समान स्वभाववाले (अनिर्वचनीय) हैं और उन दोनोंका अविद्यासे अन्यथा अर्थात् भिन्न प्रकारका स्वरूप भी है ही; क्योंकि अविद्या अव्यक्त होनेसे निराकार है और सर्प आदि साकार हैं। इसी कारण सर्प और सर्प ज्ञानको अविद्याका **परिणाम** कहते हैं ।

(२) और रस्सी-उपहित-चेतन अथवा साक्षि-चेतनरूप अधिष्ठान तो सत्य है परन्तु सर्प और उसका ज्ञान ये दोनों सत्से विलक्षण (अनिर्वचनीय) हैं। इसीकारण रस्सीमें कल्पित सर्प और उसका ज्ञान दोनों अपने अधिष्ठान चेतन से (रस्सी-उपहित-चेतन) व साक्षि-चेतनसे विपरीत स्वभाव-वाले तथा अन्यथा-स्वरूपवाले अर्थात् निराकार चेतनसे भिन्न-स्वरूपवाले (साकार) होनेसे रस्सीमें कल्पित साँप व उसका ज्ञान दोनों अपने अधिष्ठान चेतनके **विवर्त** हैं । तो जिस प्रकार सर्प और सर्पज्ञान ये दोनों अज्ञान (रस्सी-उपहित-चेतन व साक्षीके आश्रित अज्ञान) के परिणाम और चेतन (रस्सी-उपहित-चेतन वा साक्षि-चेतन) के विवर्त हैं, ठीक उसी प्रकार संसार और संसारका ज्ञान, ये दोनों

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अज्ञान (समष्टि अज्ञान अर्थात् माया) के **परिणाम** और **शुद्ध चेतनके विवर्त** हैं।

यह नियम है कि जो वस्तु अज्ञानका परिणाम और चेतनका विवर्त होती है, (जैसे रस्सीमें सर्प और सर्पका ज्ञान, अथवा सपना और सपनेका ज्ञान) तो वह वस्तु मिथ्या अर्थात् अधिष्ठानमें कल्पित ही हुआ करती है। और जो वस्तु अधिष्ठानमें कल्पित होती है, उस कल्पितकी सत्ता उसके अधिष्ठानकी सत्तासे भिन्न नहीं होती है; अर्थात् अधिष्ठानके अतिरिक्त वास्तवमें कुछ होता ही नहीं है। ठीक इसी प्रकार यह संसार और इसका ज्ञान ये दोनों अज्ञानके परिणाम और चेतनके विवर्त होनेके कारण मिथ्या हैं, अर्थात् अधिष्ठान, जो ब्रह्मस्वरूप आत्मा तेरा असली स्वरूप है, उसमें ये दोनों कल्पित हैं। इसलिए इस कल्पित संसार की सत्ता, अधिष्ठानकी सत्तासे, (तेरे असली स्वरूप ब्रह्मकी सत्तासे) कोई अलग सत्ता नहीं है, अर्थात् **अधिष्ठानरूप ब्रह्मके सिवाय वास्तवमें कुछ है ही नहीं।**

इसी दृष्टिसे श्रीरामचन्द्रजीको **योगवासिष्ठमें** श्रीगुरु-वसिष्ठजी महाराजने कहा है :—

"न चोत्पन्नं न चैवाऽऽसीद्दृश्यं न च भविष्यति।
वर्तमानेऽपि नैवाऽस्ति परमेवाऽस्त्यवेधितम् ॥"

(योगवासिष्ठ, स्थितिप्रकरण, सर्ग ३३ श्लोक १८)

अर्थात् हे रामजी! [पारमार्थिक दृष्टिसे आत्मामें] न तो यह दृश्य (संसार) उत्पन्न हुआ है, न पहले ही था,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और न आगे ही होगा; अत एव वर्तमानमें भी यह (जगत्) नहीं है; एकमात्र अखण्ड ब्रह्म ही है।" इसका भाव यह है कि :— हे राम ! तुम्हारे वास्तविक स्वरूपमें (ब्रह्मस्वरूप आत्मामें) यह संसार तीनों कालोंमें बना ही नहीं है। यह तो केवल अज्ञानसे ही प्रतीत हो रहा है। और रस्सीमें कल्पित सर्प, जैसे रस्सीके अज्ञानसे प्रतीत होता है, व रस्सीके ज्ञानसे ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार यह सारा जन्म-मरण आदि दुःखरूप कल्पित संसार भी अपने स्वरूपके अज्ञानसे, अर्थात् आत्माके अज्ञानसे ही प्रतीत होता है और आत्माकें ज्ञानसे ही निवृत्त हो जायगा। इसी बातको समझानेके लियें वेदने भी कहा है कि **"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"** अर्थात् बिना आत्मज्ञानके जन्म-मरण-रूपी संसारसे मुक्ति नहीं मिल सकती। **"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"** अर्थात् उस मोक्षरूपी अयन (घर) को प्राप्त करनेके लिए आत्मज्ञानके अतिरिक्त और कोई रास्ता (साधन) है ही नहीं।

शंका :– भगवन् ! आपकी कृपासे अब मुझे यह समझमें आ गया, कि यह सारा संसार मिथ्या है। किन्तु जो वस्तु मिथ्या (कल्पित) होती है, उसका कोई न कोई आधार और अधिष्ठान भी होता ही है। इसलिए इस संसारका आधार और अधिष्ठान कौन है। यह कृपा करके मुझे बतलाइये।

उत्तर :– हे शिष्य ! भ्रान्तिका आधार उसे कहते हैं, जिसको बिना जाने भ्रान्ति न हो सके, और जो भ्रान्तिके समग्र भी प्रतीत हो, तथा जो भ्रान्तिके नष्ट होनेपर भीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रतीत होता रहे; जैसे रस्सीका **सामान्य अंश** (है-पन और यह-पन) रस्सीमें कल्पित साँपका आधार है। और अधिष्ठान उसको कहते हैं जो अंश भ्रान्तिके समय प्रतीत न हो और जिसको जाननेसे भ्रान्ति नष्ट हो जाय; जैसे रस्सीका विशेष-अंश (सूक्ष्म तन्तु, बट दिया हुआ इत्यादि) रस्सीमें कल्पित साँपका अधिष्ठान है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्मका (तेरे असली स्वरूप आत्माका) सामान्य स्वरूप अस्तित्व (सत्पना अर्थात् है-पना) इस कल्पित संसारका आधार है। क्योंकि "मैं यज्ञदत्त हूँ" और "यह संसार सत्य है" इस प्रकार यह-पन और है-पन (सामान्यस्वरूप) तो भ्रान्तिके समय भी रहता है और ब्रह्मज्ञान होनेके बाद भ्रान्तिके नष्ट होनेपर भी "मैं ब्रह्म हूँ" और "यह संसार मिथ्या है" इस प्रकार यहपन और हैपन (सामान्यस्वरूप) तो कायम रहता ही है। और ब्रह्मका (तेरे असली स्वरूप आत्माका) असंगपना, कूटस्थपना अर्थात् निर्विकारपना और नित्यमुक्त-पना आदि जो **विशेषस्वरूप** है वह इस कल्पित संसारका अधिष्ठान है; क्योंकि इस विशेष स्वरूपको जाननेसे ही यह भ्रान्तिरूप संसार नष्ट होता है।

शंका :— हे भगवन् ! यदि इस सारे संसारका आधार व अधिष्ठान भी मेरा असली स्वरूप आत्मा ही है, तो फिर इसका द्रष्टा मुझसे अलग कोई दूसरा होना चाहिये; जैसे कल्पित सर्पका द्रष्टा उसके आधार और अधिष्ठानरूप रस्सीसे भिन्न कोई पुरुष ही होता है।

उत्तर :— हे शिष्य ! जहाँ अधिष्ठान जड़ होता है वहीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अधिष्ठानसे भिन्न और कोई दूसरा द्रष्टा माना जाता है। जैसे सर्पका अधिष्ठान जो रस्सी है वह जड़ है तो वहाँ रस्सीसे भिन्न किसी और चेतन पुरुष इत्यादिको द्रष्टा माना जाता है। किन्तु जहाँ अधिष्ठान स्वयं चेतन होता है, वहाँ वह चेतन-अधिष्ठान ही स्वयं द्रष्टा भी माना जाता है। जैसे सपनेका अधिष्ठान, जो साक्षी चेतन है, वही सपनेका द्रष्टा भी है। [यह शंका और समाधान स्थूल दृष्टिसे रस्सीको सर्पका अधिष्ठान मानकर ही कह रहे हैं। वास्तवमें सिद्धान्तमें तो सर्पका अधिष्ठान भी **साक्षि-चेतन** ही है और वही सर्पका द्रष्टा भी है। इस प्रकार सभी कल्पित पदार्थोंका अधिष्ठान जो चेतन है वही उन सभी कल्पित पदार्थोंका द्रष्टा भी है। इसलिये वास्तवमें यह शंका बनती ही नहीं है।] तो इस प्रकार हे शिष्य ! यह सिद्ध हुआ कि यह सारा सुख-दुःख और जन्म-मरणरूप संसार तुझमें (आत्म-स्वरूपमें) भ्रान्ति-मात्र ही है, और जो वस्तु भ्रान्ति-मात्र अर्थात् कल्पित होती है उसकी निवृत्तिकी इच्छा भी भ्रान्ति ही होती है; क्योंकि कभी कोई व्यक्ति सिनेमावाले कल्पित शेरको देखकर नहीं डरता है और न उसे हटानेकी इच्छा ही करता है।

शंका :— भगवन् ! आपका कहना सही है; किन्तु जैसे किसी पुरुषको प्रतिदिन यदि भयानक सपने आते हैं और वे यद्यपि मिथ्या ही होते हैं तो भी उनको दूर करनेके लिए जप करना अथवा पाँव इत्यादि धोकर सोना; इस प्रकार कई साधन वह पुरुष करता है। इसी प्रकार यह संसार यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मिथ्या ही है तो भी मुझे जन्म-मरण इत्यादि दुःखोंका कारण प्रतीत हो रहा है इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस संसारसे मुझे मोक्ष मिल जाय। अतः आप कृपा करके मोक्षका कोई उपाय बताएँ।

उत्तर :— हे शिष्य ! यह तो मैंने तुझे पहिले ही बता दिया है, कि यह कल्पित संसार तेरे असली स्वरूप आत्माके अज्ञानसे ही प्रतीत हो रहा है। इसलिए इसकी निवृत्ति भी तभी होगी जब तुम अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान लोगे।

सो तेरे असली स्वरूपके बारेमें तो मैंने पहिले ही बतला दिया है कि "तू ही इस सारे कल्पित संसारका अधिष्ठान है और वास्तवमें तेरे असली स्वरूप आत्मामें यह संसार तीनों कालोंमें बना ही नहीं है। और जैसे कल्पित साँप अपने अधिष्ठान रस्सीका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता, उसी प्रकार यह कल्पित संसार भी तेरे असली स्वरूपकी कोई हानि नहीं कर सकता है। तू तो सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप ब्रह्म है।" इस प्रकार अपने असली स्वरूपको पहिचाननेको ही **आत्मज्ञान** कहते हैं व यही मोक्षका साधन है, और कोई नहीं।

शंका :— प्रभो ! यह तो आपकी कृपासे मेरी समझमें आ गया है कि यह जन्म-मरणरूप संसार अज्ञानसे ही प्रतीत हो रहा है, और ज्ञानसे ही निवृत्त होगा। और ज्ञानका जो वास्तविक स्वरूप है वह भी मेरी समझमें आ गया है कि 'यह सारा जगत् मेरे असली स्वरूप आत्मामें कल्पित है और मैं वास्तवमें सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।' किन्तु यह समझमें नहीं आ रहा है कि मैं ब्रह्म कैसे हूँ; क्योंकि :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पुण्य-पापका हूं मैं कर्त्ता।
जन्म-मरन औ सुखदुख धर्त्ता॥
और अनेक-भांति जग भासै।
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नासै॥
जो यातैं विपरीत-स्वरूपा।
ताकूँ ब्रह्म कहत मुनि-भूपा॥
कहो एकता कैसै जानूं ?
रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं॥

भाव :—हे प्रभो ! मैं तो जीव हूँ और पुण्य-पापका कर्त्ता, सुखी-दु:खी, जन्मने-मरनेवाला अज्ञानी और ज्ञानको चाहने वाला हूँ, और ब्रह्ममें तो न पुण्य है न पाप है, न जन्म है न मरण है, न सुख है न दु:ख है, न अज्ञान है और न ज्ञानकी इच्छा ही है। इस प्रकार ब्रह्मका और मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध होनेके कारण दोनोंकी एकता कैसे बन सकती है ?

उत्तर :—हे शिष्य ! हम जीव और ब्रह्मके वाच्य-अर्थ की एकता नहीं करते, किन्तु उनके लक्ष्य-अर्थ कूटस्थ और शुद्ध ब्रह्मकी ही आपसमें एकता करते हैं। सो कूटस्थ तो ब्रह्मकी तरह पुण्य-पाप, जन्म-मरण, सुख दु:ख तथा अज्ञान आदि सब धर्मोंसे रहित है; इसलिए कूटस्थ और ब्रह्मकी आपसमें एकता बन सकती है।

शंका :—भगवन् ! क्या कूटस्थ और जीवमें कोई अंतर है ? यदि कोई अन्तर है तो कृपा करके बतलाइये।

उत्तर :—हे शिष्य ! इन दोनोंमें वास्तवमें तो कोई

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्तर है ही नहीं, किन्तु अन्तःकरणकी उपाधिके भेदसे ही इनमें भी कल्पित भेद प्रतीत होता है। और केवल ये दोनों ही नहीं, अपितु जीव, कूटस्थ, ईश्वर और ब्रह्म ये चारों वास्तवमें शुद्ध चेतन ही हैं, अर्थात् वास्तवमें इनमें कोई भेद है ही नहीं; केवल माया और अविद्याकी उपाधि से ही ये चारों अलग अलग प्रतीत होते हैं।

शंका :– भगवन् ! ये चारों एक होते हुए भी अलग अलग कैसे प्रतीत होते हैं, यह समझमें नहीं आता; कृपा करके उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर :– हे शिष्य ! जैसे एक ही आकाश, घड़े, जल और बादलकी उपाधिसे घटाकाश, जलाकाश, मेघाकाश और महाकाश कहलाता है, उसी प्रकार **एक ही चेतन**, माया और अविद्याकी उपाधिसे जीव, कूटस्थ, ईश्वर और ब्रह्म कहलाता है।

शंका :– भगवन् ! ये उदाहरण मेरी समझमें नहीं आ रहे हैं, कृपा करके इन्हें संक्षेपमें समझाइये।

उत्तर :– हे शिष्य ! मान लो जैसे कोई घड़ा है, उसमें हमने जल भर दिया है; तो वहाँ जलाकाश भी है और घटाकाश भी है। **घटाकाश** तो उसे कहते हैं, जिस आकाशने जलसे भरे हुए घड़ेको, (जलको और घड़ेको दोनोंको) जगह दी है। तथा (१) घटाकाश, (२) उसके आश्रित जल, (३) उस जलमें आया हुआ आकाशका प्रतिबिम्ब, इन तीनोंको मिला कर **जलाकाश** कहते हैं।

शंका :– भगवन् ! आपने जो जलमें आकाशका प्रतिबिंब

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बतलाया वह समझमें नहीं आया; क्योंकि प्रतिबिम्ब सदा रूपवाली वस्तुका ही पड़ा करता है, आकाश नीरूप है, उसका प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! तुमने कभी देखा होगा कि घुटने जितने जलमें भी मनुष्यसे अधिक गहराई नज़र आया करती है। वह गहराई क्या है ? वह गहराई आकाशका प्रतिबिम्ब है। इससे यह सिद्ध होता है कि नीरूप आकाशका भी प्रतिबिम्ब पड़ा करता है। और रूप हमेशा किसी न किसी द्रव्यका ही होता है, अर्थात् द्रव्य ही रूपवाला होता है, किन्तु रूप तो स्वयं नीरूप है। और हम देखते हैं कि जैसे द्रव्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही नीला पीला इत्यादि नीरूप रूपका भी प्रतिबिम्ब पड़ा करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जैसे नीरूप रूपका प्रतिविम्ब पड़ा करता है वैसे नीरूप आकाशका भी प्रतिबिम्ब पड़ता है।

शंका :— भगवन् ! घटाकाश और जलाकाश ये तो समझमें आगये, किन्तु ये दोनों उदाहरण चेतनके किस भागको समझानेके लिए दिये हैं, यह मेरी समझमें नहीं आया ?

उत्तर :— प्रिय वत्स ! घटाकाशका उदाहरण, **कूटस्थ** [साक्षी] को समझानेके लिए, और जलाकाशका उदाहरण **जीवको** समझानेके लिए दिया है। मानलो यह शरीर एक प्रकार का घड़ा है उसमें व्यष्टि अविद्याका परिणाम बुद्धिरूप [यहाँ बुद्धिसे सारा सूक्ष्म शरीर लिया गया है] **जल** भरा हुआ है। बुद्धिरूपी जलसे भरे हुए इस स्थूल शरीररूपी

७

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

घड़ेमें **घटाकाशरूपी कूटस्थ** [साक्षी चेतन] और **जलाकाशरूपी जीव** ये दोनों मौजूद हैं।

कूटस्थ साक्षी-चेतन :— जो शुद्ध चेतन, बुद्धिरूपी जलसे भरे हुए स्थूल शरीररूपी घड़ेका [बुद्धि (सूक्ष्म शरीर) और स्थूल शरीर इन दोनोंका] अधिष्ठान है, वह **कूटस्थ** कहलाता है। कूटस्थका अर्थ है निर्विकार। जैसे कूट=ऐरन पर जितने भी ज़ेवरादि बनते हैं, उन सबका आधार ऐरन होता हुआ भी, वह ऐरन स्वयं नहीं बदलता, इसी प्रकार वह शुद्ध चेतन, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनोंका अधिष्ठान होते हुए भी उन शरीरोंके विकारोंसे स्वयं विकृत नहीं होता है। इसलिए अधिष्ठान-रूप शुद्ध चेतनको **कूटस्थ** कहते हैं।

जीव :— (१) कूटस्थ (अधिष्ठानरूप साक्षी चेतन) (२) अविद्या अथवा अविद्याका परिणामरूप बुद्धि (सूक्ष्म शरीर) (३) उस अविद्यामें अथवा उसके परिणामरूप बुद्धिमें आया हुआ शुद्ध चेतनका प्रतिबिम्ब, इन तीनोंको मिलाकर **जीव** कहते हैं।

शंका :— भगवन् ! चेतनका तो कोई रूप ही नहीं है, फिर उसका प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह बात तो मैंने तुम्हें आकाशका उदाहरण देकर पहिले ही समझा दी है, कि नीरूपका भी प्रतिबिम्ब पड़ा करता है। सो जैसे नीरूप आकाशका जलमें और नीरूप रूपका भी दर्पण इत्यादि स्वच्छ पदार्थोंमें प्रतिबिम्ब पड़ा करता है उसी प्रकार नीरूप चेतन (ब्रह्म) का भी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बुद्धिमें प्रतिबिम्ब पड़ता है।

शंका :— प्रभो ! यह बात तो समझमें आगई कि नीरूप का भी प्रतिबिम्ब पड़ा करता है। किन्तु जिसमें प्रतिविम्ब पड़ता है उसका तो कोई न कोई रूप होता ही है; परन्तु बुद्धिका कोई स्वरूप ही नहीं है। तो फिर नीरूप बुद्धिमें नीरूप चेतनका प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ?

उत्तर :— इस बातको समझनेके लिए पहिले यह समझो कि प्रतिबिम्ब किसको कहते हैं। प्रतिबिम्ब एक प्रकारकी प्रतिक्रिया (Reaction) होती है। और यह नियम है कि जैसी क्रिया होती है वैसी ही प्रतिक्रिया हुआ करती है अर्थात् जैसा बिम्ब होता है वैसा ही प्रतिबिम्ब पड़ता है। नये मकानमें जब हम कोई ध्वनि अर्थात् आवाज़ करते हैं तो उसकी प्रतिध्वनि (Echo) आया करती है अर्थात् वह आवाज़ लौटकर फिर हमें सुनाई देती है। वह प्रतिध्वनि एक प्रकारका **शब्दका प्रतिबिम्ब** है। और वह प्रतिबिम्ब आकाशमें पड़ा करता है; क्योंकि प्रतिध्वनि आकाशका गुण माना गया है। अब जैसे नीरूप शब्दका नीरूप आकाश में प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार नीरूप चेतनका नीरूप बुद्धिमें भी प्रतिबिम्ब पड़ा करता है। इस प्रकार हे शिष्य ! मैंने तुझे घटाकाश और जलाकाशके उदाहरण देकर, कूटस्थ (साक्षी) और जीवके स्वरूप समझाए, अब ईश्वरके स्वरूपको समझानेके लिये मैं तुझे पहिले मेघाकाश का उदाहरण समझाता हूँ।

मेघाकाश :— [१] मेघको अर्थात् बादलको जगह देने

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वाला आकाश [२] मेघ [३] मेघमें आया हुआ आकाशका प्रतिबिम्ब ये तीनों मिलकर मेघाकाश कहलाते हैं।

शंका:— भगवन्! आकाशका जलमें तो प्रतिबिम्ब पड़ता है, किन्तु बादलोंमें प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है?

उत्तर:— हे शिष्य! बादल जलका ही तो एक दूसरा स्वरूप है, जिसको हम भाप अथवा जलका सूक्ष्म स्वरूप कहते हैं। तुमने देखा होगा कि कभी कभी तुम्हें सफेद बादल चमकते हुए नज़र आते हैं, वह चमक बादलोंकी खुदकी नहीं है, किन्तु उनमें आया हुआ सूर्यका प्रतिबिम्ब है। जैसे बादलोंमें सूर्यका प्रकाशमय प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही आकाशका गहराईरूप प्रतिबिम्ब भी पड़ा करता है। हे शिष्य! ध्यान रहे कि यह मेघाकाशका उदाहरण तुम्हें ईश्वरका स्वरूप समझानेके लिये ही दिया है। अब उस ईश्वरका स्वरूप सुनो।

ईश्वर:— (१) ब्रह्म [व्यापक शुद्ध-चेतन] (२) माया (३) उस ब्रह्मके आश्रित मायामें आया हुआ ब्रह्म [शुद्ध-चेतन] का प्रतिबिम्ब— इन तीनोंको मिलाकर ईश्वर कहते हैं।

शंका:— भगवन्! जैसे आपने जीवमें तीन पदार्थ [(१) मलिन-सत्त्वगुण-प्रधान-प्रकृति अर्थात् अविद्या, अथवा उसका परिणामरूप बुद्धि (२) कूटस्थ (शुद्धचेतन, साक्षी) (३) उस शुद्ध चेतनका आया हुआ अविद्यामें प्रतिबिम्ब] बताए, उसी प्रकार ईश्वरमें भी आपने तीन ही पदार्थ [(१) शुद्ध-सत्त्वगुण-प्रधान-प्रकृति अर्थात् माया (२) ब्रह्म (चेतन) (३) चेतनका आया हुआ मायामें प्रतिबिम्ब] बताए

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं। किन्तु भगवन्! मुझे तो ये तीनों पदार्थ एकसे ही प्रतीत होते हैं। केवल इतना ही अन्तर प्रतीत होता है कि जीवकी उपाधि जो प्रकृति है, वह **मलिन सत्त्वगुण वाली** है, अर्थात् उसमें रजोगुण और तमोगुण बढ़े हुए हैं तथा सत्त्वगुण दबा हुआ है, और ईश्वरकी उपाधि जो प्रकृति है वह **शुद्ध-सत्त्वगुण-वाली** है, अर्थात् उसमें रजोगुण और तमोगुण दबे हुए हैं, तथा सत्त्वगुण बढ़ा हुआ है। तो फिर इतने थोड़ेसे (प्रकृतिकी केवल मलिनता और शुद्धताके) अन्तरसे ही ईश्वर और जीवमें इतना महान् भेद क्यों माना जाता है; और ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, स्वतंत्र इत्यादि धर्मोंवाला, तथा जीवको अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, परतंत्र इत्यादि धर्मोंवाला क्यों माना जाता है?

उत्तर :— प्रिय वत्स! यद्यपि जीव और ईश्वर दोनोंमें तीनों पदार्थ एकसे ही हैं, तथापि जीवकी उपाधि और ईश्वरकी उपाधि जो प्रकृति है, उसमें मलिनता और शुद्धता के अन्तरसे ही इन दोनोंमें महान् अन्तर आगया है। जैसे एक चंचल और मलिन जलसे भरी हुई कूण्डी और दूसरी स्वच्छ और स्थिर जलसे भरी हुई कूण्डीको यदि हम धूपमें रखें तो दोनोंमें सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ेगा तो सही, किन्तु स्वच्छ तथा स्थिर जलमें पड़कर, उस जलके असली स्वरूप को मिटाकर अपने जैसा गोल प्रकाशमय बना लेगा, या दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि वह स्वच्छ और स्थिर जलमें आया हुआ सूर्यका प्रतिबिम्ब उस जलको अपने वशमें करलेगा। और मलिन तथा चंचल जलमें पड़ा हुआ प्रति-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बिम्ब अपने असली स्वरूपको मिटाकर, उस जल जैसा मलिन तथा चंचल अर्थात् ज़र्रा ज़र्रा हो जायगा। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि वह मलिन और चंचल जल अपनेमें आए हुए सूर्यके प्रतिबिम्बको अपने जैसा बना लेगा अर्थात् उसे अपने वशमें कर लेगा।

तो जिस प्रकार एक ही सूर्यका प्रतिबिम्ब मलिन जलके अन्दर पड़कर उसके वशमें हो जाता है और स्वच्छ तथा स्थिर जलमें पड़कर उल्टा उसे वशमें करलेता है, ठीक उसी प्रकार एक ही शुद्ध-चेतनका प्रतिबिम्ब मलिन प्रकृति अर्थात् अविद्यामें पड़कर उस अविद्याके वशमें हो जाता है। इसलिए उसे परतंत्र, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् इत्यादि धर्मोंवाला **जीव** कहते हैं। और वही शुद्ध-चेतनका प्रतिबिम्ब, शुद्ध-प्रकृति अर्थात् मायामें पड़कर उसे अपने जैसा बनाकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन व संहार करता है, अर्थात् उस मायाको अपने वशमें कर लेता है। इसीलिए उसे मायाका प्रेरक, स्वतंत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् इत्यादि धर्मों वाला **ईश्वर** कहते हैं। किन्तु हे शिष्य ! इन दोनोंमें यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि अल्पज्ञ होना, पुण्य-पाप कर्मोंको करना, उसका फल सुख-दुःख भोगना और अपनेमें बन्धन-मोक्षको मानना, ये सब धर्म जीवके तीन हिस्सोंमेंसे जो प्रतिबिम्बका हिस्सा है अर्थात् जो अविद्या अथवा अविद्याके परिणामरूप **बुद्धिमें आया हुआ चिदाभास** है, उसके धर्म हैं। और सर्वज्ञ होना, सर्वशक्तिमान् होना, पुण्य-पाप कर्मोंका सुख-दुःख फल देना इत्यादि सब धर्म,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ईश्वरके तीन हिस्सोंमेंसे जो मायामें आया हुआ प्रतिबिम्ब का हिस्सा है, उसके अर्थात् **मायामें आए हुए चिदाभासके** हैं। किन्तु इन दोनोंके अधिष्ठान जो कूटस्थ और शुद्ध चेतन [ब्रह्म] हैं, वे दोनों एक तथा सब धर्मोंसे रहित हैं।

इस प्रकार हे शिष्य ! मैंने तुम्हें घटाकाश, जलाकाश व मेघाकाशके उदाहरणोंसे कूटस्थ, जीव व ईश्वरके स्वरूप समझाए; अब महाकाशका उदाहरण देकर तुम्हें ब्रह्मका स्वरूप समझाता हूँ। जैसे महाकाश, घड़ेमें, बादलमें, मकानमें, और उनसे बाहर अर्थात् सब जगह एक रस व्यापक है, उसी प्रकार ब्रह्म भी जीवमें, ईश्वरमें, तथा उनसे बाहर अर्थात् मायामें और मायासे बाहर सब जगह, एक रस, निर्विकार रूपसे व्यापक है। और जैसे घटाकाश तथा महाकाश वस्तुतः एक ही हैं, वैसे ही कूटस्थ और ब्रह्म भी वास्तवमें एक ही हैं। इसीलिए जब जीव और ईश्वरकी एकता कही जाती है, तब उनके तीनों हिस्सोंको न लेकर केवल जो शुद्ध-चेतनका हिस्सा, कूटस्थ तथा ब्रह्मरूप है, उन दोनोंकी ही आपसमें एकता की जाती है।

शंका :— भगवन् ! यदि जीव और ब्रह्म दोनों एक ही हैं, तो फिर वेदोंमें जो कर्म और उपासनाका विधान आया है, वह सब निष्फल हो जायगा। क्योंकि जीवको यदि ब्रह्म स्वरूप ही मानलें, तो फिर जीव कर्म किसके लिये करेगा ? और परमात्माके अलग न होनेसे जीव उपासना किसकी करेगा ? और ब्रह्मको यदि जीव-स्वरूप मानलें तो फिर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जीवको कर्मोंका फल कौन देगा ? तथा वेदोंके अन्दर ऐसा प्रसंग भी आया है :—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।"

[अथर्ववेदके मन्त्रभागके अन्तर्गत मुण्डक उपनिषद्के ३ मु० के १ खं० का १ मन्त्र]

अर्थात् साथ साथ रहनेवाले तथा समान आख्यानवाले अर्थात् जिनकी अभिव्यक्तिका कारण समान है ऐसे दो पक्षी एक ही वृक्षका आश्रय करके रहते हैं। उनमें एक तो स्वादिष्ट (मधुर) पिप्पल (कर्मफल) का भोग करता है और दूसरा भोग न करके केवल देखता रहता है।"

भाव यह है कि :— एक बुद्धिरूपी वृक्षपर दो पक्षी बैठे हैं एक तो कर्म करता है, और उसका फल सुख-दुःख भोगता है, दूसरा अकर्ता, भोग-रहित, निर्विकार, असंग तथा भोगनेवाले पक्षीको प्रकाशित करनेवाला है।' वेदके इस कथनसे भी ऐसा प्रतीत होता है कि भोगनेवाला जो जीव है, वह भोग-रहित परमात्मासे भिन्न है; तो फिर आप जीव और ब्रह्मकी एकता कैसे कहते हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह जो वेदोंमें दो पक्षियोंका वर्णन आया है, वह कूटस्थ और आभासके बारेमें आया है, न कि जीव और ब्रह्मके बारेमें। और यह तो मैंने तुझे पहिले ही बतला दिया है कि जितने भी कर्म करना और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

फल भोगना इत्यादि धर्म हैं, वे सब जीवके आभासके हिस्सेमें हैं, न कि कूटस्थके हिस्सेमें। कूटस्थ तो सब धर्मों से रहित व केवल साक्षी-मात्र है। सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करना, जीवोंको अपने अपने कर्मोंका फल देना इत्यादि सब धर्म भी ईश्वरके आभासके हिस्सेमें हैं न कि शुद्ध-चेतन ब्रह्मके हिस्सेमें; क्योंकि शुद्ध-चेतन ब्रह्म तो सब धर्मोंसे रहित, निर्विकार और ईश्वरका भी केवल साक्षी-स्वरूप ही है। अतः एकता सदा जीव-साक्षी और ईश्वर-साक्षीकी ही आपसमें की जाती है, न कि माया और अविद्या अथवा उसके परिणामरूप बुद्धिमें आए हुए चिदाभास की। जीव और ईश्वरके चिदाभास तो परस्पर भिन्न हैं; इसलिए वेदोंमें कर्म और उपासनाका कथन भी सही है। क्योंकि कर्म और उपासना करनेवाला बुद्धिमें आया हुआ चिदाभास दूसरा है और फल देनेवाला तथा उपास्य (उपासना करने योग्य) मायामें आया हुआ चिदाभास दूसरा है। और वेदोंने कर्म करने व फल देनेके बारेमें जो कथन किया है वह जीव तथा ईश्वरके आभास-अंशको लक्ष्य करके ही किया है तथा अकर्ता, अभोक्ता, उदासीन, साक्षी और शुद्ध-चेतनका जो कथन किया है, वह ब्रह्मसे अभिन्न कूटस्थको लक्ष्य करके ही किया है। जब वेद कहता है "तत्त्वमसि" अर्थात् तू ब्रह्म है तो उस समय तू शब्दसे वेदका अभिप्राय जीवका नहीं है, किन्तु कूटस्थका है। क्योंकि तेरा असली स्वरूप कूटस्थ (साक्षी) है, सो कूटस्थ और ब्रह्म दोनों एक हैं। उनका जो भेद तुम्हें प्रतीत हो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रहा है, वह केवल अविद्या अथवा अविद्याके परिणाम स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीरकी उपाधिसे ही प्रतीत हो रहा है। इसलिए

"अहं ब्रह्म" नहिं जौलौं जानै।
तौलौं दीन दुखित भय मानै॥

अर्थात् हे शिष्य ! "मैं (साक्षी) ब्रह्म हूँ" ऐसा जब तक तुम नहीं जानोगे, तब तक अपनेको दीन और दुःखी मानते रहोगे। इसलिए यदि तुम इस जन्म-मरणरूपी संसारके भयसे मुक्त होना चाहते हो, तो अपने असली स्वरूपको पहिचानो।

शंका :— गुरुजी ! अब कृपा करके यह बताइये कि 'मैं ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान किसको होता है। आपके कथनानुसार मुझे जीवके दो प्रधान-भाग समझमें आए हैं। एक **कूटस्थ** (साक्षी-चेतन), दूसरा उसका अविद्या अथवा अविद्याके परिणामरूप बुद्धिमें आया हुआ आभास; जिसे **चिदाभास** भी कहते हैं। अब यह समझमें नहीं आ रहा है कि यह ज्ञान कूटस्थको होता है या चिदाभास को होता है ? यदि कूटस्थको होता है तो क्या पहिले कूटस्थमें अज्ञान था ? यदि अज्ञान मान करके फिर ज्ञान मानेंगे तो कूटस्थ विकारी सिद्ध हो जायगा। और कूटस्थमें "मैं ब्रह्म हूँ" यह कहना भी नहीं बन सकता; क्योंकि कहना सुनना इत्यादि सब क्रियाएँ सूक्ष्म-शरीरमें आए हुए चिदाभासकी ही हुआ करती हैं। यदि यह कहें कि ज्ञान चिदाभासको होता है तो यह भी नहीं बन सकता। क्योंकि चिदाभास

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तो मिथ्या है; क्योंकि जब तक अविद्या है तभी तक उसमें चिदाभास भी रहता है, और जब मोक्ष अवस्थामें अविद्याका अत्यन्त-अभाव हो जाता है तो वहाँ चिदाभास भी नहीं रहता, केवल शुद्ध-चेतन ही रहता है। वह शुद्ध चेतन अविद्याके रहनेपर अथवा नहीं रहनेपर भी कायम रहता है, इसलिए **सत्** है, और चिदाभास अविद्याके नष्ट होने पर नहीं रहता इसलिए **मिथ्या** है। सो मिथ्या चिदाभास यदि अपनेको कहे कि "मैं ब्रह्म हूँ" तो वह ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाएगा, फिर उस मिथ्या ज्ञानसे मोक्ष कैसे मिल सकता है? इसलिए हे भगवन्! इस दासपर कृपा करके समझाइएगा कि "मैं ब्रह्म हूँ", यह ज्ञान किसको होता है?

उत्तर :— हे शिष्य! इस बातको समझानेके लिए मैं तुम्हें चिदाभासकी सात अवस्थाएँ बतलाता हूँ। वे ये हैं (१) अज्ञान (२) आवरण (३) भ्रान्ति अथवा शोक (४) परोक्ष ज्ञान (५) अपरोक्ष ज्ञान (६) भ्रान्ति-नाश अथवा शोक-नाश और (७) अतिहर्ष अथवा निरंकुश-तृप्ति।

(१) **अज्ञान :—** अपने स्वरूपको नहीं पहिचानना। इस अज्ञानके कारण ही "मैं ब्रह्म को नहीं जानता" ऐसा लोग कहा करते हैं।

(२) **आवरण :—** आवरण कहते हैं पर्देको, जो अज्ञान का कार्य है। क्योंकि उस अज्ञानके कारण ही लोग ऐसा कहा करते हैं कि "कूटस्थ (ब्रह्म) न तो है ही और न प्रतीत ही होता है।" ऐसा व्यवहार (कहना) अज्ञानकी दो शक्तियोंके कारण ही हुआ करता है। एक असत्त्वापादक-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शक्ति और दूसरी अभानापादक-शक्ति ।

[क] "ब्रह्म है ही नहीं" ऐसी प्रतीति करानेवाली जो शक्ति है वह, **असत्त्वापादक-शक्ति** कहलाती है ।

[ख] "ब्रह्मका भान [प्रत्यक्ष-ज्ञान] नहीं होता है" ऐसी प्रतीति करानेवाली जो शक्ति है वह **अभानापादक-शक्ति** कहलाती है । इन दोनों शक्तियोंको मिलाकर **आवरण** कहते हैं ।

(३) **भ्रान्ति अथवा शोक :—** उस अज्ञानके आवरणसे अपने असली स्वरूप कूटस्थमें जन्म-मरण, दुःख-सुख इत्यादि संसारके माननेको अर्थात् मैं (कूटस्थ-साक्षी) कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ, जन्मता हूँ, मरता हूँ, इस प्रकार माननेको **भ्रांति** अथवा **शोक** कहते हैं ।

(४) **परोक्ष ज्ञान :—** "ब्रह्म है" ऐसे जाननेको कहते हैं ब्रह्मका **परोक्ष-ज्ञान** । इस ज्ञानसे "ब्रह्म नहीं है", यह अज्ञान की असत्त्वापादक-शक्ति नष्ट होती है ।

(५) **अपरोक्ष-ज्ञान :—** मैं (कूटस्थ) ब्रह्म हूँ अर्थात् मेरा असली स्वरूप ब्रह्म है, इस प्रकारके ज्ञानको ब्रह्मका **अपरोक्ष-ज्ञान** कहते हैं । इस ज्ञानसे 'मुझे ब्रह्मका भान (प्रत्यक्ष) नहीं हो रहा है", यह अज्ञानकी अभानापादक-शक्ति अर्थात् आवरणका अभानापादक अंश नष्ट होता है ।

(६) **भ्रांति-नाश अथवा शोक-नाश :—** ब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञान होनेके बाद अर्थात् अपने असली स्वरूपको पहिचानने के बाद, मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं जन्मता हूँ, मैं मरता हूँ इस प्रकारकी भ्रांति नष्ट हो जाती है । इसीको भ्रांति-नाश, शोक-नाश, विक्षेप-नाश, संसार-नाश

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इत्यादि शब्दोंसे कहा करते हैं।

(७) **अतिहर्ष अथवा निरंकुश-तृप्ति :—** जब भ्रान्ति नष्ट हो जाती है तब ज्ञानीको यह निश्चय हो जाता है कि मैं (मेरा असली स्वरूप साक्षी) जन्म-मरण सुख-दुःख इत्यादि सब धर्मोंसे रहित, असंग, निर्विकार, अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ। ऐसा निश्चय होनेके वाद ज्ञानीको जो महान् आनन्दका अनुभव होता है, उसको अतिहर्ष अथवा निरंकुश-तृप्ति (असीम तृप्ति) कहते हैं। क्योंकि उसका (ज्ञानीकी तृप्तिका) नाप-तौल नहीं हो सकता। हे शिष्य! ये ऊपर कही हुई सातों अवस्थाएँ चिदाभास-अंशकी हैं न कि शुद्ध चेतन (कूटस्थ-साक्षी) की। और इन सातों अवस्थाओंमें ज्ञान भी आगया। इसलिए तुमने जो यह पूछा था कि "मैं ब्रह्म हूँ" यह अपरोक्ष-ज्ञान किसको होता है", उसका उत्तर तो तुम्हें मिल गया कि "मैं ब्रह्म हूँ" यह अपरोक्ष-ज्ञान चिदाभासको ही होता है न कि कूटस्थको।

शंका :— मेरी शंका तो पूरी हल हुई ही नहीं; क्योंकि आपने कहा था कि कूटस्थ और ब्रह्म तो दोनों एक ही हैं किन्तु आभास (चिदाभास) ब्रह्मसे न्यारा है; क्योंकि ब्रह्म सत्य है और चिदाभास मिथ्या है। वह मिथ्या चिदाभास यदि अपने आपको कहे कि "मैं ब्रह्म हूँ" तो वह भ्रान्ति कहलाएगी। अब उस भ्रान्तिको यदि आप ब्रह्मज्ञान कहेंगे तो ठीक नहीं है; क्योंकि भ्रान्तिसे कभी मोक्ष नहीं हो सकता। इसलिए कृपया यह समझाइये कि "मैं ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान किसको होता है।

उत्तर :— हे शिष्य! 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान तो बुद्धि-सहित

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चिदाभासको ही होता है और "मैं ब्रह्म हूँ" यह कहता भी चिदाभास ही है। किन्तु उस समय अपने असली स्वरूप कूटस्थको लक्ष्य करके ही कहता है। जैसे दर्पणमें चमकता हुआ विशेष-प्रकाश यदि कहे कि "मैं सूर्य हूँ" तब यह समझना चाहिये कि वह दर्पणमें आया हुआ प्रतिबिम्ब-रूप विशेष-प्रकाश अपने विशेष-स्वरूपका बाध करके (उस विशेष चमकको मिथ्या समझ करके) और अपने असली स्वरूप (बिम्ब सूर्य) को लक्ष्य करके ही कहता है कि "मैं सूर्य हूँ।"

अथवा जब कोई पुरुष अपने मुखको दर्पणमें देखकर कहता है कि "मैं अब मोटा हो गया हूँ" तो क्या वह दर्पणवाले मुखको मोटा कह रहा है ? नहीं। क्योंकि वह पुरुष यह समझता है कि मेरा मुख तो मेरी गर्दनपर है और दर्पणमें केवल उसका प्रतिबिम्ब ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि जब वह पुरुष अपने मुखके प्रतिबिम्बको देखकर कहता है कि "मैं मोटा होगया हूँ" तो उस समय वह प्रतिबिंब-रूप उस मुखको बाध करके (उस प्रतिबिम्बित मुखको मिथ्या समझ करके, कुछ महत्त्व न देकर) अपने गर्दनवाले बिम्बरूप असली मुखको ही लक्ष्य करके कहता है। इस प्रकार प्रतिबिंब को बाध करके अर्थात् मिथ्या समझकरके, बिम्बको सत्य समझकर शेष रखना भी एक प्रकारकी एकता मानी जाती है। इस प्रकारकी एकताको—**बाध-एकता**, **बाध-अभेद** अथवा **बाध-सामानाधिकरण्य** भी कहते हैं। क्योंकि यह एकता (प्रतिबिम्ब और बिम्बकी एकता) प्रतिबिम्बको बाध कर और प्रतिबिम्बका असली स्वरूप बिम्ब समझ करके ही

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

की जाती है। इस प्रकार चिदाभास और ब्रह्मकी भी आपस में **बाध-एकता** ही मानी जाती है। क्योंकि जब चिदाभास कहता है कि "मैं ब्रह्म हूँ" तो उस समय अपने आभास-रूपको बाध करके, अपने असली स्वरूप बिम्बरूप कूटस्थ (ब्रह्म)को लक्ष्य करके ही कहता है कि "मैं ब्रह्म हूँ।"

और जब हम साक्षी (कूटस्थ) की ब्रह्मसे एकता करते हैं तो उस एकताको **मुख्य-सामानाधिकरण्य, मुख्य-अभेद** अथवा **मुख्य-एकता** भी कहते हैं। क्योंकि वह एकता किसीका बाध न करके ही की जाती है। और कूटस्थ तथा चिदाभास ये दोनों "अहम्" शब्दके अर्थ हैं, अर्थात् "अहम्" शब्दका उच्चारण करते समय इन दोनोंका एक ही साथ भान होता है। इसलिए ज्ञानी जब "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा कहता है तो उस समय 'मैं' शब्दका उच्चारण करते ही उसे कूटस्थ व आभास इन दोनोंका भान हो जाता है और इन दोनोंकी ही वह ब्रह्मसे एकता करता है। परन्तु "अहम्" शब्दके अर्थ कूटस्थकी जो ब्रह्मसे एकता होती है वह सीधी एकता होनेके कारण **मुख्य-एकता** कहलाती है। और अहं शब्दके अर्थ, चिदाभासकी जो ब्रह्मसे एकता होती है, उसमें आभासका बाध होनेके कारण वह **बाध-एकता** कहलाती है। तो हे शिष्य ! अपने आभास स्वरूपका बाध करके व अपने असली स्वरूप कूटस्थको लक्ष्य करके, "मैं ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान चिदाभासको किस प्रकार होता है, यह तुम्हारी समझमें अब आगया होगा।

शंका :— भगवन् ! यह तो मेरी समझमें आगया कि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चिदाभासको ही "मैं ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान होता है किन्तु यह जो आपने कहा कि 'मैं' शब्दका उच्चारण करते समय चिदाभास और कूटस्थ (साक्षी) का एक ही साथ भान होता है, इसमें मुझे यह कृपा करके समझाइये कि इन दोनोंका भान (ज्ञान) अपने आपही होता है या और किसीके द्वारा होता है ।

उत्तर :— हे शिष्य ! अन्तःकरण-सहित-चिदाभासका भान तो साक्षी द्वारा होता है, किन्तु साक्षी स्वयं-प्रकाश है इसलिए उसका भान तो अपने आप ही होता है न कि वृत्ति-द्वारा । वृत्ति तो केवल आवरणरूप अज्ञानको ही नष्ट करती है । जैसे अंधकारमें कूण्डेसे ढकी हुई मणिका डण्डेसे कूण्डेकों फोड़नेके बाद, बिना किसी दीपक इत्यादिकी सहायताकें ही अपने आप प्रकाश हो जाता है, इसी प्रकार अज्ञानसे ढकें हुए अपने असली स्वरूप साक्षीका "अहं ब्रह्मास्मि" इस वृत्ति-रूपी डण्डेसे अज्ञानरूपी कूण्डेको फोड़नेके बाद, बिना किसीकी (वृत्ति इत्यादिकी) सहायताके ही अपने आप प्रकाश हो जाता है, क्योंकि साक्षी स्वयं-प्रकाश है । किन्तु जो वस्तु स्वयं-प्रकाश नहीं होती, जैसे घड़ा इत्यादि जड़ पदार्थ, तो उनकों जनवानेके लिए केवल वृत्तिसे अज्ञानको ही नष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है प्रत्युत (बल्कि) चिदाभासकी सहायता भी आवश्यक है ।

जैसे अंधकारमें कूण्डेसे ढके हुए मिट्टीके बर्तनको डण्डेसें कूण्डेको फोड़नेके बाद भी बिना किसी प्रकाशकी सहायताकें हम नहीं देख सकते हैं । क्योंकि वहाँ दो काम होते हैं (१) डंडेसे ढक्कनको फोड़ना (२) दीपक इत्यादिके प्रकाश-द्वारा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मिट्टीके बर्तनको जनवाना। इसी प्रकार जितनी भी जड़-वस्तुएँ हैं उनको जनवानेके लिए पहिले वृत्ति अज्ञानको नष्ट करती है फिर उस वृत्तिमें आया हुआ चेतनका आभास उस जड़ वस्तु को जनवाता है। इस प्रकारके जनवानेको प्रत्यक्ष-ज्ञान कहते हैं। आत्माके प्रत्यक्षमें तो केवल अज्ञानके आवरणको दूर करनेके लिए वृत्तिकी ही आवश्यकता पड़ती है, न कि चिदाभासकी। क्योंकि आत्मा स्वयं-प्रकाश होनेके कारण चिदाभासका उसके साक्षात्कारमें कोई उपयोग नहीं होता। किन्तु आत्मासे भिन्न जितनी भी अनात्म जड़ वस्तुएँ हैं उन सबके प्रत्यक्ष-ज्ञानमें वृत्ति-व्याप्ति (वृत्तिसे अज्ञानको नष्ट करना) और फल-व्याप्ति (चिदाभासका उस वस्तुको जनवाना) इन दोनोंकी आवश्यकता पड़ती है।

शंका :– भगवन्! जिस प्रकार प्रत्यक्ष-ज्ञान भी एक प्रकारका ज्ञान है, उसी प्रकार और कितने ज्ञान हैं यह कृपा करके बतलाइये।

उत्तर :– हे शिष्य! कुल छः प्रकारके ज्ञान होते हैं। (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमिति (३) शाब्द (४) उपमिति (५) अर्थापत्ति और (६) अभाव। इनको छः प्रकारकी प्रमा भी कहते हैं। प्रमा अर्थात् वह यथार्थ-ज्ञान जो स्मृति भी न हो और जिसके अर्थका कभी बाध भी न हो सके अर्थात् जो कभी झूठा सिद्ध न हो सके। और उस प्रमा-ज्ञानके करणको कहते हैं **प्रमाण। करण कहते हैं असाधारण कारणको।** कारण दो प्रकारके होते हैं। (१) साधारण कारण (२) असाधारण कारण। जो सब कार्योंका कारण होता है वह **साधारण कारण कहलाता**

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। जैसे धर्म, अधर्म, ईश्वर इत्यादि, सब कार्योंके प्रति कारण हैं इसलिए वे साधारण कारण कहलाते हैं। और जो सब कार्योंके प्रति कारण न हो, केवल किसी विशेष कार्यका ही कारण हो, वह **असाधारण कारण** कहलाता है। जैसे कुम्हारका डण्डा सब कार्योंका तो कारण नहीं है केवल घड़ा इत्यादि जो कार्य-विशेष हैं, उनका ही कारण है। इसलिए डण्डा घड़ेका असाधारण कारण अर्थात् करण कहलाता है। अतः जितने प्रमा-ज्ञान मैंने तुम्हें बतलाये हैं उनके असाधारण कारणों (करणों) को प्रमाण कहते हैं।

शंका :– गुरुजी ! वे प्रमाण कितने हैं और कौन कौन से होते हैं यह कृपा करके बताएँ।

उत्तर :– हे शिष्य ! जिस प्रकार प्रमा-ज्ञान छः प्रकार के होते हैं वैसे प्रमाण भी छः प्रकारके होते हैं।

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण (२) अनुमान प्रमाण (३) शब्द प्रमाण (४) उपमान प्रमाण (५) अर्थापत्ति प्रमाण और (६) अनुपलब्धि प्रमाण।

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण :– जो चार्वाक हैं (जो आकाशके बिना बाकी वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन चार भूतोंको माननेवाले तथा शरीरको ही आत्मा माननेवाले हैं) वे एक प्रत्यक्ष प्रमाणको ही स्वीकार करते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं प्रत्यक्ष ज्ञानके करण (साधन) को। प्रत्यक्ष ज्ञान सभी विषयोंका हुआ करता है, जैसे शब्दका प्रत्यक्ष, स्पर्शका प्रत्यक्ष, रूपका प्रत्यक्ष, रसका प्रत्यक्ष और गंध इत्यादिका प्रत्यक्ष। इन प्रत्यक्षोंके करण (प्रमाण) भी अलग अलग

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होते हैं, जैसे शब्दके प्रत्यक्षका प्रमाण श्रोत्र-इन्द्रिय (कान) व रूपके प्रत्यक्षका प्रमाण (करण) नेत्र-इन्द्रिय। इसी प्रकार सभी इन्द्रियाँ **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहलाती हैं।

(२) **अनुमान प्रमाण** :— वैशेषिक-शास्त्रके कर्त्ता कणाद जिसको कणभुक् भी कहते हैं वे और सुगत मतके अनुयायी अर्थात् बौद्ध मतवाले कहते हैं कि प्रत्यक्षके अतिरिक्त एक दूसरा अनुमान प्रमाण भी होता है। क्योंकि पहाड़मेंसे धूएँको निकलता हुआ देखकर हम बिना अग्निके देखे ही पहाड़में अग्निका अनुमान लगा लेते हैं। तथा भोजनको दूरसे देखकर ही ऐसा अनुमान लगा लेते हैं कि इस भोजनसे हमें तृप्ति हो जायगी। और ऐसा अनुमान लगाने के बाद ही हम भोजनमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। इसलिए दूसरा **अनुमान प्रमाण** भी मानना आवश्यक है।

(३) **शब्द प्रमाण** :— साँख्य-शास्त्रके कर्त्ता जो कपिल हैं, उनके मतका अनुसरण करनेवाले तीसरा शब्द प्रमाण भी मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि शब्द प्रमाण हम नहीं मानेंगे तो विदेशोंमें होनेवाली घटनाओंका, जिनका हम प्रत्यक्ष अथवा अनुमान भी नहीं कर सकते, कैसे पता लग सकता है। क्योंकि उन घटनाओंका पता तो रेडियो, टेलीग्राम, वायरलेस अथवा वहाँसे आये हुए किसी मनुष्यके शब्दोंको सुननेसे ही लगा करता है। इसलिए तीसरा **शब्द प्रमाण** भी मानना आवश्यक है।

(४) **उपमान प्रमाण** :— न्याय-शास्त्रके कर्त्ता गौतमके मत को माननेवाले चौथा उपमान प्रमाण भी मानते हैं। वे कहते

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं कि जिस पुरुषने गवय (रोज)को नहीं देखा हो किन्तु किसी बनवासी पुरुषसे ऐसा सुन रक्खा हो कि "गऊ जैसी शक्लका रोज होता है", वह पुरुष यदि कभी बनमें चला जाय और रोजको देखले, तो उसी समय उसे बनवासी पुरुषके कहे हुए शब्द याद आते हैं। और उन शब्दोंके याद आते ही उस पुरुष को यह ज्ञान हो जाता है कि "यह पशु रोज है"। इसी ज्ञानको **उपमिति ज्ञान** कहते हैं। और इस ज्ञानके करण (असाधारण कारण) को अर्थात् गवयमें गो-सादृश्यके ज्ञानको ("यह पशु गौ जैसा है" इस ज्ञानको) उपमान प्रमाण कहते हैं। अतः यदि केवल प्रत्यक्ष आदि तीन प्रमाण ही होते तो फिर उपमिति-ज्ञान नहीं होना चाहिए। इसलिए इन तीनोंके अतिरिक्त चौथा **उपमान प्रमाण** भी मानना आवश्यक है।

(५) **अर्थापत्ति प्रमाण** :— पूर्व-मीमाँसाके एकदेशी जो भट्ट के शिष्य प्रभाकर हैं, वे पाँचवाँ अर्थापत्ति प्रमाण भी मानते हैं। वे कहते हैं, कि यदि कोई मोटा ताज़ा पुरुष ऐसा कहे "मैं कभी भोजन ही नहीं करता हूँ" तो उसके कहनेपर कोई विश्वास नहीं करेगा। क्योंकि उसकी मोटाई और स्फूर्तिको देखकर, ऐसा ज्ञान हो जाता है कि 'यह पुरुष यदि दिनमें भोजन नहीं करता है तो रात्रीमें कहीं न कहीं छिपकर अवश्य भोजन करता ही है।' वह रात्रिके भोजनका ज्ञान, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, और उपमान इन चारों प्रमाणोंसे तो हो ही नहीं सकता, केवल उसकी मोटाईको देखकर ही हो सकता है। उस मोटाईके ज्ञानको, जिससे रात्रिके भोजनका ज्ञान होता है, **अर्थापत्ति प्रमाण** कहते हैं, इसलिए उन चारों प्रमाणोंके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अतिरिक्त यह पाँचवाँ अर्थापत्ति प्रमाण भी मानना आवश्यक है।

(६) **अनुपलब्धि प्रमाण** :— पूर्व-मीमाँसक जो भट्ट हैं वे छठा अनुपलब्धि प्रमाण भी मानते हैं और वेदान्त-दर्शनमें भी छहों ही प्रमाण अंगीकार किये गए हैं। अनुपलब्धि प्रमाणको सिद्ध करनेके लिये वे इस प्रकार उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहते हैं, कि किसी पिताने अपने लड़केको कमरेमें गीताकी पुस्तक लानेके लिए भेजा। वहाँ वह पुस्तक नहीं थी। उस लड़केने वापिस आकर कहा "पिताजी ! वहाँ तो पुस्तक हैं ही नहीं"। पिताजीने पूछा "पुस्तकके अभाव (नहीं होने) को तुमने कैसे जाना" ? पुत्रने उत्तर दिया "पिताजी ! उस पुस्तककी अनुपलब्धि (अप्रतीति अर्थात् नहीं दीखने) से ही मैंने उस पुस्तकके अभावको जाना"। इससे सिद्ध हुआ कि किसी वस्तुके अभावका ज्ञान उस वस्तुकी अनुपलब्धि (अप्रतीति) द्वारा ही हुआ करता है। इसलिए **अनुपलब्धि प्रमाण** भी मानना आवश्यक है। यों कुल छः प्रमाण माने जाते हैं।

शंका :— भगवन् ! आपने जो ये छः प्रमाण बतलाए, उनमें प्रत्यक्ष ज्ञानका प्रमाण (साधन) ज्ञान-इन्द्रियोंको बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान, इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होता है। किन्तु आपके मत (वेदान्त मत) में तो ज्ञानको आत्माका स्वरूप माना जाता है और उस आत्म-स्वरूप ज्ञानकी कभी उत्पत्ति व नाश तो होता ही नहीं है; तो फिर ज्ञानकी उत्पत्तिमें इन्द्रियाँ करण (साधन) कैसे बन सकती हैं ?

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— हे शिष्य ! इस ज्ञान शब्दसे मेरा तात्पर्य आत्म-स्वरूप ज्ञानसे नहीं है किन्तु वृत्ति-रूप ज्ञानसे है। क्योंकि वेदान्त-मतमें वृत्तिको भी वस्तुके ज्ञानकी उत्पादक होनेके नाते ज्ञान कहते हैं। इस वृत्ति-रूप ज्ञानके करण (साधन) इन्द्रियाँ हैं; क्योंकि वृत्ति, ज्ञान-इन्द्रियों द्वारा ही बाहर निकला करती है। इसीलिये ज्ञान-इन्द्रियोंको **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहा जाता है।

शंका :— भगवन् ! आपके मतमें तो ज्ञान एक ही माना जाता है फिर आपने वृत्ति-ज्ञान और आत्म-स्वरूप-ज्ञान ये दो ज्ञान कैसे बताए ?

उत्तर :— हे शिष्य ! वास्तवमें तो ज्ञान (चेतन) एक ही है, किन्तु अन्तःकरण, वृत्ति और विषयकी उपाधिसे वह चार प्रकारका माना जाता है। (१) प्रमाता-चेतन (२) प्रमाण-चेतन (३) प्रमिति-चेतन अथवा प्रमा-चेतन और (४) प्रमेय-चेतन अथवा विषय-चेतन। अब चेतनके इन चार प्रकारोंको समझानेके लिए मैं तुम्हें पहिले वेदान्त-मतानुसार प्रत्यक्ष-ज्ञान की विधि बतलाता हूँ।

जब किसी घटादिक वस्तुका प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है तब अन्तःकरणकी वृत्ति आँख आदि ज्ञान-इन्द्रियोंके साथ उस ज्ञेय वस्तु तक पहुँच करके उस वस्तुको व्याप्त करके, उसके समान आकारको धारण करके अज्ञानको (उस ज्ञेय वस्तुसे अवच्छिन्न-चेतनके आश्रित अज्ञानको) नष्ट करती है; तब (वृत्ति और विषयके आपसमें मिलनेपर अर्थात् वृत्ति व विषय दोनों उपाधियोंके एक देशमें होनेपर वृत्ति-अवच्छिन्न-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चेतन व विषय-अवच्छिन्न-चेतन दोनोंका अभेद होता है और तभी उस ज्ञेय वस्तुका **प्रत्यक्ष ज्ञान** होता है।

इस प्रकार जहाँ जहाँ विषयका प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है वहाँ वहाँ यही प्रक्रिया मानी जाती है और यही वेदान्त-मतानुसार प्रत्यक्ष-ज्ञानकी विधि है।

हे शिष्य ! अब यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि जो सामान्य-चेतन (ब्रह्म) है, वह सर्वत्र व्यापक होनेके कारण, अन्तःकरणमें भी है व ज्ञानेन्द्रियोंके साथ विषय तक पहुँची हुई, अन्तःकरणका परिणामरूप जो वृत्ति है, उसमें भी है; फिर वह वृत्ति जब विषयके समान आकारको धारण कर लेती है तो उस विषयाकार वृत्तिमें भी मौजूद है और वह वृत्ति जिस विषयको जनवानेके लिए ज्ञानेन्द्रियोंके साथ वहाँ पहुँचती है, उस विषयमें भी व्यापक है अर्थात् वह एक ही चेतन सबमें व्यापक है; किन्तु उन अन्तःकरण आदि भिन्न भिन्न उपाधियोंके कारण उस एक चेतनके नाम भी भिन्न भिन्न पड़ जाते हैं जैसे :—

(१) **प्रमाता-चेतन :—** शरीरके अन्दर जो आभास-सहित-अन्तःकरण है उससे अवच्छिन्न चेतन अर्थात् जो अन्तःकरण-विशिष्ट-चेतन है, वह **प्रमाता** (ज्ञाता) कहलाता है।

(२) **प्रमाण-चेतन :—** जैसे पानीसे भरी हुई टंकीमेंसे जल, छिद्र-द्वारा बाहर निकलकर, लम्बे नालेका आकार धारण करके बगीचेकी क्यारीमें जाता है और क्यारीमें जाकर उसीके आकारवाला बन जाता है; उसी प्रकार जब चिदाभास-सहित-अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रियोंके साथ नालाकार

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वृत्तिके रूपमें बाहर निकलकर ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तु तक पहुँचता है, तब उस वृत्तिसे अवच्छिन्न चेतनको अर्थात् जितने हिस्सेमें वृत्ति है उतने हिस्सेवाले सामान्य चेतनको **प्रमाण-चेतन** कहते हैं।

(३) **प्रमिति-चेतन** :— जैसे जल, क्यारी तक पहुँच करके, उसे व्याप्त करनेके बाद उस क्यारीके समान आकार को धारण कर लेता है। उसी प्रकार जब वह वृत्तिरूपमें आया हुआ साभास अन्तःकरण अर्थात् आभास-सहित अन्तःकरणका परिमाणरूप आभास-सहित-वृत्ति, ज्ञेय-वस्तु तक पहुँच करके, उसको व्याप्त करनेके बाद, उस ज्ञेय-वस्तुके समान आकारको प्राप्त कर लेती है, (जब वृत्ति उस ज्ञेय वस्तुको विषय करती है, अर्थात् जब उस ज्ञेय-वस्तुका प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है) तब उस ज्ञेय-वस्तुके समान आकार को धारण करनेवाली वृत्तिसे अवच्छिन्न चेतनको अर्थात् उस विषयाकार वृत्तिमें आरूढ चेतनको **प्रमिति-चेतन**, **प्रमा-चेतन** अथवा **यथार्थ-ज्ञान** भी कहते हैं।

(४) **प्रमेय-चेतन** :— ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तुओंसे अवच्छिन्न जो चेतन है, वह **प्रमेय-चेतन** अथवा **विषय-चेतन** कहलाता है।

यद्यपि चेतन-रूप प्रमा तो नित्य है, वह कभी आँख इत्यादि ज्ञान-इन्द्रियोंकी सहायतासे उत्पन्न नहीं हो सकती अर्थात् आँख इत्यादि ज्ञान-इन्द्रियाँ उस चेतन-रूप प्रमाकी करण (असाधारण कारण) नहीं बन सकतीं; किन्तु यहाँ प्रमा शब्दका तात्पर्य शुद्ध-चेतनसे नहीं है, अपितु विषय-आकार-वृत्ति-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अवच्छिन्न-चेतनसे है और वृत्ति ज्ञानेन्द्रियोंके साथ ही विषय तक पहुँचा करती है, अर्थात् वृत्तिकी करण (साधन) ज्ञानेन्द्रियाँ ही हैं। इसलिए विषयाकार-वृत्ति-अवच्छिन्न-चेतन-रूप प्रमाकी करण भी ज्ञान-इन्द्रियाँ मानी जाती हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष-प्रमाकी करण होनेके नाते, **ज्ञान-इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष-प्रमाण कहा जाता है**। ऊपर कहे हुए प्रकारसे कुल छः प्रमाण सिद्ध होते हैं।

हे शिष्य ! ऊपर जो मैंने तुम्हें चेतनके ४ भेद सुनाये, उनमें जो प्रमाता-चेतन बतलाया है उसीको कर्त्ता भोक्ता तथा जीव भी कहते हैं। इस प्रमाताके विषयमें अवच्छेद-वाद और आभास-वादमें कुछ मतभेद (अन्तर) है। अवच्छेद-वादवाले कहते हैं कि अन्तःकरण-विशिष्ट जो चेतन है, अर्थात् जिस चेतनका अन्तःकरण विशेषण है, वह चेतन **प्रमाता** है और वही कर्त्ता भोक्ता है तथा अन्तःकरण-उपहित जो चेतन है अर्थात् जिस चेतनका अन्तःकरण उपाधि है, वह चेतन **साक्षी** है। इसी प्रकार एक ही अन्तःकरण प्रमाताका तो विशेषण है और साक्षीकी उपाधि है।

शंका :— भगवन् ! विशेषण और उपाधिका कृपा करके अर्थ बतलाइये ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जिसका अपने आश्रयके स्वरूपमें प्रवेश हो अर्थात् अपने आश्रयके कार्यसे सम्बन्ध हो और जो दूसरे पदार्थोंसे अपने आश्रयको भिन्न करके बतलाए, उसे **विशेषण** कहते हैं। जैसे :— नीले घड़ेका नीलापन विशेषण है, क्योंकि उस नीलेपनका अपने आश्रय नीले घड़ेमें प्रवेश है,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् उस नीलेपनका नीले घड़ेसे सम्बन्ध है और वह नीला-पन लाल पीले इत्यादि घड़ोंसे नीले घड़ेको भिन्न करके जनवाता है; इसलिए नीलेपनको नीले घड़ेका विशेषण कहते हैं। इसी प्रकार प्रमाताका विशेषण अन्तःकरण है; क्योंकि प्रमाताके स्वरूपमें अन्तःकरणका प्रवेश है, अर्थात् प्रमाताके कार्योंसे (धर्मोंसे) अन्तःकरणका सम्बन्ध है और अन्तःकरण प्रमाताके स्वरूपको प्रमेय-चेतन (विषय-चेतन) से भिन्न करके जनवाता है। इसलिये **अन्तःकरण प्रमाताका विशेषण कहलाता है।**

उपाधि :— जिस वस्तुका अपने आश्रयके स्वरूपमें प्रवेश न हो, अर्थात् जिसका अपने आश्रयके कार्योंसे (धर्मोंसे) कोई सम्बन्ध न हो और जो दूसरे पदार्थोंसे अपने आश्रयको भिन्न करके जनवाए, उसे **उपाधि** कहते हैं। जैसे :— घटाकाशकी उपाधि घड़ा है; क्योंकि उस घड़ेका अपने आश्रय आकाशमें कोई प्रवेश नहीं है, अर्थात् उस घड़ेका अपने आश्रय आकाशके कार्योंसे [किसी पदार्थको अवकाश देना (जगह देना) इत्यादि कार्योंसे] व प्रतिध्वनि (Echo) इत्यादि गुणोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है और वह घड़ा उस घटाकाशको, व्यापक महाकाशसे भिन्न करके भी जनवाता है। इसलिए वह घड़ा घटाकाश की उपाधि है।

इसी प्रकार अन्तःकरण-उपहित-चेतन (साक्षी) की उपाधि अन्तःकरण है। क्योंकि अन्तःकरणका अपने आश्रय (अधिष्ठान) साक्षीके स्वरूपमें कोई प्रवेश नहीं है, अर्थात् अन्तःकरणका अपने आश्रय-रूप साक्षीके धर्मोंसे (नित्य-शुद्ध-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बुद्ध-मुक्त असंग निर्विकार सत् चित् आनंद आदि धर्मोंसे) कोई सम्बन्ध नहीं है और वह अन्तःकरण साक्षीके स्वरूपको प्रमेय-चेतन (विषय-चेतन) से भिन्न करके भी जनवाता है; इसलिए अन्तःकरण साक्षीकी उपाधि कहलाता है।

और आभास-वादवाले कहते हैं कि यद्यपि एक ही अन्तःकरण प्रमाताका विशेषण और साक्षीकी उपाधि है, किन्तु अन्तःकरणको अकेला न मान करके आभास-सहित ही मानना चाहिए। क्योंकि जहाँ अन्तःकरण होगा वहाँ उसमें चेतनका आभास भी अवश्य पड़ेगा। इसलिए यों कहना चाहिये कि आभास-सहित-अन्तःकरण-विशिष्ट-चेतन, अर्थात् साभास-अन्तःकरण जिसका विशेषण है वह चेतन, **प्रमाता** (जीव) है। और आभास-सहित-अन्तःकरण-उपहित-चेतन, अर्थात् साभास-अन्तःकरण जिसकी उपाधि है वह चेतन साक्षी है।

शंका :— भगवन् ! मैं इन दोनों मतोंमेंसे किसको ठीक मानूँ ? अर्थात् अवच्छेद-वादानुसार अन्तःकरण-विशिष्ट-चेतनको जीव, तथा अन्तःकरण-उपहित-चेतनको साक्षी मानूँ? अथवा आभास-वादानुसार साभास-अन्तःकरण-विशिष्ट-चेतन को जीव, तथा साभास-अन्तःकरण-उपहित-चेतनको साक्षी मानूँ ?

उत्तर :— हे शिष्य ! वैसे तो दोनों मतोंमें प्रमाता-चेतन को विशेष्य (अन्तःकरणरूपी विशेषणवाला) मानकर उसमें जन्म-मरण आदि संसार नहीं मानते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि विशेषणके धर्मोंका विशिष्टमें (विशेषण-सहितमें)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भी व्यवहार (प्रतीति और कथन) हुआ करता है। जैसे किसीने डण्डेसे घड़ेको फोड़ दिया। यह देख कर लड़केने अपने पितासे कहा "पिताजी ! अब घड़ा नष्ट हो गया, तो उसमें जो घटाकाश था वह भी नष्ट हो गया होगा" ? तब पिताने कहा "हे पुत्र ! यह नाश हुआ है घड़ेरूपी विशेषणका और तुझे प्रतीत हो रहा है घटाकाशरूपी विशिष्ट (विशेष्य) में, [यहाँ घड़ा विशेषण है और घटाकाश विशिष्ट है]। क्योंकि विशेषणके धर्म विशिष्टमें भी प्रतीत हुआ करते हैं। जैसे हरा रंग है बल्बरूपी विशेषणका और प्रतीत होता है बल्ब-विशिष्ट-प्रकाशमें। इसी प्रकार वास्तवमें जन्म-मरणादि संसार है विशेषणमें (अन्तःकरण अथवा साभास-अन्तःकरणमें) किन्तु भ्रान्तिसे उसका व्यवहार (प्रतीति और कथन) होता है, विशिष्ट-चेतन (प्रमाता) में।

परन्तु दोनों वादोमेंसे आभास-वाद को ही श्रेष्ठ माना जाता है; क्योंकि (१) मन्द-बुद्धिवाले जिज्ञासुओंको वह जल्दी समझमें आ जाता है। इस दृष्टिसे (सरलताकी दृष्टिसे) भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्यजीने भी आभास-वादको ही अंगीकार किया है।

(२) पंचदशीकार श्रीविद्यारण्यस्वामीजीने अवच्छेद-वाद में कुछ दोष भी बतलाए हैं। वे कहते हैं कि जैसे काँच और ढक्कन दोनों यद्यपि मिट्टीसे ही बनते हैं, किन्तु काँच स्वच्छ है इसलिए उसमें तो मुख आदिका आभास (प्रतिबिम्ब) पड़ता है और ढक्कन स्वच्छ नहीं है, इसलिए उसमें किसी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का भी आभास नहीं पड़ता। इसी प्रकार अन्तःकरण सत्त्व-गुणका कार्य होनेसे स्वच्छ है, इसलिए उसमें तो चेतनका आभास पड़ता है। किन्तु स्थूल-शरीर और घटादिक पदार्थ तमोगुणके कार्य होनेसे स्वच्छ नहीं हैं, इसलिए उनमें चेतनका आभास नहीं पड़ता।

अब यदि अवच्छेद-वादानुसार **आभास-रहित**-अन्तःकरण-विशिष्ट-चेतनको प्रमाता मानेंगे तो **आभास-रहित**-घट अथवा स्थूल-शरीरसे विशिष्ट-चेतन भी प्रमाता होना चाहिये। क्योंकि जैसे अन्तःकरण पञ्चभूतोंका कार्य है, वैसे घड़ा अथवा स्थूल-शरीरादिक जड़ पदार्थ भी पाँच भूतोंके ही कार्य हैं। किन्तु घट अथवा स्थूल शरीर इत्यादिसे विशिष्ट-चेतन, प्रमाता (ज्ञाता) नहीं है। यह बात तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसलिए अन्तःकरणको **अवच्छेद-वादानुसार** आभास-रहित न मान करके, **आभास-वादानुसार** आभास-सहित ही मानना चाहिए।

(३) अवच्छेद-वादके अनुसार अन्तःकरणमें चेतनके आभासको नहीं माननेसे यह प्रश्न उठता है कि, जैसे अन्तःकरण भूतोंका कार्य है, वैसे घड़ा, मकान, स्थूल शरीर इत्यादि भी तो भूतोंके कार्य हैं और जैसे सामान्य चेतन अन्तःकरणमें व्यापक है, वैसे सर्वव्यापक होनेके नाते वह घड़े, मकान, स्थूल शरीर इत्यादिमें भी व्यापक है। तो फिर जहाँ अन्तःकरण है, उसे चेतन कहते हैं (जैसे चलते फिरते मनुष्यको) और जहाँ अन्तःकरण नहीं है, उसे जड़ कहते हैं (जैसे घड़े, मकान, मुर्दे इत्यादिको) सो क्यों ? इस प्रश्नका उत्तर तो केवल आभास-वाद ही दे सकता

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है कि जहाँ अन्तःकरण है, वहाँ सामान्य-चेतनके साथ साथ उसमें चेतनके आभासके पड़नेसे अनिर्वचनीय (मिथ्या) विशेष-चेतना भी उत्पन्न होती है। और जहाँ अन्तःकरण नहीं है, वहाँ चेतनके आभासके न पड़नेके कारण केवल सामान्य-चेतन तो है, किन्तु विशेष-चेतना उत्पन्न नहीं होती।

इसलिए जहाँ, अन्तःकरणके होनेसे उसमें आभासके कारण विशेष-चेतना उत्पन्न होती है, उसे लोकमें **चेतन** कहते हैं और जहाँ अन्तःकरण न होनेके कारण आभास के अभावसे विशेष-चेतना उत्पन्न नहीं होती, उसे **जड़** कहते हैं। इसलिए आभास-सहित-अन्तःकरण-**विशिष्ट**-चेतन **प्रमाता** (जीव) है और आभास-सहित-अन्तःकरण-**उपहित**-चेतन **साक्षी** है; यह जो आभास-वाद है वही श्रेष्ठ माना जाता है।

हे शिष्य ! जैसे तुमने आभास-वादानुसार अन्तःकरण को आभास-सहित सुना, इसी प्रकार जो अन्तःकरणकी वृत्ति ज्ञेय वस्तु तक पहुँचती है, वह भी आभास-सहित ही होती है। उस आभास-सहित वृत्तिसे विशिष्ट-चेतनको **प्रमाण-चेतन** कहते हैं। वह साभास-वृत्ति जब ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तुके आकारको धारण कर लेती है, तब उस ज्ञेय वस्तु के आकारवाली आभास-सहित-वृत्तिसे विशिष्ट-चेतनको **प्रमा-चेतन, प्रमिति-चेतन** अथवा **यथार्थ-ज्ञान** भी कहते हैं।

किन्तु यह जो मैंने तुझे प्रमा-चेतन अर्थात् यथार्थ-ज्ञानका प्रकार बतलाया है, वह बाहरके पदार्थोंके प्रत्यक्षके बारेमें ही है। क्योंकि जब बाहरके पदार्थोंका ज्ञान करना होता है, तभी वृत्ति ज्ञानेन्द्रियोंके साथ बाहर निकला करती

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। किन्तु जब शरीरके अन्दर ब्रह्म-स्वरूप आत्माका प्रत्यक्ष करना होता है, तव अन्तःकरणकी वृत्ति बाहर नहीं निकलती, अपितु शरीरके अन्दर ही वृत्ति आत्माकार हुआ करती है। अर्थात् उस समय वह वृत्ति आत्माके आश्रित अज्ञान को ही केवल दूर करती है और आत्मा स्वयम्प्रकाश होनेके कारण अनावृत होनेपर अपने आप प्रकाशमान होता है। अर्थात् जैसे जड़ वस्तुओंके ज्ञानमें पहिले वृत्ति अज्ञानको नष्ट करती है, फिर वृत्तिमें आया हुआ चिदाभास उस वस्तुको जनवाता है, वैसे आत्माके ज्ञानमें नहीं होता। वहाँ तो जिस क्षणमें वृत्ति अज्ञानको नष्ट करती है, उसी क्षण आत्माका अपने आप प्रकाश होने लग जाता है, अर्थात् उसे प्रकाशित करने (जनवाने) के लिए चिदाभास की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि आत्मा स्वयं-प्रकाश है। इसी दृष्टिसे शास्त्रमें कहा है कि आत्म-ज्ञानमें वृत्ति-व्याप्ति तो होती है, अर्थात् वृत्ति अज्ञानको नष्ट तो करती है, किन्तु फल-व्याप्ति नहीं होती अर्थात् जैसे दर्पणमें आया हुआ सूर्यका आभास सूर्यको प्रकाशित नहीं करता उसी प्रकार वृत्तिमें आया हुआ चिदाभास आत्माको प्रकाशित नहीं करता।

हे शिष्य ! ब्रह्मस्वरूप साक्षी (आत्मा) का, स्वयं-प्रकाश-रूपसे भान (प्रत्यक्ष) किस प्रकार होता है, यह तो अब तुम्हारी समझमें आगया होगा।

शंका :— भगवन् ! आपने तो यह कहा कि ब्रह्मरूप आत्माके प्रत्यक्ष-दर्शनके लिए वृत्ति इन्द्रियों द्वारा बाहर नहीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निकलती किन्तु जब अन्तर्मुख हो कर अज्ञानको तोड़ करके ब्रह्मको निरावरण कर लेती है, तब उसी स्वयं-प्रकाश ब्रह्मका स्वयं (अपने आप) ही भान होता है।

परन्तु पुराणोंमें तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजी इत्यादि अवतारोंका ब्रह्मरूपसे वर्णन आया है और जब राम-कृष्ण-आदिकोंके शरीर ब्रह्मरूप थे, तो उनके दर्शनके लिये आँख इत्यादि इन्द्रियोंकी सहायता मानना आवश्यक है, फिर आप कैसे कहते हैं कि ब्रह्म-दर्शनके लिए वृत्तिके अन्तर्मुख होनेकी आवश्यकता है, न कि इन्द्रियोंकी ?

उत्तर :— हे शिष्य ! पुराणोंमें जो रामकृष्णादिकोंका ब्रह्मरूपसे वर्णन आया है, वह उनके शरीरोंकी दृष्टिसे नहीं किन्तु उनके असली स्वरूप (अधिष्ठान) शुद्ध-चेतनकी दृष्टिसे ही आया है।

शंका :— भगवन् ! यों तो सभीका असली स्वरूप (अधिष्ठान) शुद्ध चेतन ब्रह्म है अर्थात् अधिष्ठानकी दृष्टिसे तो सारा संसार [मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी] ब्रह्म-स्वरूप है, फिर रामकृष्णादिकोंमें और हम साधारण प्राणियोंमें अन्तर ही क्या हुआ ? यदि कोई अन्तर नहीं है तो पुराणोंमें जैसे रामकृष्णादिकोंका ब्रह्मरूपसे वर्णन आया है, वैसे उनके साथ रहनेवाले और प्राणियोंका भी ब्रह्मरूपसे वर्णन क्यों नहीं आया ? इसलिए यह मानना चाहिये कि रामकृष्णादिकोंके शरीर ही ब्रह्मरूप थे।

उत्तर :— हे शिष्य ! ब्रह्मका तो कभी अन्त होता ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। वेदने भी कहा है "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्म सत् है, ज्ञान-स्वरूप है और अनन्त है अर्थात् उसका कभी अन्त ही नहीं होता। इसलिये रामकृष्णादिकोंके शरीर ही यदि ब्रह्म होते तो उनका कभी अन्त नहीं होता। और—

"भिद्यते हृदय-ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व-संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥"

(मु०उ०२।२।८)

यह श्रुति भी कहती है:—"उस परावर ब्रह्मका साक्षात्कार करलेनेपर, इस ब्रह्म-ज्ञानीके हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे संशय कट जाते हैं, तथा समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं।"

इस वेदके कथनानुसार, ब्रह्मके दर्शनके बाद तो सभी संशय नष्ट हो जाते हैं और कृष्णादिकोंके शरीर ही यदि ब्रह्म होते, तो अर्जुनादिकोंको उनके दर्शनके बाद, संशय न रहते। और सभी लोग उनके शरीरोंके देखने मात्रसे ही ब्रह्म-ज्ञानी बन जाते, फिर गीता इत्यादि सुनानेकी कोई आवश्यकता ही न थी। किन्तु भगवान्ने गीता इत्यादिका उपदेश, ब्रह्म-ज्ञान करवानेके लिए अर्जुनको अपने श्रीमुखसे ही किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि रामकृष्णादिकोंके शरीर ब्रह्मरूप नहीं थे।

शंका:— भगवन्! वेदान्त-मतमें तो **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** अर्थात् यह सब (सारा संसार) ब्रह्मरूप है। यदि सारा संसार ब्रह्मरूप है तो फिर रामकृष्णादिकोंके शरीर ब्रह्म-रूप कैसे नहीं हैं?

उत्तर:— हे शिष्य! वेदान्तने जो सारे संसारको

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्म-रूप कहा है वह नाम-रूपका बाध करके अर्थात् नाम-रूपको मिथ्या सिद्ध करके और अधिष्ठान शुद्ध चेतनको लक्ष्य करके ही कहा है।

जैसे किसी सर्राफ़के पास यदि शुद्ध सोनेका बना हुआ चूहा और ताँबे मिश्रित सोनेका बना हुआ गणेश लेजाकर यह पूछा जाय कि इन दोनोंमें किसका मूल्य अधिक है? तो वह सर्राफ़ चूहेका ही मूल्य अधिक बताएगा। यदि उससे पूछा जाय कि गणेशको आपने चूहेसे कम कैसे बताया? तो वह उत्तर देगा "मूल्य बतलाते समय मेरी दृष्टि गणेश और चूहेपर नहीं थी, किन्तु केवल सोनेपर ही थी अर्थात् उस समय मैं गणेश और चूहेके नाम-रूपोंका बाध करके केवल उनके अधिष्ठान सोनेको ही देख रहा था।" इसी प्रकार वेदान्ती (ब्रह्म-ज्ञानी) भी जब यह कहता है "यह सारा संसार ब्रह्म है" तब यह समझना चाहिये कि वह संसारके नामरूपको बाधकर व संसारके अधिष्ठान शुद्ध चेतन ब्रह्मको लक्ष्य करके ही कह रहा है।

इस प्रकार हे शिष्य! यदि तुम राम-कृष्णादिकोंके शरीरोंका बाध करके, फिर ब्रह्म कहोगे तो भी ठीक नहीं; क्योंकि यों तो सभी शरीर नामरूपका बाध करके ब्रह्म कहला सकते हैं। यदि बिना बाध किये ही राम-कृष्णादिकोंके शरीरोंको ब्रह्म कहोगे तो भी ठीक नहीं है; क्योंकि दूसरोंके शरीरोंकी तरह हाथ पाँव आदि अवयवों वाले, रूपवाले, व क्रियावाले शरीरका निरवयव, नीरूप,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अक्रिय ब्रह्मसे अभेद नहीं बन सकता ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि राम-कृष्णादिक अवतारोंके शरीर ब्रह्म-रूप नहीं होते किन्तु मायिक ही (मायासे रचे हुए ही) होते हैं। और पुराणोंमें जहाँ राम-कृष्णादिकों की ब्रह्म-रूपताका वर्णन आया है, वहाँ शरीरका तो नाम ही नहीं है। इसलिए यह समझना चाहिये कि पुराणोंका अभिप्राय राम-कृष्णादिकोंकें असली स्वरूपको ब्रह्म बतलानेमें है, न कि उनके शरीरोंको ।

शंका :— प्रभो ! आपकी कृपासे यह तो समझमें आगया कि राम-कृष्णादिकोंके शरीर ब्रह्म नहीं थे। किन्तु वह शंका तो मेरी रह ही गई कि जैसे कृष्णादिकोंके शरीर ब्रह्म-रूप नहीं थे, वैसे उनके साथ रहनेवालोंके भी शरीर ब्रह्म-रूप नहीं थे, फिर पुराणोंने ऐसी क्या विशेषता देखी कि जो कृष्णादिकों का तो ब्रह्म शब्दसे वर्णन किया और दूसरोंका ब्रह्म शब्दसे वर्णन नहीं किया ?

उत्तर :— हे शिष्य ! राम-कृष्णादिकोंके शरीर तो अवतारी-शरीर थे और दूसरोंके अवतारी-शरीर नहीं थे। इसी विशेषताको लक्ष्य करके ही, पुराणोंने राम-कृष्णादिकोंका ब्रह्म-शब्दसे कीर्तन किया है ।

शंका :— भगवन् ! अवतारी-शरीरमें और साधारण प्राणियोंके शरीरोंमें कोई भेद तो दीखता ही नहीं है, फिर हम कैसे समझें कि कृष्णादिकोंके शरीर तो अवतारी थे और अर्जुनादिकोंके शरीर अवतारी नहीं थे ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह तो कोई नियम नहीं है कि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जहाँ तुम्हें कोई भेद नहीं दीखता है वहाँ भेद है ही नहीं; क्योंकि ऐसे भी कई स्थल होते हैं, जहाँ भेद होता हुआ भी नहीं दीखता। जैसे हम ऊंचे मकानके ऊपर हरे रंगका बड़ा हज़ार वॉट्स (Wotts) का गोल बल्ब जलता हुआ देखते हैं, तो वह हमें चन्द्रमाकी तरह चमकता हुआ नज़र आता है। दिखनेमें तो वह गोल, हरा बल्ब और चन्द्रमा दोनों एक जैसे और एक जितने ही होते हैं, किन्तु वास्तवमें उन दोनों में महान् अन्तर है। ठीक इसी प्रकार अवतारी पुरुषोंके शरीर व साधारण पुरुषोंके शरीर दिखनेमें तो एक जैसे ही हैं, किन्तु वास्तवमें उनमें महान् भेद है।

शंका :— भगवन् ! अवतारी शरीरोंमें और साधारण शरीरोंमें क्या भेद है यह कृपा करके बतलाइये ?

उत्तर :— हे अनघ ! उनमें प्रधानतया तीन प्रकारका भेद है। (१) जीवोंके शरीर अपने पूर्व-जन्मोंमें किये हुए पुण्य-पाप कर्मोंके (प्रारब्ध-कर्मोंके) फल हैं (२) वे पाँच भूतोंके कार्य हैं और (३) जीवोंको शरीर-स्त्री-पुत्रादिक अनात्म-पदार्थोंमें अज्ञानके कारण, अहं-मम-अध्यास अर्थात् मैं और मेरे-पनकी भ्राँति रहती है और वह भ्राँति गुरुके उपदेशसे आत्म-ज्ञान होनेके बाद ही नष्ट होती है।

किन्तु राम-कृष्णादिकोंके शरीर अपने (पूर्व जन्मोंमें किए हुए) कर्मोंके फल नहीं हैं; क्योंकि उनका पूर्व-जन्म तो शास्त्र कहता ही नहीं है। जब उनका पूर्व-जन्म था ही नहीं, तो फिर उन्होंने कब कर्म किये जिन कर्मोंके फलस्वरूप उनके शरीर माने जाएँ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका :— भगवन् ! यदि राम-कृष्णादिकोंके शरीर उनके अपने कर्मोंके फल नहीं हैं, तो फिर उन शरीरोंकी उत्पत्ति कैसे हुई। क्योंकि हम देखते हैं कि बिना किसी कारणके कोई कार्य बनता ही नहीं है तो फिर उनके शरीरोंको उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? क्योंकि वेदान्तका यह सिद्धान्त है कि ज्ञानियोंके कर्म नष्ट हो जाते हैं, इसलिए उन्हें आगे शरीर नहीं मिलता, उनके प्राण यहीं लीन हो जाते हैं, अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। तो भगवन् ! इस सिद्धान्तसे यह समझमें आता है कि शरीर बिना कर्मोंके नहीं मिलता, अर्थात् सब शरीर कर्मोंके ही फल हैं। ऐसी दशामें यदि राम-कृष्णादिकों के शरीर अपने कर्मोंके फल नहीं हैं, तो फिर किन कर्मोंके फल हैं, यह कृपा करके बतलाइये।

उत्तर:— हे शिष्य ! कर्म-विज्ञान हमें यह बतलाता है कि सुख पुण्य-कर्मोंका फल और दुःख पाप-कर्मोंका फल है। बिना पुण्य-पापके किसीको, कभी सुख दुःख नहीं मिल सकते। और हम देखते हैं कि अवतारोंके शरीरोंसे साधु पुरुषोंको (सत् पुरुषोंको) तो सुख मिलता है और दुष्टोंको दुःख मिलता है। जो शरीर जिनके सुख-दुःखका हेतु होता है, वह शरीर उनके पुण्य-पापसे बना हुआ माना जाता है। इसलिए :—

(१) अवतारोंके शरीर साधु-पुरुषोंके (सज्जनोंके) सुखके हेतु होनेके कारण, उन साधु-पुरुषोंके पुण्य कर्मोंके फल हैं। और

(२) असुरादिक असाधु-पुरुषोंके (दुष्टोंके) दुःखके हेतु

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होनेके कारण, उन दुष्ट पुरुषोंके पाप कर्मोंके फल हैं अर्थात् राम-कृष्णादिकोंके शरीर अपने पुण्य-पाप कर्मोंके फल नहीं हैं; क्योंकि उनको कभी अपने शरीरसे स्वयंको सुख दुःखका भोग नहीं माना जाता। इससे यह सिद्ध हुआ कि साधु-असाधु पुरुषोंके सुख-दुःखके हेतु होनेके कारण अवतारी शरीर उन साधु-असाधु पुरुषोंके पुण्य-पाप कर्मोंके ही फल हैं।

शंका :— भगवन् ! यह तो समझमें आगया कि अवतारोंके शरीरोंसे सज्जनोंको सुख और दुष्टोंको दुःख मिलता है, इसलिए वे उनके पुण्य-पाप कर्मोंके ही फल हैं। किन्तु यह जो आपने कहा कि उनको स्वयं सुख-दुःख नहीं मिलता है, इसलिए उनके शरीरोंमें उनके अपने कोई पुण्य-पाप कर्म कारण नहीं पड़ते, यह समझमें नहीं आया; क्योंकि रामायण आदि ग्रन्थोंमें श्रीरामचन्द्र आदि अवतारी पुरुषोंके बनवास आदि दुःखोंका वर्णन आया है। फिर आप कैसे कहते हैं कि अवतारी पुरुषोंको स्वयंको कोई सुख-दुःख नहीं होता ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यदि कोई रामलीलाके नाटकका संचालक, स्वयं श्रीरामचन्द्रजीका अभिनय (ऐक्टिङ्ग) करते समय लक्ष्मणको भाई कहता है, सीताके चुराये जानेपर दुःख प्रकट करता है और रावणको शत्रुकी तरह मारता है, तो इस प्रकार वह राम-वेष-धारी वहाँ खेलमें बनवास जानेपर, सीताके चुराये जानेपर, अथवा रावणको मार करके सीताको लेकर, अयोध्यामें राज-सिंहासनपर बैठना इत्यादि अभिनय करते समय, क्या वास्तवमें सुखी दुःखी होता है ?

शिष्य :— भगवन् ! उस राम-वेष-धारी पुरुषको अभिनय

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करते समय तो सुख-दुःख इसीलिए नहीं होते क्योंकि वह उस सारे रामलीला खेलको केवल अभिनय-मात्र (लीला-मात्र) ही समझता है और उन सीता-लक्ष्मण-आदि अभिनायकोंसे (पार्ट लेनेवालोंसे) वह अपना वास्तविक सम्बन्ध नहीं समझता।

गुरुजी :— हे शिष्य! बस इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र-आदि अवतार भी अपने सभी कार्योंको लीला-मात्र (अभिनय-मात्र) ही समझते हैं। केवल अपनी मर्यादा-द्वारा दूसरोंको मर्यादा सिखानेके लिए ही वे व्यवहार करते हैं, न कि किसीसे अपना वास्तविक सम्बन्ध समझकर। क्योंकि यह नियम है कि जहाँ वास्तविक सम्बन्ध माना जाता है, वहाँ मोह अवश्य उत्पन्न होता है और मोह उत्पन्न होनेसे, दूसरे विकार उत्पन्न होकर पुरुषको अपनी मर्यादासे गिरा देते हैं। किन्तु श्रीरामचन्द्र आदि तो मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलाते हैं; अर्थात् उन्होंने तो हमें मर्यादाका पाठ पढ़ाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उनका किसीमें मोह नहीं था और व्यवहार करते समय किसीसे वास्तविक सम्बन्ध नहीं समझते थे; इसलिए उनको व्यवहार करते समय कोई सुख दुःख नहीं होता था।

यह तो तुमने ऊपर सुना ही था कि अवतारोंके शरीर साधु-असाधु-पुरुषोंके पुण्य-पाप कर्मोंसे ही बनते हैं, इसलिए उनके शरीरोंसे सज्जनोंको सुख और दुष्टोंको दुःख मिलता है। अतः यदि श्रीरामचन्द्रजी बनमें जाना इत्यादि लीला (अभिनय) न करते, तो महात्मा, तपस्वी आदि साधु जनोंको बनमें दर्शन इत्यादिका सुख कैसे मिलता? और जो दुष्ट-जन महात्माओंको दुःख देते थे, उनको दुःख कैसे मिलता

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् वे कैसे मारे जाते ? यदि रावण-द्वारा सीता-हरण आदि लीला (अभिनय) न रचते तो रावण आदि दुष्ट-जनोंका (अपने अभिमानमें आकर दूसरोंको दुःख देनेवालोंका) नाश किस बहाने करते; क्योंकि बिना किसी कारणके किसीको दण्ड देना भी तो मर्यादाके विरुद्ध है।

हे शिष्य ! इससे यह सिद्ध हुआ कि अवतारी पुरुषोंका जितना भी व्यवहार है, वह केवल लीलामात्र (अभिनय-मात्र) ही है और उनके व्यवहारसे उन्हें कोई सुख-दुःख नहीं होता, किन्तु सज्जनोंको सुख और दुष्टोंको दुःख मिलता है। इसलिए उनके शरीर उनके अपने पुण्य-पाप कर्मोंके फल-स्वरूप नहीं हैं किन्तु साधु-पुरुषोंके पुण्य कर्मोंके तथा दुष्ट-पुरुषोंके पाप कर्मोंके ही फल-स्वरूप हैं।

(२) जैसे साधारण पुरुषोंके शरीर पाँच भूतोंके कार्य होते हैं, वैसे रामकृष्णादिकोंके शरीर पाँच भूतोंके कार्य नहीं माने जाते, अर्थात् साधारण पुरुषोंकी तरह अवतारोंके हाड, माँस, रक्त आदि सात धातुओंके बने हुए शरीर नहीं होते, किन्तु चेतनके आश्रित मायाके ही साक्षात् परिणाम (कार्य) होते हैं। क्योंकि यदि पंचीकृत-भूतोंके परिणाम होते, तो कृष्णचन्द्रजीके शरीरको जब माता यशोदा बाँधने लगी तब वे बाँधने में आ जाते, फिर जब अपनेको स्वयं अपनी लीलासे बँधवा लिया, तो फिर बिना छुड़ाये नहीं छूटते। किन्तु श्रीमद्भागवतमें आया है कि वे उस समय दो ऋषियोंको वृक्ष-योनिसे मुक्त करके, फिर अपने आप

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ही बिना छुड़ाये छूट गए। इससे यह सिद्ध होता है कि उनका शरीर पाँच-भौतिक नहीं था, किन्तु मायिक (संकल्प से खड़ा किया हुआ) था। भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है :—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥४-७॥"

अर्थात् जब जब वर्णाश्रम-धर्मावलम्बियोंके अभ्युदय और निःश्रेयस (मोक्ष) के हेतु वैदिक धर्मका ह्रास होता है, तब तब मैं धर्म-रक्षण और अधर्म-विनाशके योग्य शरीर को धारण करता हूँ।

और आगे ८ वें श्लोकमें ऊपर कही हुई बातको पुष्ट करते हुए कहा है :—

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥"

अर्थात् सज्जनोंकी रक्षाके लिए, असज्जन पापियोंके विनाशके लिये और धर्मकी स्थापनाके लिये मैं प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ अर्थात् प्रकट होता हूँ।

आगे (९) श्लोकमें

"जन्म कर्म च मे दिव्य-मेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥"

अर्थात् 'हे अर्जुन! मेरा जन्म (प्रकट होना) और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है। इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जानता है, वह शरीरको त्याग कर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस श्लोकमें भगवान्‌ने अपने जन्मको दिव्य कह कर यह सिद्ध किया है कि उनका शरीर साधारण प्राणियोंकी तरह पाँच-भौतिक नहीं है किन्तु अलौकिक है, अर्थात् मायिक (केवल मायासे खड़ा किया हुआ) है।

इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें अपने श्रीमुखसे पहिले ही चौथे अध्यायके (६) श्लोकमें समझाते हुए भगवान् कहते हैं :—

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म-मायया ॥६॥"

अर्थात् मेरा जन्म प्राकृत (साधारण) मनुष्योंके सदृश नहीं है। मैं अविनाशी स्वरूप, अजन्मा (जन्म-रहित) होते हुए भी तथा समस्त भूत प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी, अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको अपने वशमें करके, **अपनी योग-मायासे** (लीलासे) शरीरधारीकी तरह जन्म लेनेके सदृश प्रकट होता हूँ। अन्य लोगोंकी तरह वास्तव में जन्म नहीं लेता।" इस श्लोकसे तो भगवान्‌ने स्पष्ट कर दिया है कि उनका जन्म लेना अर्थात् शरीर धारण करना, मायिक है वास्तविक (पाँच-भौतिक) नहीं है।

शंका :— भगवन्! तो फिर जो अवतारी पुरुष हैं, उनके शरीर मायिक होनेके कारण उनपर भौतिक-पदार्थों का असर भी नहीं होता होगा?

उत्तर :— हाँ! उनके शरीरोंपर भौतिक पदार्थोंका असर नहीं होता है। जैसे रज्जु-बन्धन तथा कंस-द्वारा भेजी हुई दूतीके स्तन-पान करते समय उनपर विषका असर नहीं हुआ था। जैसे युद्धमें अर्जुनका जो मायिक रथ था,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उसको पहिले कई अग्नि-बाण इत्यादि लगे किन्तु नहीं जला और युद्ध समाप्त होते ही संकल्प समाप्त होनेपर अपने आप ही जल गया, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अथवा श्रीकृष्णचन्द्रजीको युद्धमें कभी कोई घाव इत्यादि नहीं हुए और फिर संकल्प पूरे होनेपर श्रीकृष्णजीने एक बाणकी लीला-मात्रसे ही शरीरको छोड़ दिया। इत्यादि कई उदाहरणों से सिद्ध होता है कि उनका शरीर भौतिक नहीं था, किन्तु मायिक (संकल्प-मात्र) ही था।

जैसे सृष्टिके आदिमें जब प्राणियोंके कर्म अपना भोग देनेके लिये सम्मुख होते हैं, तब माया-विशिष्ट-चेतन आप्तकाम ईश्वरमें भी प्राणियोंके कर्मोंके अनुसार "मैं जगत्की उत्पत्ति करूँ" ऐसा संकल्प होता है। इस संकल्पसे जगत्की सृष्टि (उत्पत्ति) होती है। वैसे सृष्टिके बाद भी "मैं जगत्का पालन करूँ" अर्थात् सबको अपने अपने कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख मिले, ऐसा ईश्वरका संकल्प होता है। उस पालन-संकल्पके बीचमें, उपासक पुरुषोंकी उपासनाके बलसे ईश्वरको ऐसा संकल्प होता है कि "रामकृष्णादिक नाम-सहित मूर्ति सबको प्रतीत हो" उस ईश्वरीय संकल्पसे विशेष नाम-रूप-रहित ईश्वरमें रामकृष्णादिक नाम-सहित पीताम्बरधर श्यामसुन्दर आदि विग्रहरूपकी उत्पत्ति होती है। वह विग्रह केवल माया-मात्र (संकल्प-मात्र) ही होता है। उस विग्रह (मूर्ति) का दर्शन वास्तवमें मायाका ही दर्शन है। मोक्ष-धर्ममें भी कहा है :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

**"माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ।
सर्व-भूत-गुणैर्युक्तं न तु मां द्रष्टुमर्हसि ॥"**

अर्थात् हे नारद ! सब भूत-गुणोंसे युक्त जिस मुझको तुम देखते हो, यह तो मेरी रची हुई माया है; मुझे तो तुम इन चर्म-चक्षुओंसे देख ही नहीं सकते। अर्थात् जो मैं तुम्हें शरीर-रूपसे दिख रहा हूँ, यह मेरा दर्शन नहीं किन्तु मेरी मायाका ही दर्शन है।" इससे भी भगवान्‌ने अपने अवतारी शरीरको **मायिक शरीर** ही सिद्ध किया है।

तथा अध्यात्म-रामायणके बालकाण्डके प्रथम सर्गमें शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं :—

**"अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् ।
सीता-राम-मरुत्सूनु-संवादं मोक्ष-साधनम् ॥२५॥**

अर्थः— हे पार्वति ! इस विषयमें मैं तुम्हें सीता, राम और हनुमान्‌जीका मोक्षका साधनरूप संवाद सुनाता हूँ जो अत्यन्त गोपनीय और परम दुर्लभ है ॥२५॥ पूर्वकालमें रामावतारके समय जब श्रीरामचन्द्रजी देवताओंके कण्टकरूप रावणको सन्तान, सेना और वाहनों के सहित युद्धमें मारकर सीता, सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित हनुमान् आदि वानरोंसे घिरे हुए अयोध्यापुरीमें आए ॥२६-२७॥ और वहाँ आकर राज्याभिषेक होनेपर वशिष्ठ आदि महात्माओंसे घिरकर करोड़ों सूर्योंकी प्रभा धारणकर जब सिंहासनपर विराजमान हुए ॥२८॥ उस समय जो सेवाके समस्त कार्य कर चुका है और उनका कोई बदला नहीं चाहता है ऐसे भोगेच्छा-रहित महामति हनुमान्‌जीको

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ज्ञानाभिलाषासे अपने सम्मुख हाथ जोड़े खड़े देखकर श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीसे ऐसा कहा—"सीते! यह हनुमान् हम दोनोंमें अत्यन्त भक्ति रखता है और निष्पाप है, अत एव ज्ञानका सुयोग्य पात्र है। अतः तुम इसे मेरे तत्त्वका उपदेश करो" ॥२९-३०॥ तब लोक-विमोहिनी जनक-नन्दिनी सीताजी श्रीरामचन्द्रजीसे 'बहुत अच्छा' कहकर शरणागत हनुमान्‌को भगवान् रामका निश्चित तत्त्व बताने लगीं ॥३१॥

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्द-मद्वयम् ।
सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं सत्ता-मात्र-मगोचरम् ॥३२॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
सर्व-व्यापिन-मात्मानं स्वप्रकाश-मकल्मषम् ॥३३॥

सीताजीने कहा—"वत्स हनुमन्! तुम रामको अद्वितीय सच्चिदानंदघन परब्रह्म समझो; ये निःसंदेह समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, स्वयंप्रकाश और पापहीन सर्वव्यापक आत्मस्वरूप हैं ॥३२-३३॥

मां विद्धि मूल-प्रकृतिं सर्ग-स्थित्यन्त-कारिणीम् ।
तस्य सन्निधि-मात्रेण सृजामीद-मतन्द्रिता ॥३४॥

और मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करने-वाली मूल-प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर उनकी सन्निधि-मात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ ॥३४॥

तत्-सान्निध्यान्-मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः ।
अयोध्या-नगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले ॥३५॥

इनकी सन्निधि-मात्रसे की हुई मेरी रचनाको बुद्धि-हीन

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लोग इनमें (ब्रह्मस्वरूप राममें) आरोपित कर लेते हैं। अत एव, अयोध्यापुरीमें अत्यन्त पवित्र रघुकुलमें इनका जन्म लेना ॥३५॥ फिर विश्वामित्रजीकी सहायता करना, उनके यज्ञकी रक्षा करना, अहल्याको शापमुक्त करना, श्रीमहादेवजीके धनुषको तोड़ना ॥३६॥ तत्पश्चात् मेरा पाणि-ग्रहण करना, परशुरामजीका गर्व-खण्डन करना तथा बारह वर्षतक मेरे साथ अयोध्यापुरीमें रहना ॥३७॥ फिर दण्डकारण्यमें जाना, विराधका वध करना, माया-मृगरूप मारीचका मारा जाना, मायामयी सीताका हरा जाना ॥३८॥ तदनन्तर जटायु और कबन्धका मुक्त होना, शबरी-द्वारा भगवान्‌का पूजित होना और सुग्रीवसे मित्रता होना ॥३९॥ फिर बालिका वध करना, सीताजीकी खोज करना, समुद्रका पुल बँधवाना और लङ्कापुरीको घेर लेना ॥४०॥ तथा पुत्रोंके सहित दुरात्मा रावणको युद्धमें मारना एवं विभीषणको लङ्काका राज्य देकर पुष्पक-विमान-द्वारा मेरे साथ अयोध्या लौट आना, फिर श्रीरामजीका राज्यपदपर अभिषिक्त होना ॥४१॥

एवमादीनि कर्माणि मयैवाऽऽचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥४२॥

इस प्रकारके समस्त कर्म यद्यपि मेरे (माया-द्वारा) ही किए हुए हैं तो भी अज्ञानी लोग उन्हें इन निर्विकार सर्वात्मा परब्रह्म राममें आरोपित करते हैं ॥४२॥

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकांक्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित्।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आनन्द-मूर्ति-रचलः परिणाम-हीनो
माया-गुणाननुगतो हि तथा विभाति ॥४३॥

ये (अधिष्ठानरूप) राम तो [वास्तवमें] न चलते हैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिवर्तनसे रहित हैं, केवल मायाके गुणोंमें व्याप्त होनेके कारण ही ये वैसे (नामरूपादिक प्रपञ्चके रूपमें) भासते हैं अर्थात् ये (ब्रह्मरूप राम) स्वरूपतः निर्विकार व निराकार होते हुए भी जिन जिन मायाके गुणोंमें विशेषरूपसे प्रवेश करते हैं अर्थात् वे सामान्य-चेतन जब जिन जिन मायाके गुणोंसे मिल कर विशेष-चेतनरूपसे प्रकट होते हैं तब उस उस रूपसे भासते हैं अर्थात् प्रतीत होते हैं ॥४३॥"

माता सीताजीके इस कथनसे भी सिद्ध होता है कि जो रामकृष्णादिक अवतारी पुरुषोंके शरीर दीखते हैं, वे सब मायिक हैं अर्थात् माया-मात्र हैं तथा साधारण प्राणियोंकी तरह पाँचभौतिक नहीं हैं।

भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्यजीने भी गीता-भाष्यमें लिखा है :—"जीवोंपर अनुग्रह करके, शरीर-धारीकी तरह मायाके बलसे, परमात्मा कृष्णरूपमें प्रतीत होते हैं। वे जन्मादिक-रहित हैं। उनका वसुदेव-द्वारा देवकीसे जन्म भी मायासे ही प्रतीत होता है।" इस प्रकार श्रीभाष्यकारने भी कृष्ण-शरीरको मायाका कार्य कहा है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि पाँच भूतोंसे अवतारोंके शरीरों की उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु उनके शरीरोंका उपादान-करण

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

साक्षात् माया है।

(३) जैसे जीवोंको शरीरादिक अनात्म-पदार्थोंमें 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं यज्ञदत्त हूँ' इस प्रकार आत्म-भ्राँति होती है, वैसे रामकृष्णादिक अवतारोंको नहीं होती। क्योंकि जीवोंकी उपाधि जो अविद्या है, वह मलिन-सत्त्व-गुणवाली है, और रामकृष्णादिक अवतारोंकी उपाधि जो माया है वह **शुद्ध-सत्त्व-गुणवाली** है। इसलिए जीवोंको अविद्या (अज्ञान) के कारण भ्रांति और रामकृष्णादिकोंको मायाके कारण सर्वज्ञता होती है।

और जैसे जीवोंको अज्ञानसे उत्पन्न हुए आवरणको (ब्रह्मका न तो भान होता है और न वह है ही, इस अज्ञानके पर्देको) और शरीर-स्त्री-पुत्रादिकोंमें 'मैं और मेरेपन' की भ्रान्तिको नष्ट करनेके लिए, गुरुसे महावाक्यके उपदेश-द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता है, वैसे रामकृष्णादिकोंको आवरण और भ्राँतिको नष्ट करनेके लिए गुरु-द्वारा महावाक्यके उपदेशसे जन्य ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उनको अज्ञान न होनेके कारण आवरण और भ्राँति ही नहीं होती, जिनको नष्ट करनेके लिए ज्ञानकी आवश्यकता पड़े। उन्हें तो शुद्ध-सत्त्वगुणवाली **मायाकी वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान**, उपदेशादिकके बिना स्वतः ही सिद्ध होता है।

और जो श्रीरामचन्द्रजीने श्रीवशिष्ठजीको तथा श्रीकृष्णजीने श्रीसंदीपनजीको गुरु माना है, वह केवल लोक मर्यादाको सिखानेके लिए ही; क्योंकि भगवान्ने स्वयं गीतामें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कहा है :—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्-तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥३-२१॥"

अर्थात् "श्रेष्ठ पुरुष जो जो कर्म करता है, दूसरे लोग उसके अनुयायी होकर उस उस कर्मके अनुसार ही आचारण किया करते हैं। तथा वह श्रेष्ठ पुरुष जिस जिस लौकिक अथवा वैदिक प्रथाको प्रामाणिक मानता है, लोग उसीके अनुसार ही चलते हैं अर्थात् उसीको प्रमाण मानते हैं। और आगे यह भी कहा है :—

"न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नाऽनवाप्त-मवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥३-२२॥"

अर्थात् "हे पार्थ ! तीनों लोकोंमें मेरे लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं है, अर्थात् मुझे कुछ भी करना नहीं है; क्योंकि मुझे कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है तो भी दूसरोंको शिक्षा देनेके लिए मैं कर्म करता ही रहता हूं।"

भगवान्‌के इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि उन अवतारी पुरुषोंको ज्ञान प्राप्त करनेके लिए गुरु आदिकी आवश्यकता नहीं होते हुए भी दूसरोंको मर्यादा सिखानेके लिए उन्होंने गुरु आदि किये।

इस प्रकार हे शिष्य ! ये जो मैंने तुम्हें साधारण प्राणियोंके शरीरोंसे अवतारी शरीरोंमें प्रधानतया तीन प्रकारकी विशेषताएँ बताई हैं, ये सब पूर्णरूपसे पूर्ण-अवतारी शरीरोंमें ही समझना।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका :— भगवन् ! क्या अवतार भी कई प्रकारके होते हैं, जो आप पूर्ण अवतारका नाम ले रहे हैं। यदि अवतार कई प्रकारके होते हैं, तो कृपा करके अवतार शब्दका अर्थ और अवतारोंके भेद बताएँ।

उत्तर :— हे शिष्य ! अवतार शब्दका अर्थ है अवतरण होना अर्थात् किन्हीं विशेष कलाओंके साथ प्रकट होना।

शंका :— हे दयालो ! यों तो सभी प्राणियोंमें कोई न कोई विशेष कला होती है। हम देखते हैं कि पशु पक्षियों में भी जन्मसे ही तैरना और उड़ना आदि कलाएँ मौजूद हैं। तथा आजकलके वैज्ञानिक लोग ऐसे ऐसे आश्चर्य-जनक कार्य करके दिखाते हैं, जो साधारण लोग नहीं कर सकते; तो क्या हम उन्हें भी अवतार मानें ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यद्यपि उनमें विशेष कलाएं मानीं जाती हैं, तथापि जिनमें आठ कलाओंके अन्दर अन्दर कलाओंका विकास होता है, उन्हें साधारण प्राणी कहते हैं और जिनमें नवसे लेकर सोलह कलाओं तकका विकास होता है उन्हें अवतार कहते हैं।

अवतार शब्द, **अव** और **तार** इन दो शब्दोंसे मिलकर बना है। अवति=रक्षति इति अवः। आर्थात् जो सुखोंकी और सुखोंके कारण सनातन धर्मकी रक्षा करता है, वह है अव। तारयति=संसार-सागरात् पारं तारयति इति तारः। अर्थात् जो दुःखोंसे तथा दुःखोंके कारण अधर्मसे छुड़ाकर (अधर्म को बढ़ानेवाले दुष्टोंका नाश करके) संसार सागरसे जिज्ञासुओंको तारता है (संसार सागरसे पारकर देता है)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वह है तार।

उपर्युक्त प्रकारकी विशेष-शक्ति (कला) तो ईश्वरीय अवतारोंमें ही होती है, इसलिए उनको ही अवतार कहते हैं।

हे शिष्य ! वे अवतार प्रधानतया दो प्रकारके होते हैं। (१) **नित्य-अवतार** (२) **नैमित्तिक-अवतार**।

नित्य-अवतार :— नित्य अर्थात् सदा ही जिन ईश्वरीय शक्तियोंका अवतरण (प्रकट होना) होता रहता है, उन्हें नित्य-अवतार कहते हैं। वे नित्य-अवतार फिर तीन प्रकारके हैं। (१) प्रेरक-अवतार (२) आवेशक-अवतार (३) उपदेशक-अवतार।

(१) **प्रेरक-अवतार** :— जो ईश्वरीय-विशेष-शक्ति अलक्षित-रूप (अज्ञातरूप) से सदा हृदयमें शुभ कार्य करनेकी तथा अशुभसे रोकनेकी प्रेरणा करती रहती है, उसे प्रेरक-अवतार कहते हैं। जिसे **आत्म-पुराण** आदि शास्त्रोंमें **विवेक** नामसे कहा गया है। क्योंकि विवेक सदा हमें शुभ कार्यों में लगानेके लिये और अशुभ कार्य करते समय अन्दरसे रोकनेके लिए, अव्यक्तरूपसे प्रेरणा करता रहता है। इसलिए उस विवेकरूपसे प्रकट हुई एक प्रकारकी ईश्वरीय-शक्तिको **प्रेरक-नित्य-अवतार** कहते हैं।

(२) **आवेशक-अवतार** :— जो ईश्वरीय-विशेष-शक्ति किसी समय स्थूल शरीरमें आवेश (प्रवेश) करके ऊँची तथा शुभ बातोंका उपदेश करती है, उसे आवेशक-अवतार कहते हैं। जैसे यजुर्वेदके बृहदारण्यक उपनिषद्में लिखा है कि श्रीपतञ्जलि ऋषिकी कन्यामें दिव्य गंधर्वने आवेश

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(प्रवेश) करके सूत्रात्माका वास्तविक स्वरूप बतलाया था। और जैसे ब्रह्माजीके वाहन (सवारी) रूप हँसमें उस विशेष शक्तिने आवेश करके सनकादिकोंको उपदेश दिया था। इसी प्रकार लोकमें भी कभी-कभी देखा जाता है कि किसी की बुद्धि कम होते हुए भी किसी विशेष अनुष्ठानके कारण सरस्वती इत्यादिरूपसे जब उसमें वह ईश्वरीय-दिव्य-शक्ति प्रवेश करती है, तब वह पुरुष गुप्त तथा अलौकिक बातें लोगोंको बताने लग जाता है। इसलिए इस प्रकारकी विशेष-शक्तिको **आवेशक-नित्य-अवतार** कहते हैं।

उपदेशक-अवतार :— जो सन्त महात्मा व ऋषि-जन आचार्यरूपसे सत्य मार्गका उपदेश करके तथा स्वयं धर्मपर चलकर, साधारण-जन-समूहको अधर्मसे बचाकर, धर्मपर चलाते हैं, वे उपदेशक-नित्य-अवतार कहलाते हैं। जैसे श्रीस्वामी शंकराचार्य, श्रीवेदव्यास आदि जो सच्चे संत तथा आचार्य हो गये हैं, वे सब **उपदेशक-नित्य-अवतार** हैं।

शंका :— भगवन्! आचार्य भी उन्हीं परमात्माकी विशेष शक्तिके ही अवतरण (अवतार) हैं, इसमें कोई शास्त्रका प्रमाण है क्या ?

उत्तर :— हे शिष्य! शास्त्र कहता है :—

"परिपक्व-मला ये तानुत्सादन-हेतु-शक्ति-पातेन।
योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्य-मूर्तिस्थः ॥"

अर्थात् वे परमात्मा ही स्वयं आचार्यकी मूर्ति धारण करके जिन जिज्ञासुओंके मल पक जाते हैं (कर्म और उपासनासे जिनके पाप कर्म और विक्षेप शिथिल हो जाते

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं) उसके जन्म-मरणके कारणरूप पाप-पुण्य कर्मोंको मूल से (अज्ञान-सहित) नष्ट करनेवाली ज्ञान-शक्तिको, दीक्षा (उपदेश) द्वारा देकर, परतत्त्व ब्रह्ममें मिला देते हैं अर्थात् मुक्त कर देते हैं।

यह शास्त्र इसमें प्रमाण है कि वे परमात्मा ही स्वयं अपनी विशेष-शक्ति-द्वारा आचार्यरूप धारण करके जिज्ञासु-जनोंका कल्याण करते हैं। जब वह ईश्वरीय-विशेष-शक्ति इस प्रकार आचार्य (गुरु) रूपसे प्रकट होती है, तब उसे **उपदेशक-नित्य-अवतार** कहते हैं। इस प्रकार हे शिष्य ! ये तीन प्रकारके **नित्य-अवतार** मैंने तुम्हें बतलाए।

शंका :— भगवन् ! नैमित्तिक अवतार किसे कहते हैं और वे कितने प्रकारके हैं, यह भी कृपा करके बतलाइये।

उत्तर :— हे शिष्य ! जो ईश्वरीय-शक्ति किसी रूपमें किसी निमित्तपर अर्थात् किसी विशेष-कारण-वशात् किसी समय प्रकट होती है, उसे नैमित्तिक अवतार कहते हैं। जैसे कभी कुछ दुष्ट लोग देवताओंके वरदान इत्यादिके कारण इतने प्रबल हो जाते हैं कि वे किसी उपदेश आदि से वशमें नहीं आते, अर्थात् उनकी दुष्टताके साम्राज्यको वे नित्य-अवतार नहीं हटा सकते, तब उनका नाश करनेके निमित्त जो ईश्वरीय-विशेष-शक्ति प्रकट होती है, उसे **नैमित्तिक अवतार** कहते हैं। जैसे हिरण्य-कशिपुके नाशके निमित्त नृसिंह-अवतार हुए, रावणको नष्ट करनेके लिए श्रीराम और कंस इत्यादि दुष्टोंको नष्ट करनेके लिए श्रीकृष्णचन्द्र इत्यादि अवतार हुए, वे सब **नैमित्तिक अवतार** कहलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हे शिष्य ! नैमित्तिक-अवतार भी तीन प्रकारके होते हैं। (१) पूर्ण-अवतार (२) अंश-अवतार (३) कला-अवतार।

(१) **पूर्ण-अवतार** :— जो अवतार सोलह कलाओंसे सम्पूर्ण हो, उसे पूर्णावतार कहते हैं—जैसे श्रीकृष्ण भगवान् हुए हैं।

(२) **अंशावतार** :— जो ईश्वरीय-विशेष-शक्ति आठ कलाओंसे ऊपर और पन्द्रह कलाओंके अन्दर किसी रूपमें प्रकट होती है, उसे **अंश-अवतार** कहते हैं—जैसे ऋषभदेव, धन्वन्तरि, नारद, परशुराम इत्यादि।

कलावतार :— जो ईश्वरीय-विशेष-शक्ति अंशावतारोंकी अपेक्षा कुछ कम स्वरूपमें प्रकट होती है, उसे कला-अवतार कहते हैं। जैसे ऋषि-गण, मनु-गण, देवता-गण, प्रजापति-गण, इत्यादि जो देवताओंके स्वरूपान्तर हैं, उन्हें **कला-अवतार, अंशांशी-अवतार** तथा **अमुख्य-अवतार** भी कहते हैं।

हे शिष्य ! इस प्रकार मुख्यरूपसे मैंने तुम्हें छः प्रकारके अवतार बताए। यों तो शास्त्रोंमें कई प्रकारके अवतार बताए गए हैं। जैसे—लीलावतार, विशेषावतार, अवशेषावतार इत्यादि। पंचोपासनाके अनुसार भी महा-विष्णुके अवतार, महादेवके अवतार, महा-सूर्यके अवतार, महा-शक्ति के अवतार, महा-गणेशके अवतार, इस प्रकार वरुण देवता इत्यादिके, कई प्रकारके अवतार माने जाते हैं। किन्तु हे शिष्य ! इन सबका वर्णन करनेसे विस्तार हो जायगा। तुम्हें तो इतना समझना चाहिये कि, जब वह ईश्वरीय शक्ति उपासकोंकी प्रेरणासे किसी न किसी शरीर इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रूपसे प्रकट होती है, तब उस ईश्वरीय-विशेष-शक्तिके प्रकट होनेको **अवतार** कहते हैं। इसलिए अवतारोंके शरीरों में तथा साधारण प्राणियोंके शरीरोंमें भेद मानते हैं और इसी भेदको लक्ष्य करके ही पुराणोंने अवतारोंका तो ब्रह्म शब्दसे वर्णन किया है व उनके साथ रहनेवाले साधारण प्राणियोंका ब्रह्म शब्दसे वर्णन नहीं किया है। हे शिष्य ! अब तुम्हें समझमें आगया होगा कि ये अवतारोंके शरीर यद्यपि साधारण प्राणियोंके शरीरोंसे विलक्षण हैं अर्थात् भौतिक नहीं किन्तु मायिक (मायाके रचे हुए अर्थात् संकल्प-मात्र) हैं तथापि वे ब्रह्म नहीं हैं।

और वह जो तुमने शंका की थी कि– यदि ब्रह्म आँख इत्यादि इन्द्रियोंसे नहीं दिखता है तो फिर रामकृष्णादिक अवतारोंके शरीर आँख आदि इन्द्रियोंसे कैसे दिखते थे ? वह तुम्हारी शंका हल हो गई। अब तुम्हें यह समझमें आगया कि वह दर्शन ब्रह्म-दर्शन नहीं था केवल रामकृष्णा-दिकोंके मायिक शरीरोंका ही दर्शन था। ब्रह्म-दर्शनके लिए तो वृत्तिको इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलनेकी (बहिर्मुख होनेकी अर्थात् अनात्माकार होनेकी) कोई आवश्यकता नहीं है; किन्तु जब वृत्ति अन्तर्मुख होकर, अज्ञानको नष्ट करके, ब्रह्मको निरावरण कर लेती है, तब उसी समय उस स्वयं-प्रकाश ब्रह्मका अपने आप ही भान (प्रत्यक्ष) होता है।

शंका :— भगवन् ! ऐसा देखा जाता है कि जब भी किसी विषयका (शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध आदिका) प्रत्यक्ष होता है, तब उसी समय अन्तःकरणकी वृत्ति आँख आदि ज्ञान-इन्द्रियों

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

द्वारा बाहर निकलती है। यदि ज्ञान-इन्द्रियाँ न हों तो प्रत्यक्ष-ज्ञान कभी हो ही नहीं सकता; क्योंकि जिसके आँख आदि इन्द्रियाँ नहीं हैं उसे रूप आदिका प्रत्यक्ष-ज्ञान भी नहीं होता है। किन्तु आप कहते हैं कि ब्रह्म-ज्ञानमें वृत्ति इन्द्रियों द्वारा बाहर नहीं निकलती; इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मका ज्ञान अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) नहीं किन्तु परोक्ष ही होता है और आप यह भी कहा करते हैं कि ब्रह्मका ज्ञान गुरु-मुख-द्वारा महावाक्यका उपदेश सुननेसे ही होता है। वह उपदेश एक प्रकारका शब्द है और शब्दसे जो ज्ञान हुआ करता है वह परोक्ष ही होता है न कि प्रत्यक्ष। जैसे किसीने यदि ताज-महलका नाम सुना हो तो केवल सुननेसे ही उसे ताजमहलका प्रत्यक्ष-ज्ञान थोड़े ही होता है। तो फिर भगवन्! 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके सुननेसे ब्रह्मका प्रत्यक्ष-ज्ञान कैसे हो सकता है?

उत्तर :— हे शिष्य! इन्द्रियोंकी सहायताके बिना प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं हो सकता, यह कोई नियम नहीं है; क्योंकि सुख-दुःखका ज्ञान बिना इन्द्रियोंकी सहायताके ही होता है और वह प्रत्यक्ष-ज्ञान ही है। इसलिए इन्द्रिय-संबन्धसे प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है, ऐसा न मानकर यह मानना चाहिए कि जहाँ विषय से अन्तःकरणकी वृत्तिका सम्बन्ध होनेके बाद वृत्ति विषयाकार होती है, वहीं प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है। क्योंकि जब वृत्ति विषयसे मिलती है तब वृत्ति-उपहित-चेतन और विषय-उपहित-चेतन दोनों का अभेद हो जाता है। इसलिए वेदान्तमें **विषय-चेतनका वृत्ति-चेतनसे अभेद** ही प्रत्यक्ष-ज्ञानका प्रयोजक (हेतु) कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वह अभेद :— (१) कहीं इन्द्रिय-द्वारा होता है—जैसे रूपके प्रत्यक्षमें वृत्ति आँख इन्द्रिय द्वारा बाहर निकलकर जब रूप-विषयसे मिलती है तब उस वृत्ति-उपहित-चेतन तथा रूप-विषय-उपहित-चेतन दोनोंका अभेद (एकीभाव) होता है और तभी रूपका प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है।

(२) कहीं इन्द्रियादि-बाह्य-निमित्तके विना ही शरीरके अन्दर उत्पन्न हुई वृत्ति-द्वारा होता है—जैसे सुख दुःखके प्रत्यक्षमें अन्तःकरणकी वृत्ति, इन्द्रियादि-रूप दूसरे किसी बाह्य साधनके बिना ही जब सुख-दुःखके आकारवाली हो जाती है, तब उस वृत्ति-उपहित-चेतन तथा सुख-दुःख-विषय-उपहित-चेतन दोनोंका अभेद होता है और तभी सुख दुःखका प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है। [उस सुख-दुःखाकार अन्तःकरणकी वृत्तिमें आरूढ साक्षी-चेतन उस सुख-दुःखको प्रकाशता है, इसलिए सुख-दुःखको साक्षी-भास्य कहते हैं]

और (३) कहीं शब्द से होता है—जैसे दस आदमी किसी नदीके पार उतरे। उतरकर अपने आदमियोंको गिनने लगे। गिननेवाला अपनेको छोड़कर शेष नौको गिन लेता था। परिणाम में वे नदीके किनारे बैठकर दसवेंको रो रहे थे कि हाय! दसवाँ डूब गया। तब कोई आप्त पुरुष (यथार्थ-वक्ता सज्जन) वहाँ आया और उसने नौको गिननेके बाद उस दसवेंसे कहा कि "अरे! जिस दसवेंके लिए तू रो रहा है वह दसवाँ तू ही तो है" बस ये शब्द सुनते ही उसे उसी क्षण अपने दसवेंका प्रत्यक्ष-ज्ञान हो गया और कहने लगा "अरे! कितनी भूल थी, जिस दसवेंको मैं खोज रहा था वह दसवाँ मैं ही तो हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जिस प्रकार "दसवाँ तू है" ये शब्द जब उस दसवेंने सुनें, उसी समय उसके अन्तःकरणकी वृत्तिका दसवेंसे सम्बन्ध होनेके बाद वृत्ति दशमाकार बनी और तभी दसवेंका प्रत्यक्ष-ज्ञान हुआ; क्योंकि उस समय वृत्ति-चेतन और दसवाँरूप विषय-चेतनका अभेद हुआ था।

ठीक इसी प्रकार हे शिष्य ! जब शुद्ध-अन्तःकरण जिज्ञासु गुरु-मुखसे 'तत्त्वमसि' अर्थात् "तू (साक्षी) ब्रह्म है" यह महावाक्यरूप शब्द सुनता है तब उसी समय उसके असली स्वरूप (साक्षीरूप ब्रह्म) से वृत्तिका सम्बन्ध होनेसे वृत्तिके ब्रह्माकार होनेके बाद अर्थात् वृत्तिका ब्रह्मको विषय करनेके बाद, [जैसे हम जब मलिन (मलसे ढके हुए) वस्त्रको साबुनसे साफ़ करते हैं तब वह साबुन मलको नष्ट करता है और उस वस्त्रका असली स्वरूप सफ़ेदी अपने आप चमकती है; उसी प्रकार जब हम अज्ञानसे ढके हुए अपने असली स्वरूप साक्षीरूप ब्रह्मको 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वृत्तिरूप साबुनसे प्रत्यक्ष करते हैं तब वह साबुनरूप वृत्ति अज्ञानरूपी मलको नष्ट करती है और उस स्वयं-प्रकाश ब्रह्मका अपने आप प्रकाश होता है। इस प्रकार वृत्ति-द्वारा ब्रह्मका आवरण भंग करना ही वृत्तिका ब्रह्मको विषय करना है] ब्रह्मका प्रत्यक्ष होता है; क्योंकि उस समय वृत्ति-चेतनका और ब्रह्म-चेतनका अभेद होता है।

वास्तवमें चेतनका स्वरूपसे तो कोई भेद है ही नहीं किन्तु विषय और वृत्तिरूप उपाधिका किया हुआ भेद है;

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(जैसे दो घड़ोंमें आया हुआ आकाश वास्तवमें तो एक ही है किन्तु दो घड़ोंकी उपाधिसे दो घटाकाशरूपसे दिखता है) क्योंकि वह वृत्ति तथा विषयरूप उपाधि जब भिन्न भिन्न देशमें स्थित होती है तब उस उपाधिवाले (उपहित) चेतनका भेद कहा जाता है।

जब वृत्ति विषयाकार होती है तब दोनों उपाधियाँ (वृत्ति और विषय) एक देशमें स्थित होती हैं इसलिए उस समय उस उपाधिवाले विषय-चेतन और वृत्ति-चेतनका अभेद कहा जाता है और वह विषय-चेतनसे वृत्ति-चेतनका अभेद ही (एकीभाव ही) प्रत्यक्ष-ज्ञानका प्रयोजक है। उस प्रत्यक्ष-ज्ञानको अपरोक्ष-ज्ञान और साक्षात्कार भी कहते हैं।

हे शिष्य ! अब तुम्हें समझमें आ गया होगा कि प्रत्यक्ष-ज्ञान बिना इन्द्रियोंके भी होता है—जैसे **सुख-दुःखका प्रत्यक्ष-ज्ञान** और शब्दकें श्रवणसे भी प्रत्यक्ष होता हैः— जैसे दसवेंको 'दसवाँ तू है, इस शब्दको सुननेसे अपने दसवेंपनका **प्रत्यक्ष-ज्ञान** हुआ था। इसलिए हे शिष्य ! गुरुद्वारा "तत्त्वमसि" महावाक्यको सुननेसे जब वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब उस समय बिना इन्द्रियोंकी सहायताके ही अपने असली स्वरूप ब्रह्मका प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है।

जब उस तत्त्वदृष्टि नामक उत्तमाधिकारीने इस प्रकार गुरुमुखसे अपने असली स्वरूपका ब्रह्मरूपसे वर्णन सुना तब अज्ञान नष्ट होनेसे उसे अपने असली स्वरूप **ब्रह्मरूप साक्षीका** प्रत्यक्ष-ज्ञान हुआ और इस प्रकार 'अहं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मास्मि' ऐसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान होनेके बाद वह संशय और विपरीत भावनाओंसे रहित शान्त मनसे उस ब्रह्मानन्द (स्वरूपानन्द) का आनन्द लेने लगा।

इति श्रीविचारसागरदर्पणे उत्तमाधिकारी-उपदेश-निरूपणं नाम चतुर्थस्तरंगः समाप्तः

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

* पंचमस्तरंगः *

अथ श्रीगुरुवेदादि-व्यावहारिक-प्रतिपादनम्

अथवा

—मध्यमाधिकारी-साधन-निरूपणम्—

इस प्रकार गुरु-मुख-द्वारा उपदेश सुनकर बड़ा भाई उत्तमाधिकारी तत्त्वदृष्टि तो शंका-रहित होकर शान्त हो गया किन्तु मध्यमाधिकारी **अदृष्टिको** तृप्ति नहीं हुई। तब वह गुरुजीको हाथ जोड़कर, शंका करनेकी आज्ञा माँग कर कहने लगा :—

शंका :— भगवन् ! आपने कहा, "गुरु-मुख-द्वारा वेदके वचनोंको (वेदान्तको) सुननेसे अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होता है और जिसको ब्रह्मका साक्षात्कार [अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान] होता है, वही इस जन्ममरणादि दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जाता है।" इस प्रकार आपने वेद और गुरु ज्ञान-द्वारा मोक्षके साधन बताए किन्तु यह मेरी समझमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं आया; क्योंकि वेद और गुरु मोक्षके साधन बन ही नहीं सकते ।

गुरुजी :— हे शिष्य ! तुमने यह कैसे समझा कि वेद और गुरु मोक्षके साधन नहीं बन सकते ?

शिष्य (अदृष्टि) :— भगवन् ! पहले मुझे आप यह बताएं कि गुरु और वेद सत्य हैं या असत्य । यदि आप गुरु और वेदको सत्य मानते हैं, तो आपके अद्वैत सिद्धान्तकी हानि होती है; क्योंकि वेदान्तके अद्वैत-सिद्धान्ताऽनुसार **एक ब्रह्म ही सत्य है शेष सब मिथ्या है** ।

इसलिए आपको गुरु और वेदको भी मिथ्या ही मानना पड़ेगा । यदि गुरु और वेद मिथ्या हैं तो वे कभी मोक्षके साधन नहीं बन सकते; क्योंकि मोक्ष कहते हैं जन्ममरणादि दुःखोंके नाशको (दुःखोंसे छूटनेको) और जो वस्तु स्वयं मिथ्या है वह कभी किसीका नाश नहीं कर सकती; जैसे मृगतृष्णाका जल मिथ्या है तो वह कभी प्यासको नष्ट नहीं कर सकता । इसलिए "गुरु और वेद दोनों ज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष दिलाते हैं" यह आपका कहना मुझे दोष-रहित प्रतीत नहीं होता ।

इन दोषोंके कारण ही मध्वाचार्य आदि द्वैतवादियोंने श्रीस्वामी शंकराचार्यजीके माने हुए इस अद्वैत सिद्धान्तको ग्रहण नहीं किया, ऐसा प्रतीत होता है ।

गुरुजी :— हे शिष्य ! यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि श्रीस्वामी शंकराचार्यजीका माना हुआ अद्वैत मत ही प्रामाणिक है । यदि मध्वाचार्य आदि द्वैत-वादियोंको इस अद्वैत-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वादमें दोष प्रतीत हुए तो वह उनकी बुद्धिकी कमजोरी थी; क्योंकि वेदव्यास जैसे वेदोंके ज्ञाताने भी इस अद्वैत वादको ही स्वीकार किया है। श्रीशंकराचार्यजीके बारेमें तो उन्होंने (भगवान् वेदव्यासजीने) स्वयं वायुपुराण औरकूर्मपुराण आदि पुराणोंमें यह लिखा है :— "जब कलियुगमें वेदके अर्थ से अनभिज्ञ लोग वेदके अर्थको नाना प्रकारसे करने लगेंगे तब कृपालु भगवान् शिवजी **श्रीशंकरके** नामसे अवतार लेकर, बद्रिनाथकी मूर्तिका देवनदी गंगामेंसे उद्धार, स्वस्थानमें स्थापन, नास्तिक-मतका खण्डन तथा **वेदका यथार्थ व्याख्यान** करेंगे।"

श्रीवेदव्यासजीके इन वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीशंकराचार्यजीका माना हुआ अद्वैत मत ही **प्रमाण** (यथार्थ ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला) है और मध्वादिकोंका द्वैत मत (भेदमत) अप्रमाण है, अर्थात् यथार्थ-ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला नहीं है।

आदि कवि सर्वज्ञ ऋषि श्रीवाल्मीकजीने भी, उत्तर-रामायण 'योगवासिष्ठ' नामक ग्रंथमें 'दृष्टि-सृष्टि-वाद' के रूप में अद्वैतमतका ही प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार हे शिष्य ! सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके वचनोंके विरुद्ध द्वैतवादको दोष-सहित और अप्रमाण ही समझना चाहिये और युक्तियों (दलीलों) के आगे भी यह द्वैतवाद नहीं ठहर सकता. इस बातको श्रीहर्षमिश्रादि आचार्योंने 'खण्डन-खण्ड-खाद्य' तथा 'भेद-धिक्कार' आदि ग्रंथोंमें अच्छी तरहसे स्पष्ट किया है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वेदके वचनोंसे भी यह द्वैतमत विरुद्ध है; क्योंकि कठ उपनिषद्में आया है :—

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" (कठ० उ० २।१।१०)

अर्थात् जो पुरुष इस संसारमें नानापने (अनेकपनेको) [अर्थात् वास्तविक रूपसे अद्वैतको न समझकर द्वैतको] देखता है, वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् जन्म मरण के चक्रसे नहीं छूटता।

"**द्वितीयाद् वै भयं भवति**" अर्थात् द्वितीयसे ही भय होता है।

"**अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्**" अर्थात् वह (ब्रह्म) दूसरा है और मैं (साक्षी) दूसरा हूँ, इस प्रकार जो जानता है वह वास्तवमें नहीं जानता; वह (द्वैतवादी) देवताओंके पशुकी तरह ही है।

इसलिए हे शिष्य ! वेदव्यासजी, वाल्मीकजी और वेदके वचनोंसे विरुद्ध, तथा युक्तियोंके आगे नहीं ठहरनेवाले द्वैत वादको अप्रमाण समझकर छोड़ ही देना चाहिये; और ऋषि-मुनि-गण तथा वेदके बताए हुए, इस अद्वैतवादको ही प्रमाण समझकर स्वीकार करना चाहिये।

यह निश्चय करलो कि जब तक तुम्हारे हृदयमें द्वैत-भावना (भेद-भावना) रहेगी तब तक जन्ममरणके चक्र और भय इत्यादि दुःखोंसे नहीं छूटोगे। यह द्वैत-भावना अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होने नहीं देगी; क्योंकि ये द्वैतवादियोंके वचन जिज्ञासु-जनोंके कोमल हृदयोंमें ऐसे संस्कार डाल देते हैं कि जिनसे अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होनेपर भी संशय उत्पन्न होते ही रहते हैं। हे शिष्य ! इस बातको समझानेके लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ।

किसी राजाका प्रधान मन्त्री जिसका नाम भर्छु था वह बड़ा बुद्धिमान् और आज्ञाकारी था। उसपर राजाका बड़ा प्रेम था। इसलिए दूसरे मन्त्री भर्छुसे ईर्ष्या करते थे। एक बार उन मन्त्रियोंने आपसमें मिलकर, किसी उपाय (तरकीब) से राजासे आज्ञा दिलवाकर, भर्छुको डाकुओंके पीछे उन्हें मारनेके लिए भिजवा दिया। उधर राजाको पीछेसे उन सबने मिलकर कहा कि वह भर्छु डाकुओंसे लड़ते लड़ते मर गया। यह सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ। फिर उन मन्त्रियोंके कहनेपर राजाने दूसरे किसीको प्रधान मन्त्री बना दिया और वहाँ जब भर्छु डाकुओंको मारकर लौटने लगा तब उसे पता लगा कि राजाने किसी दूसरेको प्रधान मन्त्री बना लिया है और उन मन्त्रियोंने उसे मारनेका प्रबन्ध भी कर लिया है। तब उसे (भर्छुको) वैराग्य उत्पन्न हुआ और सोचने लगा कि "जब मन्त्रियोंका मेरेसे कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हो सका प्रत्युत मैं उनके स्वार्थमें बाधक हुआ तभी वे मुझे मारनेका प्रयत्न करने लगे। यह उनका दोष नहीं वास्तवमें यह सारा संसार ही स्वार्थी है। श्रीतुलसीदासजीने सही कहा है:—

"सुर नर मुनि जनकी यह रीति।
स्वारथ लाग करैं सब प्रीति ॥"

स्त्री भी जो पतिको प्रेम करती है वह अपने स्वार्थके लिए और पति जो स्त्रीसे प्रेम करता है, वह भी अपने स्वार्थके लिए ही।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसी प्रकार मित्रगण पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक सभी अपने अपने स्वार्थसे ही एक दूसरेको प्रेम करते हैं। जो देशभक्त अथवा प्रभुभक्त हैं वे भी शुद्ध स्वार्थी हैं, क्योंकि उन्हें भक्तिसे अन्दरमें शान्ति और **आनन्दकी** लहरें उत्पन्न होती हैं; अर्थात् वे भी उस अन्दरकी शान्ति और आनन्दके स्वार्थसे ही भक्ति करते हैं।

शंका:— भगवन्! श्रीतुलसीदासजीने तो मुनि शब्दका भी प्रयोग किया है, तो क्या जो मुनिजन परोपकारी महात्मा हैं वे भी स्वार्थी हैं?

उत्तर:—हे शिष्य! हाँ वे भी स्वार्थी हैं, किन्तु उनका स्वार्थ साधारण स्वार्थी लोगों जैसा निकृष्ट स्वार्थ नहीं है, अपितु शुद्ध स्वार्थ है, क्योंकि वे परोपकारी मुनि-जन दयालु होते हैं। जब वे किसीको दुःखी देखते हैं तो स्वयं भी दुःखी हो जाते हैं, अर्थात् दूसरेको दुःखी देखकर उनके हृदयमें काँटा चुभने लगता है और उस काँटे (दुःख) को वे तभी दूर कर सकते हैं जब कि दूसरोंके दुःखको दूर करें। इसीलिये (अपने दुःखको दूर करनेके लिये ही) वे दूसरोंके दुःखको दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। जिसे लौकिक भाषामें परोपकार तथा दार्शनिक भाषामें **शुद्ध-स्वार्थ** कहते हैं।

इस प्रकार हे शिष्य! उस भक्षुको किसी पुण्य विशेषके उदय होनेपर इस प्रकारकी वैराग्यकी भावनाएँ उत्पन्न होने लगीं और वह मनमें कहने लगा कि "जिन स्त्री, पुत्र, धन आदिक पदार्थोंको मैं सुखरूप समझता था और नित्यसुखका

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

साधन समझकर उन्हें प्राप्त करके अपनेको कृतकृत्य माना करता था, वह सब भ्रान्ति ही थी । क्योंकि आज तक मुझे उनमेंसे बाह्य सुखके स्वरूपमें दुःख-ही मिलता रहा और मैं अज्ञानके कारण उस दुःखको सुख, अपवित्रको पवित्र, अनित्यको नित्य और अनात्माको आत्माही (स्थूलशरीर आदि अनात्म पदार्थों को अपना स्वरूप समझना—"जैसे मैं ब्राह्मण हूँ, मैं यज्ञदत्त हूँ इत्यादि) समझ रहा था ।"

शंका :— भगवन् ! ये स्त्री, पुत्र, धन आदिक विषय-पदार्थ दुःखरूप कैसे हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! ये भोग्य पदार्थ चार प्रकारसे दुःख देनेवाले हैं । (१) परिणाम-दुःख (२) ताप-दुःख (३) संस्कार-दुःख और (४) गुण-वृत्ति-विरोध-दुःख ।

(१) **परिणाम-दुःख :—** परिणाममें अर्थात् अन्तमें उन भोगों का फल दुःखरूप है । भर्तृजीने भी कहा है कि **"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः"** अर्थात् हमने सोचा कि हम भोग्य पदार्थोंको भोग रहे हैं किन्तु परिणाममें हम ही भुग गये, भोग तो संसारमें ज्यों के त्यों मौजूद हैं । तथा **"भोगे रोग-भयम्"** भोगोंमें रोगोंका भय रहता ही है; क्योंकि भोगोंके परिणाम रोग ही होते हैं ।

शंका :— भगवन् ! भोग्य पदार्थोंको मात्रासे भोगनेपर तो वे रोगोंको उत्पन्न नहीं करते ?

उत्तर :— हे शिष्य ! रोग (दुःख) केवल शारीरिक ही नहीं होते किन्तु मानसिक भी होते हैं । जब भोग्य पदार्थ अप्राप्त होते हैं तो उनके प्राप्तिकी इच्छा मनको सताती है, यह भी एक प्रकारका रोग अर्थात् दुःख है, जब पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मिल जाता है तब, यह भोग्य जल्दी नष्ट न हो, बहुत समय तक मेरे पास रहे, इस प्रकारका चिन्ता-रूप-दुःख रहता है और जब वह भोग्य पदार्थ नष्ट हो जाता है [सभी भोग्य पदार्थ क्षणिक होनेके नाते नष्ट होते ही हैं] तब तो उस भोगीको महान् दुःख होता है। इस प्रकार ये सब भोग्य पदार्थ सदा दुःखरूप ही होते हैं और 'हम भोग्य पदार्थोंको मात्रासे (थोड़ेमें) भोगेंगे' यह केवल मनकी दलीलमात्र है। क्योंकि साधारणतः मनका ढाँचा कुछ ऐसा बना हुआ है कि जब भोगकी मनमें इच्छा होती है और उस इच्छाकी पूर्ति करनेकी भ्रान्तिसे यदि मनको वह भोग्य पदार्थ दिया जाता है, तो वह इच्छा पूर्ण नहीं होती प्रत्युत (बल्कि) जैसे अग्निमें हवन-सामग्री डालनेसे एक बार अग्नि कुछ मन्द होकर, धुंवा करके फिर दुगुनी प्रज्वलित हो जाती है, वैसे ही वह इच्छा उस समय कुंछ दब कर फिर दुगुनी बढ़ जाती है। यों बढ़ते बढ़ते वह इच्छा तृष्णाका रूप धारण कर लेती है। जहाँ तृष्णा उत्पन्न होती है वहाँ प्रमाद, पाप इत्यादि उसके भाई भी आजाते हैं। जब इनका कुटुम्ब बढ़ने लगता है तब तृष्णासे बात चीत करनेके लिये उसकी सखी चिन्ता भी आकर उस भोगीके हृदयमें डेरा जमाती है और फिर वे सब मिलकर उस भोगीके हृदयमें एक विशाल दारुण दुःखरूप देवताकी स्थापना करते हैं। फिर वहाँ रात दिन पातकों (पापों) का पाठ पढ़ा जाता है, दूसरोंको लूटने तथा दुःख पहुँचाकर अपनेको सुखी करनेकी भावनाओंके भजन गाये जाते हैं, मलिन असद्विचार वहाँ

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अपना रौद्र-रस-पूर्ण विकराल नंगा नृत्य दिखाकर, कुप्रवृत्तियों को (जो दर्शक हैं) उत्तेजित करते हैं, इस प्रकार उस भोगीके हृदयमें कलियुगका पूर्णाधिकार हो जाता है और भोगी यदि आरम्भमें ही अपनी इच्छाओंपर संतोषका जल छिड़क देता है तो धीरे धीरे वह भोग्य पदार्थोंको भोगनेकी इच्छा-रूप-अग्नि शान्त हो जाती है। क्योंकि हम देखते हैं कि जितना हम भोग्योंसे दूर रहते हैं उतनी ही उनकी इच्छा कम होती है और जितना हम भोग्योंके समीप रहते हैं (भोगते हैं) उतनी वह इच्छा-अग्नि बढ़कर अन्तमें दुःख देती है। इसीलिए इन विषयभोगोंको **परिणाम** (अन्त) **में** दुःखरूप माना जाता है।

(२) **ताप-दुःख** :— भोग्य पदार्थोंके रहते समय अन्दरमें संताप अर्थात् ईर्ष्यारूप जलन उत्पन्न होती है; क्योंकि भोगी जब अपनेसे दूसरेके पास अधिक मात्रामें व अच्छे अच्छे भोग्य पदार्थ देखता है तब सूक्ष्मरूपसे मनमें ईर्ष्या उत्पन्न होती और **ईर्ष्यासे स्वभाव चिड़चिड़ा बनकर, क्रोध उत्पन्न होता** है। तथा प्राप्त हुए भोग्य पदार्थोंके नाशके भयसे उनकी रक्षा करनेकी चिन्ता भी रहती है। ये सब एक प्रकारके संताप हैं और इन सबको मिलाकर **ताप-दुःख** कहते हैं।

(३) **संस्कार-दुःख** :— पहिलेके भोगे हुए जो स्त्री, पुत्र, धन आदि प्रिय पदार्थ होते हैं, उनके नष्ट होनेपर, उनके संस्कारोंसे उत्पन्न हुई उन भोग्य पदार्थोंकी स्मृति (याद) से जो दुःख होता है उसे **संस्कार-दुःख** कहते हैं। और

(४) **गुण-वृत्ति-विरोध-दुःख** :— सत्त्व-रजस्तमो-गुणात्मक-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वृत्ति (सात्त्विक, राजस तथा तामस वृत्ति) के बदलते रहने से जो उन वृत्तियोंका परस्पर विरोध उत्पन्न होता है, उससे उत्पन्न होनेवाले दुःखको गुण-वृत्ति-विरोध-दुःख कहते हैं। क्योंकि गुण चंचल होनेके कारण बदलते ही रहते हैं। जैसे स्त्री, पुत्र व धनादि पदार्थ पहिले रजो-गुणात्मक-वृत्तिके होनेसे प्रिय तथा सुखरूप प्रतीत होते हैं, किन्तु गुणवृत्तिमें विरोध होनेसे अर्थात् रजो-गुण-वृत्ति बदलकर सात्त्विक-वृत्ति होनेसे, शाँति और वैराग्य उत्पन्न होकर वे ही पदार्थ दुःखरूप (जन्म मरणादि दुःखरूप संसारमें फंसाने वाले) प्रतीत होते हैं। अथवा वृत्ति जब तमोगुणमें पलटती है तब नींद ही मीठी लगती है और 'अच्छे अच्छे भोग्य पदार्थोंको भी हम दूर हटा देते हैं; अर्थात् उन्हें निद्राके आनन्दको छीननेवाले मानकर दुःखरूप समझते हैं। अथवा नशे आदिकी अवस्थामें नशेसे मना करनेवाले स्त्री-पुत्रादिक भी दुःखरूप प्रतीत होते हैं। अथवा जैसे कामी पुरुषोंकी राजस-वृत्तिके बदलनेसे दूसरे स्त्री-आदिक पदार्थोंमें प्रेम होने के कारण, पहिलेवाले स्त्री-आदिक पदार्थ उस समय दुःखरूप प्रतीत होते हैं। इस प्रकार स्त्री-पुत्र-धन-आदिक भोग्य पदार्थोंमें **गुण-वृत्ति-विरोध-दुःख** भी माना जाता है।

इसीलिये हे शिष्य ! सारे भोग्य पदार्थ दुःखरूप माने जाते हैं और भर्तृ भी इस प्रकार उस समय इन भोग्य पदार्थोंको दुःखरूप समझकर यह कहने लगा :— "मैंने अज्ञान से इन दुःखरूप भोग्योंको सुखरूप समझकर सारी आयु यों ही भटकते २ गवाँ दी किन्तु मृगतृष्णाके जलकी ओर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भागनेवाले मृगकी तरह, आज तक मुझे नित्य-आनन्द प्राप्त नहीं हुआ।"

शंका :— भगवन्! आपने पहिले यह बताया था कि भर्तृको दुःखमें सुख-बुद्धिके साथ साथ अशुचि (अपवित्र में शुचि-बुद्धि (पवित्र-बुद्धि) भी हुई थी। सो भगवन्! मुझे कृपा करके समझाइये कि अपवित्रमें पवित्र बुद्धि कैसे हुआ करती है?

उत्तर :— हे शिष्य! जितने भी संसारके पदार्थ हैं उन सबमें यह शरीर सबसे अधिक अपवित्र माना जाता है। क्योंकि हम कितने अच्छे अच्छे पदार्थ खाते हैं, किन्तु वे पदार्थ इस शरीरके संगसे इतने गन्दे हो जाते हैं कि हम उन्हें देखना भी नहीं चाहते। वह गन्दगी कहाँ थी? इस शरीरमें ही तो थी, जो बाहर आनेपर हमें बुरी लगती है। इसी प्रकार स्त्री-आदिकोंके शरीर भी अपवित्र ही हैं; क्योंकि वे हाड़, माँस, चर्बी, रक्त, मवाद, विष्टा, मूत्र आदि गन्दे पदार्थोंसे भरे हुए तथा ऊपर चमड़ीसे ढके हुए ही तो हैं। ऐसे अपवित्र गन्दे स्त्री आदिकोंके शरीरोंमें भी कामी पुरुषोंको पवित्र और सुन्दर बुद्धि होती है। अर्थात् वे कामी वास्तविकता (असलियत) को न जाननेसे, "यह कामिनी बड़ी ही सुन्दर है, इसका चन्द्रमा जैसा मुख, कमल जैसे नेत्र, मोती जैसे दाँत तथा स्वर्ण जैसा शरीर है" इत्यादिरूपसे गन्दे शरीरको व्यर्थकी उपमा देकर उस अपवित्र शरीरमें पवित्र बुद्धि करके लम्पट होते हैं। इस प्रकार स्त्री भी पुरुषके अपवित्र शरीरको पवित्र मानकर उसमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आसक्त होती है।

श्रीवेदव्यासजी तथा श्रीस्वामी शंकराचार्यजी महाराजने भी इस शरीरको पाँच प्रकारसे गंदा तथा अपवित्र बतलाया है।

(१) इस शरीरके उत्पन्न होनेकी जगह, जो माताका गर्भ-स्थान है, वह पूर्णतया अपवित्र है।

(२) शरीरका उपादान-कारण (जिससे शरीर उत्पन्न होता है) रज और वीर्य भी अपवित्र हैं।

(३) शरीर जिन पर खड़ा है वे, अन्नसे उत्पन्न होने वाले रस, रक्त, माँस, मेद, हड्डी, मज्जा, और वीर्य ये सातों धातु भी अपवित्र हैं।

(४) शरीरसे निकलनेवाले—पसीना, थूक, लार, मल, मूत्र, तथा आँख, कान और नाकका मैल, नाखून, व केशादि ये सभी पदार्थ अपवित्र हैं।

(५) अन्तमें भी अर्थात् मृत शरीरसे भी अपवित्रता ही प्रकट होती है, चाहे वह शरीर कितना ही सुन्दर व उत्तम जातिवाले या धनवान् अथवा विद्वान्का क्यों न हो।

इस प्रकार हे शिष्य! पाँच प्रकारसे यह शरीर अपवित्र सिद्ध हुआ। ऐसे अपवित्र गन्दे शरीरोंपर अज्ञानी लोग ही आसक्त हुआ करते हैं। कितने अज्ञानी लोग तो पशु पक्षियोंके गन्दे शरीरोंके माँस इत्यादिक अपवित्र पदार्थोंमें पवित्र बुद्धि करके इतने आसक्त हो जाते हैं कि उनके सेवन करते समय अपवित्रता और पापका भी ध्यान उन्हें नहीं रहता। इसपर पीपे साहब, गुरु नानक तथा कबीर साहबने

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कहा है :—

"जीव मार भोजन करें, खाते करत बखान।
पीपा प्रत्यक्ष देखले, थाली माँहि मसान॥"
"कबीर माँस माँस एक है, हरिणी, बकरी गाय।
आँख देख नर खात हैं, निश्चय नरकहिं जाय॥"
"जो रक्त लगे कपड़े, जामाँ होय पलीत।
सो रक्त खावे मानसा, (नानक) किस विध ऊजल चीत॥"

मसान = श्मशान, चीत = चित्त।

इस प्रकार भर्छु कहने लगा कि "मैंने आज तक अपवित्र, दुःखरूप, अनित्य तथा अनात्म-पदार्थोंमें भ्रान्तिसे पवित्र, सुखरूप नित्य तथा आत्म-बुद्धि करके, अपनी सारी आयु तथा बल-बुद्धि-तेज और वीर्यको यों ही व्यर्थमें गवाँ दिया।

जो वीर्य इस शरीररूपी नगरका राजा है, वह वीर्यरूपी राजा यदि पुष्ट व बलवान् है, तो रोगरूपी शत्रु कभी शरीर-रूपी नगरपर आक्रमण नहीं करते, परन्तु जिसका वीर्य-रूपी राजा निर्बल है, उस शरीररूपी नगरको कई रोग-रूपी शत्रु आकर घेर लेते हैं। वीर्यकी रक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्यसे दैवी-गुण-सम्पन्न देवताओंने तो कालको भी जीत लिया है। इसी बातको वेद कहता है :—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत॥१॥"

अर्थ :—ब्रह्मचर्यरूपी तपसे देवताओंने मृत्युको जीत लिया है। देवराज इन्द्रने भी ब्रह्मचर्यसे ही देवताओंसे अधिक सुख वा उच्च पदको प्राप्त किया है।"

अथर्ववेद १—५—१६

और भगवान् शंकरजी तो ब्रह्मचारीको देवता बतलाते हुए कहते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥"

अर्थात् "ब्रह्मचर्य (वीर्य-धारण) ही उत्कृष्ट तप है । इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकोंमें दूसरी नहीं हो सकती । ऊर्ध्वरेता पुरुष अर्थात् अखंड वीर्य-धारण करनेवाला पुरुष इस लोकमें मनुष्यरूपमें प्रत्यक्ष देवता ही है ।"

वास्तवमें ब्रह्मचर्यकी महिमा महान् है; क्योंकि सम्पूर्ण विश्वके प्राणिमात्रमें जो कुछ जीवन-कला दिखलाई देती है, वह सब ब्रह्मचर्यका ही प्रताप है । जीवन-कलामें सौन्दर्य, तेज, आनन्द, उत्साह, सामर्थ्य, असामान्यता, मोहकता (आकर्षण) व सजीवत्व आदि अनेकानेक उत्तम गुणोंका समावेश इसी ब्रह्मचर्यसे ही होता है । अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुषके लिए संसारमें तो क्या, त्रिभुवनमें भी कोई बात असम्भव व अप्राप्य नहीं है । श्रीभगवान् शंकर कहते हैं :—

"सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशो भवेत् ॥"

अर्थात्— महान् परिश्रम-पूर्वक बिन्दु (वीर्य) को साधनेवाले अखण्ड ब्रह्मचारीके लिए त्रिभुवनमें भी ऐसी कोई वस्तु नहीं जो असम्भव व असाध्य हो । और उस ब्रह्मचर्यके प्रताप से ही मेरी ऐसी महान् महिमा हुई है ।

इस प्रकार हे शिष्य ! ब्रह्मचर्यकी महिमा भगवान् शंकरने स्वयं बतलाई है और भी कई ऋषि मुनि जन इस ब्रह्मचर्य की महिमाको गाते रहते हैं । क्योंकि यह वीर्य शरीरका अन्तिम व उत्तम धातु है । श्रीसुश्रुताचार्यने लिखा है :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"रसाद्रक्तं ततो माँसं, माँसान्मेदः प्रजायते।
मेदस्याऽस्थि ततो मज्जा, मज्जायाः शुक्र-संभवः ॥"

अर्थात्—मनुष्य जो कुछ भोजन करता है वह पहिले पेटमें जाकर पचने लगता है, फिर उसका रस बनता है। उस रस का पाँच दिन तक पाचन होकर उससे रक्त पैदा होता है। रक्तका भी पाँच दिन पाचन होकर, उससे माँस बनता है। इस प्रकार पाँच पाँच दिनके बाद माँससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसें मज्जा और अन्तमें मज्जासे सप्तम सार पदार्थ 'वीर्य' बनता है। यही वीर्य फिर 'ओजस' रूपमें सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक होकर चमकता रहता है। स्त्रीके इस सप्तम शुद्धातिशुद्ध सार पदार्थको 'रज' कहते हैं। दोनोंमें भिन्नता होती है। इस प्रकार रससे लेकर वीर्य व रज तक छः धातुओंके पाचन करनेमें पाँच दिनके हिसाब से पूरे ३० दिन व करीब ४ घण्टे लगते हैं; ऐसा शास्त्रोंका सिद्धान्त है।

अब यह जानना आवश्यक है कि कितने भोजनसें कितना वीर्य पैदा होता है। इसका निश्चय वैज्ञानिकोंनें इस प्रकार किया है कि एक मन अर्थात् ४० सेर भोजनसे एक सेर रक्त बनता है और एक सेर रक्तसे दो तोला वीर्य बनता है। इस प्रकार "एक तोले वीर्यके बराबर चालीस तोला अर्थात् आधा सेर रक्त है" यह उनका सिद्धान्त है।

यदि नीरोग मनुष्य सेर भर भोजन प्रतिदिन करे तों ४० सेर भोजन ४० दिनमें करेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि चालीस दिनकी कमाई दो तोला वीर्य है। इस

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हिसाब से ३० दिनकी अर्थात् एक महीनेकी कमाई डेढ़ तोला हुई। एक बारमें मनुष्यका वीर्य डेढ़ तोलासे कम क्या निकलता होगा, जो कि ३० दिनकी कमाई है। अब ज़रा सोचनेकी बात है। इतने कठोर परिश्रमसे ३० दिनमें प्राप्त होनेवाली डेढ़ तोला अमूल्य व अतुल दौलत एक क्षण में ही फूंक डालना कितनी घोर मूर्खता है। ऐसा पुरुष उस मूर्ख मालीके समान है जो तन मन धनसे दिन-रात परिश्रम कर फूलोंका सुन्दर बगीचा तैयार करता है और पैदा हुए असंख्य फूलोंका इत्र निकलवा कर उसे मोरियोंमें डालता व डलवाता है। जो इस प्रकार अज्ञान-वश होकर महीने में भी कई बार इस प्रकारकी ३० दिनकी कमाईको खोता रहता है, तो फल-स्वरूप उसका १५ वर्षकी आयु तक बचपनमें जितना ओजसरूपमें वीर्य इकट्ठा था वह धीरे धीरे नष्ट होता है और अति करनेसे तो फिर हड्डियों में से कुछ सफेद अंश निकलने लगता है जिससे अन्तमें कई नपुंसक भी हो जाते हैं अथवा अकाल मृत्युके पंजे में भी आजाते हैं।

ग्रीस (यूनान) के महाज्ञानी तत्त्ववेत्ता सात्क्रेटीस (सुकरात) से किसीने पूछा "स्त्री-प्रसङ्ग कितने बार करना चाहिये?" उत्तर मिला "जन्म भरमें एक बार।" फिर पूछा "यदि इतनेमें तृप्ति न हुई तो?" "अच्छा फिर साल में एक बार करे।" "उतनेसे भी मन न माने तो?" "तो फिर महीनेमें एक बार करे।" "इतनेपर भी न रहा जाय तो?" "अच्छा फिर महीनेमें दो बार कर सकते हो;

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

परन्तु जल्दी मृत्यु होगी।" "इतनेपर भी शान्ति न मिले तो ?" "तो फिर ऐसा करे कि अपने कफ़नका सब सामान लाकर घरमें पहिले रखदे और फिर जैसा मनमें आवे वैसा किया करे। क्योंकि न मालूम किस समय उसकी मौत आजावे और उसे खाडाले।"

इस प्रकार हे शिष्य ! वैज्ञानिक लोग ऋषि मुनि जन तथा शास्त्र सभी इस 'वीर्य' नामक सर्वोत्तम सार धातुकी महिमा गाते हैं और इसके धारणको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। शिव-संहितामें भी लिखा है कि **"मरणं बिन्दु-पातेन"** (Sensuality is Death) अर्थात् वीर्यका नाश ही मृत्यु है। और ब्रह्मचर्य (वीर्य-रक्षा) ही जीवन है (Chastity is Life)। इसलिए सर्वश्रेष्ठ इस ब्रह्मचर्य तपको अवश्य धारण करना चाहिए। चाहे तुमने पहले अज्ञान-वश होकर अपना नाश किया हो तो भी हतोत्साह नहीं होना चाहिये। भूल सबसे होती है। यदि मनुष्य भटकता भटकता भी सीधे रास्तेपर आजाता है तो वह भटका हुआ नहीं माना जाता। इसलिए जो समय गया सो गया, अब जो रहा है उसके सदुपयोग करनेमें प्रमाद नहीं करना चाहिए।

शंका :— भगवन् ! आपके उपदेशसे मुझे अब ब्रह्मचर्य-पालनकी उत्कट इच्छा हो रही है; अतः कृपा करके कुछ ऐसे नियम बतलाइये जिससे मैं ब्रह्मचर्यका पालन कर सकूं।

उत्तर :— प्रिय वत्स ! तुम्हारी उत्कट इच्छा है तो **"ब्रह्मचर्य ही जीवन है"** इस पुस्तकानुसार मैं कुछ तुम्हें थोड़ेमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मचर्य-पालनके नियम बतलाता हूँ। जिन नियमोंके पालन करनेसे ब्रह्मचर्य-अवस्था (विद्यार्थी-अवस्था) में ही क्या, परन्तु गृहस्थमें रहकरके भी लोग ब्रह्मचारी बन सकते हैं। ऋषियों का सिद्धान्त है :—

"ऋतुकाले स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाऽऽश्रम-वासिनाम्॥"

—श्रीयाज्ञवल्क्य

अर्थात् ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे (धर्मपत्नीसे) विधियुक्त अर्थात् शास्त्राज्ञानुसार केवल सन्तानके हेतु समागम करने वाला पुरुष गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी ब्रह्मचारी ही है। श्रीमनु महाराज कहते हैं कि, "महीनेमें ऋतुकालमें केवल दो ही रात्रिमें जो धर्म-शास्त्रानुसार स्त्री-सेवन करता है वह धर्मात्मा पुरुष स्त्री रहते हुए भी ब्रह्मचारी है।"

(अ० ३ श्लो० ५०)

यहाँ ऋतुकाल शब्दका अर्थ है—स्त्रीके रजो-दर्शनके दिन से लेकर १६ (सोलहवें) दिन तकका समय। मनुस्मृतिमें भी आया है :—

"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः॥"

(अ० ३ श्लो० ४६)

अर्थात् शोणित गिरनेके दिनसे १६ रात्रि-पर्यन्त स्त्रीका ऋतुकाल माना जाता है। शास्त्र-निन्दित प्रथम चार दिन भी इसीमें सम्मिलित हैं। जैसे पहिले चार दिनोंमें स्त्री-सेवन करनेके लिए शास्त्र निषेध करता है, वैसे शेष दिनोंमें भी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यदि एकादशी, त्रयोदशी व चतुर्दशी आदि व्रतका दिन और चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण आदि विशेष अवसर तथा शिवरात्रि व नवरात्र आदि कोई महान् दिन आया हो, अथवा घरमें कोई चिन्ता-जनक दुर्घटना हुई हो वा अस्वस्थ अवस्था हो तो काम-रिपु चरितार्थ करना पूर्ण अधर्म व महापाप होगा। इसलिये गृहस्थ धर्मानुकूल ही चलना चाहिये। इससे ही लोग गृहस्थमें ब्रह्मचारी बन सकते हैं और घरमें जैसे चाहें वैसे शूरवीर श्रेष्ठ पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न कर सकते हैं।

शंका :— भगवन्! आपने कहा कि लोग जैसे चाहें वैसे शूरवीर श्रेष्ठ पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न कर सकते हैं; यह बात समझमें नहीं आई। मैं तो समझता था कि प्रारब्धके अनुसार ही पुत्र-पुत्रियाँ प्राप्त होती हैं, इसमें हमारी इच्छा तथा पुरुषार्थसे क्या होगा ?

उत्तर :— प्रिय वत्स! यह बात सत्य है कि सन्तानकी प्राप्तिमें प्रारब्ध-कर्म हेतु पड़ते हैं परन्तु वे प्रारब्ध-कर्म भी बनते तो पुरुषार्थसे ही हैं। जो कर्म हम करते हैं वे कर्म उस समय (करते समय) **पुरुषार्थ** कहलाते हैं और फल देते समय **प्रारब्ध** कहलाते हैं। अतः प्रारब्धको मानते हुए, पुरुषार्थ का महत्त्व कम नहीं होता। इस जन्ममें जैसे पहिले जन्मों में किए हुए कर्मोंका फल मिलता है, वैसे इस जन्ममें किए हुए कर्मोंका भी फल मिलता है, अर्थात् कुछ कर्म इस जन्म में भी फल देते हैं। इसी कारण इस जन्मका पुरुषार्थ भी सन्तानोत्पत्तिमें सहायक होता है। प्रारब्ध यदि शिथिल है तो तीव्र पुरुषार्थसे कट सकता है। अतः श्रेष्ठ पुत्रादि-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सन्तान-दायक प्रारब्ध यदि शिथिल है तो उसे शास्त्र और गुरु-जनोंके आदेशके अनुसार पुरुषार्थ करके मनो-वाञ्छित सन्तान प्राप्त किया जा सकता है। इस विषयमें विस्तारसे न कहकर मैं तुझे थोड़ा संकेत कर देता हूँ। हे शिष्य ! पूर्वजन्मोंके कर्मोंके अतिरिक्त यहाँकी चार पाठशालाओंका भी सन्तानके अन्तःकरणपर प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव के अनुसार सन्तान शूरवीर, तेजस्वी, ओजस्वी, विद्वान् आदि बन सकती है।

शंका :— भगवन् ! वे चार पाठशालाएँ कौनसी हैं, यह भी कृपा करके बतावें।

उत्तर :— हे शिष्य ! (१) गर्भ-पाठशाला (२) गोद-पाठशाला (३) गृह-पाठशाला और (४) बाह्य-पाठशाला। परन्तु हे तात ! संस्कार डालनेके नाते गर्भ-पाठशालाका महत्त्व सबसे अधिक है। जैसे पक्के घड़ेकी अपेक्षा कच्चे घड़ेपर नक्शा सुगमतासे तथा स्थायी निकल सकता है; उसी प्रकार गर्भ-अवस्थामें शूरवीरता, विद्वत्ता, भक्ति, अथवा ज्ञान आदि अन्य किसी भी प्रकारके जैसे संस्कार पड़ते हैं, वैसी ही शूरवीर, विद्वान्, भक्त अथवा ज्ञानी आदि रूपसे सन्तान पैदा होती है। इसी दृष्टिसे हम कह रहे थे कि लोग जैसे चाहें वैसे शूरवीर, विद्वान् आदि रूपसे श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।

शंका :— भगवन् ! आपकी कृपासे यह तो समझमें आगया कि गृहस्थ-समाज यदि पुरुषार्थ करे तो शूरवीर, ज्ञानी आदि रूपसे मनो-वाञ्छित सन्तान उत्पन्न कर सकता है। किन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

समझमें नहीं आया कि पुत्र अथवा पुत्रीके उत्पन्न करनेमें लोगोंका पुरुषार्थं सहायक कैसे होता है।

उत्तर :– हे शिष्य ! शास्त्रोंके अनुसार इस विषयमें यह संकेत है कि सन्तानकी इच्छावाला ऋतुकालके सोलह (१६) दिनोंमेंसे पहिलेके चार दिनोंको पूर्णतया वर्जित समझकर शेष बचे हुए बारह (१२) दिनोंमेंसे भी एकादशी, अमावस्या आदि उपर्युक्त विशेष दिनोंको छोड़कर जो युग्म-रात्रियाँ हैं, अर्थात् जो छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं आदि युग्म-रात्रियाँ हैं, उनमें शास्त्र-आज्ञा-अनुसार किसी एक अथवा अधिकसे अधिक दो रात्रियोंमें गृहस्थ धर्मका पालन करनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। तथा अयुग्म रात्रियोंमें अर्थात् पाँचवीं सातवीं, नवीं, ग्यारहवीं आदि रात्रियोंमेंसे किसी एक रात्रिको शास्त्र-विधि-अनुसार गृहस्थ धर्मका पालन करनेसे पुत्रीकी उत्पत्ति होती है। इस विषयमें स्मृति-वचन इस प्रकार है :—

"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।"

"तासामाद्याऽ-चतस्रस्तु वर्जनीयैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता. दश रात्रयः॥"

"पर्व-वर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रति-काम्यया।
युग्मासु पुत्रा जायन्ते पुत्र्योऽयुग्मासु रात्रिषु॥"

अतः हे शिष्य ! इस स्मृतिके कथनानुसार जो लोग ऋतुकालके बाद अर्थात् रजोदर्शनसे लेकर सोलह रात्रियोंके बाद सहवास करते हैं उन्हें सन्तानकी उत्पत्ति नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अतः उनका वह सहवास दानरूप नहीं अपितु विलास-मात्र है। अब हे शिष्य ! तुझे यह समझमें आगया होगा कि लोग गृहस्थमें भी ब्रह्मचर्य-पालन कर सकते हैं और शास्त्र-विधि-अनुसार पुरुषार्थ-द्वारा जैसे चाहें वैसे शूरवीरता आदि श्रेष्ठ-गुण-सम्पन्न पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न कर सकते हैं।

इसलिए हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें **ब्रह्मचर्य-पालनके नियम** बताता हूँ, ध्यान देकर सुनो :—

(१) **पवित्र-संकल्प** :– जिन संकल्पों (विचारों) में पवित्रता और आत्म-विश्वास भरा हुआ हो उन्हें **पवित्र संकल्प** कहते हैं। यदि सोते समय मनुष्य ऐसा सोचकर सोवे कि, "आज मैं चार बजे उठूंगा" तो निश्चय जानो कि उस मनुष्य की आँखें चार बजे अवश्य खुल जाएंगी। सामान्य विचारोंमें यदि ऐसी शक्ति है तो श्रद्धा व पवित्र-भाव-पूर्ण विचारोंमें कितनी प्रचंड शक्ति होती होगी, इसका तुम ही विचार कर सकते हो।

श्रीस्वामी शंकराचार्यजी महाराजने कहा है, "**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः**" अर्थात् ब्रह्मचर्य-संपन्न पवित्र मन मोक्षका कारण है तथा विषय-वासना-दूषित अपवित्र मन ही बन्धनका कारण है। क्योंकि मनुष्यकी सुगति व दुर्गति उसके भले बुरे संकल्पोंपर ही सर्वथा निर्भर है। पापमय विचारोंसे वह पापात्मा और पुण्यमय विचारोंसे वह निःसंदेह पुण्यात्मा बन जाता है। उच्च व पवित्र विचारोंसे, कितना ही पतित मनुष्य क्यों न हो, वह भी उच्चातिउच्च पवित्रात्मा बन सकता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसलिये पवित्र संकल्पोंका स्रोत बहाते हुए मनको ऐसी आज्ञा करनी चाहिये कि हे मन ! तू भगवान्‌को सर्वव्यापक समझ करके यह संकल्प कर कि, "हे भगवन् ! आप सर्वान्तर्यामी व परमकृपालु हैं और आपकी कृपासे ही मुझ में सुख, समृद्धि, शान्ति, आरोग्य, निर्भयता आदि शुभ गुण सञ्चार कर रहे हैं, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। पहिलेसे मैं अधिक स्वस्थ हूँ, अधिक निर्भय हूँ, अधिक शान्त तथा निर्विकारी हूँ। वृत्तियाँ अब प्रतिदिन पवित्र हो रही हैं, दृष्टिमें प्रत्येक स्त्रीके लिये मातृभाव समाया है, कानोंमें ब्रह्मचारियोंका यश गूंज रहा है। मैं अब ब्रह्मचर्यका पालन कर रहा हूँ, मेरा उद्धार हो रहा है।" इस प्रकार पवित्र संकल्प करने चाहियें।

(२) **पवित्र-मातृभाव-दृष्टि :—** श्रीहनुमान्‌जीकी तरह प्रत्येक स्त्रीकी ओर यदि देखना ही हो तो **"मातृवत् परदारेषु"** अर्थात् **"परतिय मातु-समान"** इसी पवित्र दृष्टिसे देखना चाहिये। वास्तवमें किसी स्त्रीकी ओर आँख उठाकर न देखना ही पवित्र दृष्टि बनाए रखनेका सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। यदि कोई स्त्री सामने आ भी जाय तो उसी क्षण अपनी दृष्टि नीची करलो, दृष्टि ऊपर न उठाओ और तत्काल मनमें भगवन्नाम स्मरण अथवा 'माँ' 'माँ' इस महामन्त्रका निरन्तर जप करने लग जाओ। निःसंदेह तुम्हारी पापमय वासनाएँ दग्ध हो जाएँगी और मन पूर्णतया पवित्र बना रहेगा। और कभी स्त्रियोंसे एकान्तमें बातचीत भी नहीं करनी चाहिये। भक्त वामन कहते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

" यदपि मात भगिनी सुता तऊ न बैठे पास ।
प्रबला हैं ये इन्द्रियाँ करो न तुम विश्वास ।।"

श्रीलक्ष्मणकी तरह प्रत्येक स्त्रीको जगज्जननी श्रीजानकीजी का ही रूप समझकर, मातृभावसे उसे मन ही मन प्रणाम करो ।

नीच पुरुष सती स्त्रियोंकी ओर भी पापकी ही दृष्टिसे देखा करते हैं। भला ऐसे नारकी पुरुषोंका कैसे उद्धार हो सकता है। भक्तदास वामन कहते हैं:—

" चटक मटक नित कुमति बन तकत चलत चहुँ ओर ।
वामन ! ऐसे अधम नर पड़े नरकमें घोर ।। "

ऋष्यमूक पर्वतपर जब श्रीसीतादेवीके गहने श्रीलक्ष्मणजी के सामने पहिचाननेके लिए रखे गए तब श्रीलक्ष्मणजी क्या ही उत्कृष्ट उत्तर देते हैं :—

" नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाऽभिवन्दनात् ।। "

" इन सब गहनोंमें केवल नूपुर ही मेरे पहिचानके हैं जो प्रतिदिन चरण-वन्दना करते समय मैं श्रीसीता माताके चरणों में देखता था। इन कुण्डलोंको तथा अन्य गहनोंको मैं नहीं जानता; क्योंकि चरणारविंदको छोड़कर मैंने दृष्टि उठाकर कभी ऊपर देखा ही नहीं। " अहह ! धन्य है श्रीलक्ष्मणजी आपकी यह आदर्श शिक्षा ! यही कारण था कि आप चौदह वर्ष तक अटूट ब्रह्मचर्य-पालन कर सके और मेघनाद जैसे प्रबल शत्रुको भी मार सके । मेघनाद तो केवल

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

'इन्द्र-जीत' ही था परन्तु आप उससे भी बढ़कर 'इन्द्रिय-जीत' थे। श्रीमच्छङ्कराचार्य कहते हैं:—"जितं जगत् केन ? मनो हि येन।" सत्य है, एकमात्र 'इन्द्रिय-जीत' ही सम्पूर्ण त्रैलोक्यको जीत सकता है।

(३) **सादी रहन सहन**:— ब्रह्मचर्य-रक्षाके लिए हमें अपना जीवन क्रम "Simple living and high thinking" अर्थात् "सरल जीवन और ऊँचे विचार" इस उपदेशके अनुसार अत्यन्त सीधे-साधे प्रकारका रखना होगा। और वैसे बड़प्पनका चिन्ह बल्कि रहस्य भी सादापन ही है। "Simpleness is itself greatness." संसारमें आज तक जितने महापुरुष हुए हैं वे सब सादी रहन-सहनसे ही हुए हैं।

और नकाशीदार लोटे या ग्लासमें जैसे सर्वत्र मैल भरा रहता है, उसी प्रकार सादी रहन-सहनको छोड़कर फैशनेबुल व चंचल स्त्री पुरुषोंमें भी काम, क्रोध, अहंङ्कारादि मल विशेष-रूपसे भरा रहता है। श्रीनारायणजी कहते हैं:—

"भीतरसों मैलो हियो, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलो, कौवा तन मन एक॥"

अतः यदि हम ब्रह्मचर्य-पालन करनेके लिये अपने हृदय को सरल व पवित्र बनाना चाहते हैं तो हमें ऊपरका व्यवहार, आहार, व वेष इत्यादि भी पवित्र व सादे रखने पड़ेंगे। इसलिए सादगी ही जीवन है और सजावट ही नाश है, यह तत्त्व-पूर्ण रीति सदा ध्यानमें रखनी चाहिये।

(४) **सत्संगति**:— सत्संगका अर्थ है सत् वस्तुका संग। सत् वस्तुकी प्राप्ति सत्पुरुषोंसे ही होती है। इसलिये

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सत्पुरुषोंके संगको भी सत्संग कहते हैं। सत्संगसे ही सत् और असत्का विवेक होता है, भले बुरेका ज्ञान होता है, किन्तु ऐसा सत्संग बिना भाग्यके नहीं मिलता। श्रीगोस्वामी-जीने भी कहा है:—

"बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥"

सत्य है "सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।" कैसे? जैसे, "पारस परसि कुधातु सुहाई।" जैसे सभी सुधारोंकी जड़ सत्संग है, उसी प्रकार सम्पूर्ण दुराचार और व्यभिचारकी जड़ एक कुसंगति ही है। पण्डित विष्णुशर्मा कहते हैं:—

"वरं प्राण-त्यागो न पुनरधमानामुपगमः।"

अर्थात्—प्राण त्याग देना अच्छा है किन्तु नीचोंके पास जाना तक बुरा है। 'जैसा संग वैसा रंग' यह प्रकृति का नियम है। जैसे धूएँके संगसे सफ़ेद मकान भी काला पड़ जाता है और लताके संगसे कीड़ा भी लताके समान हरा बन जाता है वैसे दुर्जनके साथ मनुष्य दुर्जन बन जाता है और सज्जनके साथ सज्जन। किसी कविने सही कहा है:—

"कामीके संग काम जागै है पै जागै है,
कायरके संग शूर भागै है पै भागै है।
काजरकी कोठरीमें कैसो हू सयानो जाय,
एक रेख काजरकी लागै है पै लागै है॥"

अतः ब्रह्मचारियोंको तथा उन्नति चाहनेवालोंको सज्जनों का संग अवश्य करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(५) **सद्ग्रन्थाऽवलोकन** :— जहाँ सन्मित्र व सज्जन-संगति दुर्लभ हो वहाँ सद्ग्रन्थोंकी संगति करनी चाहिये। सद्ग्रन्थों द्वारा हम संसारके एकसे एक महात्माकी संगति रातदिन यथेष्टरूपसे कर सकते हैं। जैसे स्थूल शरीरकी स्थितिको ठीक रखनेके लिए अन्न जल व वायु इत्यादिकी आवश्यकता है उसी प्रकार मानस ढाँचेको ठीक रखनेके लिए सद्ग्रन्थों का अवलोकन भी अत्यन्त आवश्यक है।

किन्तु उपन्यास तथा शृङ्गार-रस-पूर्ण ग्रन्थ कभी नहीं पढ़ने चाहियें। उनको पढ़ना मानो अपने हाथ अपने मकानमें दियासलाई लगाना है। क्योंकि शृङ्गारी पुस्तकें ब्रह्मचारीको भी व्यभिचारी वना देती हैं। अच्छे अच्छे सच्चरित्र बालक बालिकाएँ भी कुग्रन्थोंके पठन व श्रवणसे दुश्चरित्र बन गई हैं। अतः कुग्रन्थोंका सर्वथा त्याग करके सद्ग्रन्थ व चरित्र-ग्रन्थोंको ही पढ़ना चाहिये।

(६) **घर्षण स्नान** :– ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिए मन और शरीरका पवित्र रहना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि गंदे शरीरसे मन भी गंदा बन जाता है। गन्दगी रोगका घर है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको चाहिये कि वह शरीरकी स्वच्छता में कभी आलस्य न करे। शरीरको स्वच्छ रखनेके लिए घर्षण-स्नान अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि घर्षण-स्नानसे त्वचाके सब छिद्र खुलजानेके कारण भीतरसे असंख्य दोष पसीनेके रूपमें बड़ी आसानीसे बाहर निकल जाते हैं और बाहरकी शुद्ध हवा भीतर जानेसे शरीर नीरोग बन जाता है। घर्षण-स्नानसे मनुष्य अधिक तेजस्वी, नीरोग,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निर्विकारी, ब्रह्मचारी और दीर्घंजीवी सहजमें बन सकता है। घर्षण-स्नानकी शास्त्रीय विधि :— स्नानके लिए प्रातः-काल सबसे अच्छा समय है। जल ताज़ा व स्वच्छ होना चाहिए। अपने हाथोंसे खींचा हुआ कुएँका जल बहुत अच्छा होता है। स्नानके पहिले सारा शरीर सूखे तौलिए से खूब जोरसे रगड़ो, रगड़नेमें कुछ कमी न करो और कुछ डरो भी मत। पर हाँ, उचित जगहपर उचित ज़ोर लगाओ, नहीं तो मारे रगड़ोंके आँखें ही फोड़ लोगे। तौलिएसे रगड़नेके बाद हाथसे रगड़ो। हाथसे रगड़नेसे शरीरमें एक बिजली पैदा होती है जो शरीरके तमाम रोगोंको हटाती है। इसलिए शरीरका प्रत्येक अवयव अच्छी तरहसे रगड़ना चाहिए। पेटको ठीक रगड़नेसे पेटके अनन्त विकार नष्ट होते हैं और शौच भी साफ होता है। पहिले सिर और गला भिगोओ, फिर गीले तौलिएसे क्रमशः हाथ, कंधे, सीना, पेट, पीठ, कमर, टाँग आदि खूब रगड़ो। फिर सिरपरसे सम्पूर्ण शरीरपर यथेष्ट पानी डालो। तत्पश्चात् सूखे तौलिएसे सम्पूर्ण शरीरको पोंछ डालो। क्योंकि शरीर को साफ नहीं पोंछनेसे ही गीलापनके कारण मनुष्यको प्रायः दाद, खुजली आदि हुआ करती है और खुजलाते २ लड़कोंको बुरी आदतें भी लग जाती हैं। फिर शरीरके सूखजानेके बाद अपने वस्त्र पहनलो। देखो एक ही दिनके घर्षण-स्नानसे तुम्हारे शरीरमें कितना उत्साह, आनन्द, फुर्ती व काँति दिखाई देती है। जब एक ही दिनमें इतना हो जाता है तो नित्यप्रति इस प्रकार घर्षण-स्नान करनेसे मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का आनन्द, आरोग्य, शान्ति व काँति और भी अधिक बढ़ेगी, इसमें सन्देह ही क्या है ।

(७) **सादा व ताज़ा अल्पाहार** :—जिसे ब्रह्मचारी बनना है उसे सादा और अल्पाहारी अवश्य ही बनना पड़ेगा । अधिक भोजन करनेवाला सौ जन्ममें भी ब्रह्मचारी नहीं बन सकता । क्योंकि जोरकी आँधी जैसे पेड़ोंको उखाड़ डालती है, वैसे ही कामदेव पेटू मनुष्यको पटक २ कर मार डालता है । इसीलिए यदि तुम्हें वीर्यवान् और आरोग्यवान् बनना हो, स्वप्नदोषसे और अकाल मृत्युसे बचना हो, तो तुम्हें अवश्य ही सादा और अल्प आहार करना होगा ।

एक समय ईरानके बादशाह "वहमन" ने एक श्रेष्ठ वैद्यसे पूछा "दिन रातमें मनुष्यको कितना खाना चाहिए ?" उत्तर मिला "सौ दिरम्" अर्थात् उनतालीस (३९) तोला ।" फिर पूछा "इतनेसे क्या होगा ?" हकीम बोला "शरीर-पोषणके लिए इससे अधिक नहीं चाहिये; इससे अधिक जो कुछ खाया जाता है वह केवल बोझ ढोना और आयुको खोना है ।" यह नियम है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन, क्रोध, कलह आदि बातें जितनी बढ़ाई जायँ उतनी ही बढ़ती जाती हैं और जितनी कमकी जायँ उतनी ही कम होती हैं । जो मनुष्य अपने भोजनको बढ़ाता जाता है, वह आलसी और बेकार बनता जाता है । भक्तदास वामन कहते हैं :—

"अधिक वायुके भरनसे, फूटबाल फट जाय ।
बड़ी कृपा भगवानकी, पेट नहीं फट जाय ॥"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"यद्यपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुजकी देह।
रोग भयंकर होत हैं, बने नरकका गेह॥"

अतः हमें स्वास्थ्यके लिए भोजन करना चाहिए, न कि रोगी बननेके लिए। श्रीमनु महाराज कहते हैं:—

"अनारोग्य-मनायुष्य-मस्वर्ग्यं चाऽतिभोजनम्।
अपुण्यं लोक-विद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥"

अतिभोजन रोगोंको वढ़ानेवाला, आयुको घटानेवाला, नरकमें पहुँचानेवाला, पापको करानेवाला और लोगोंमें निन्दित करानेवाला है। अतः बुद्धिमान्को चाहिये कि किसी बढ़िया पदार्थके स्वादसे आवश्यकतासे अधिक कदापि न खाए।

भक्तदास वामन कहते हैं:—

निकम्मा कौन है? पेटू। महापुरुषकी क्या पहिचान है? जो अपनेको सबसे छोटा समझता हो। महापुरुष कैसे बनें? मनको वशमें करनेसे। मन कैसे वशमें हो? कम खानेसे। कम खाना कैसे सीखें? आहारको थोड़ा घटानेसे। आहार कैसे घटे? रोज़ सादा और प्राकृतिक भोजन करनेसे। सादा भोजन कैसे प्रिय लगे? भूखके समय खानेसे और प्रत्येक ग्रासको खूब अच्छी तरह चबानेसे। भूखका समय कैसे जानें? नियम बाँध लेनेसे और बीचमें कुछ भी न खानेसे। यदि मनुष्य सादा और अधिक नमक मिर्च मसालोंसे रहित सात्त्विक भोजन करे तो ब्रह्मचर्यको बड़ी आसानीसे धारण कर सकता है। और प्रारब्धके अनुकूल होनेपर सौ (१००) वर्षतक सुखीरूपसे जीवित रह सकता है। इसीके बलपर सुप्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अमेरिकन पत्रकार एडिसन कहते हैं "मैं सौ वर्ष पर्यन्त अवश्य जीवित रहूँगा।" "If you can conquer your tongue only you are sure to conquer your whole body and mind at ease" "यदि तुम केवल जिह्वाको वशमें करो तो तुम्हारे मन व शरीर अनायास वशमें हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" यदि तुम जिह्वाको वशमें नहीं करोगे तो मन वशमें न रहनेके कारण, ब्रह्मचारी बनना असंभव है। भक्तदास **वामन** कहते हैं:—

"पालो पत्री खाय जो, उन्हें सतावे काम।
नितप्रति हलवा निगलते, उनकी जाने राम॥"

अतः जिन्हें वीर्यकी रक्षा करनी है, उन्हें सदा सादा स्वच्छ और स्वल्प भोजन करना चाहिये। अधिक मिर्च मसाले बड़े कामोत्तेजक होते हैं। लाल मिर्चोंको तो बिल्कुल नहींके बराबर ही खाना चाहिये। इस प्रकार यदि तुम रहो तो ब्रह्मचर्य पालन करना अनायास हो जायगा।

(८) **निर्व्यसनता :—** जो पुरुष दुर्व्यसनी है, वह कभी ब्रह्मचारी नहीं बन सकता। वैसे तो शराब, जूआ इत्यादि कई दुर्व्यसन हैं किन्तु आजकल तम्बाकूका दुर्व्यसन सबसे बढ़ा हुआ है। अमेरीकन डाक्टरोंका कथन है कि इससे वीर्य फ़ोरन उत्तेजित होकर पतला पड़ता है और उससे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक व सामाजिक भयंकर हानि होती है। इससे खाँसी, टीबी व कैंसर आदि भयंकर बीमारियाँ होती हैं। शुद्ध हवाको ज़हरीली बनाकर अपने साथ ही साथ लोगोंका भी स्वास्थ्य बिगाड़ना घोर पाप है।

(९) **दो बार मल-मूत्र-त्याग :—** शौच दो बार जानेकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आदत डालनी चाहिए। यदि दूसरी बार दिशा न मालूम हो तो भी जाना चाहिए। कुछ दिनके बाद आपसे आप दिशा होने लगेगी। अनेक रोगोंकी जड़ मल-बद्धता (कब्ज़ी) ही है। और मल-बद्धता ब्रह्मचर्यका घातक है; क्योंकि मलकी गर्मीके कारण भीतरकी सब इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं और इन्द्रियोंके क्षुब्ध होनेपर फिर मनुष्य रोगी होनेपर भी बड़ा कामी बन जाता है। इसलिये पेटको साफ़ रखनेके लिए सुबह शाम दो बार नियमित समयपर मलका त्याग करना परम आवश्यक है।

(१०) **इन्द्रिय-स्नान :—** शौचके समय इन्द्रियको स्वच्छता से धोना चाहिए। पेड़की जड़को पानी देनेसे जैसे सम्पूर्ण पेड़ हरा भरा और चैतन्य-मय बन जाता है वैसे ही तमाम नसोंकी जड़को (उपस्थ इन्द्रियके मुखको) ठंडे पानीकी धारसे ठंडाकरनेसे सम्पूर्ण शरीर भी ठंडा व शान्त हो जाता है। मनकी चंचलता नष्ट होती है और स्वप्नदोष भी नहीं होता। हमारे पूर्वज लोग जो लघुशंकाके समय पानी साथमें ले जाते थे, उसका कारण यह था कि वे इस इन्द्रिय-स्नानके गुप्त रहस्यको जानते थे।

(११) **नियमित-व्यायाम :—** जिसे ब्रह्मचर्यका पालन करना है उसे प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करना अत्यन्त आवश्यक है। व्यायामसे मुख मोड़नेवाला मनुष्य कभी निर्विकारी और सच्चरित्र नहीं बन सकता। व्यायामसे मन और तन दोनों नीरोग, निर्विकार और पुष्ट बन जाते हैं। जिससे कसरत न बन पड़ती हो, ऐसे बहुत दुर्बल रोगी तथा क्षयी मनुष्यको टहलनेसे बढ़कर सुखकर तथा आरोग्य-वर्धक दूसरा व्यायाम नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(१२) जल्दी सोना और जल्दी जागना :—

जिन्हें वीर्य-रक्षा करनी है और आरोग्य-संपन्न तथा भाग्यवान् बनना है उन्हें जल्दी सोने व जल्दी जागनेका अभ्यास अवश्य ही डालना चाहिए। दस बजेके पहिले ही सो जाना चाहिए और चार बजेके पहिले उठ जाना चाहिए। क्योंकि स्वप्नदोष प्राय: रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ही हुआ करता है। प्रात:कालको अमृतवेला कहते हैं। सचमुच सृष्टि के इस प्रातःकालिक दिव्य अमृतको त्यागनेवाला पुरुष जल्दी बूढ़ा व मृतक तुल्य हो जाता है। "Early to bed and early to rise; makes a man healthy, wealthy and wise" "प्रात:कालमें उठनेवाला मनुष्य आरोग्यवान्, भाग्यवान् और ज्ञानवान् होता है।" अतः जिन्हें पूर्वजोंकी तरह वीर्यवान्, ज्ञानवान् तथा सामर्थ्य-संपन्न बनना हो उन्हें प्रतिदिन ब्राह्म-मुहूर्तमें ही उठना चाहिए और सबसे पहिले आत्म-चिंतन करना चाहिए; क्योंकि प्रात:-कालमें जैसा चिंतन किया जाता है वैसा ही दिन भर बना रहता है। और माता, पिता व गुरुजनों को सोते व जगते समय चरण छूकर प्रणाम करना चाहिए। यदि वे न हों तो हृदयमें उनका ध्यान करके नमस्कार करना चाहिये।

(१३) योगासनाभ्यास :— योगासन शारीरिक विकास व ब्रह्मचर्यके लिए बहुत उपयोगी हैं। योगासनोंका अभ्यास शौच, स्नान, व्यायाम आदिसे निपट कर, बिना कुछ खाये पिये, प्रातः सायं ऐसे स्थानपर करना चाहिये जहाँ शुद्ध वायु आती हो और प्रकाश भी पर्याप्त हो। किन्तु याद रहे कि (१) योगासनोंका अभ्यास करते समय सादा सात्त्विक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अल्पाहार अत्यन्त आवश्यक है। (२) आसनोंका अभ्यास किसी अभ्यासी गुरु-द्वारा ही करना चाहिए। (३) आसनों का अभ्यास करते समय श्वासका अन्दर आना और बाहर निकलना ये दोनों क्रियायें बहुत धीरे धीरे होनी चाहियें। (४) यदि शरीरमें वीर्य-सम्बन्धी कोई विकार हो तो आसनों का अभ्यास करते समय गुदा-संकोचनपर (मूल-बन्धपर) विशेष ध्यान देना चाहिए। यह वीर्य-रक्षामें अत्यन्त सहायक पड़ता है।

(१४) **उपवास** :— "**आहारं पचति शिखी दोषान् आहार-वर्जितः**" ।। आयुर्वेद ।। अर्थात् अग्नि भोजनको पकाती है और उपवास दोषोंको पकाता है अर्थात् नष्ट करता है।" उपवास अपनी शक्ति-अनुसार ही रखना चाहिए। उपवास से शारीरिक व मानसिक दोष समूल नष्ट हो जाते हैं और आत्म-शक्ति बढ़ती है। तथा मनमें जितनी कामोत्तेजक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं वे सब नष्ट होने लगती हैं; इसलिए ब्रह्मचर्यके लिए उपवास बहुत ही हितकर है।

(१५) **दृढ़ प्रतिज्ञा** :— जितने भी कार्य होते हैं उनकी सिद्धिमें दृढ़ प्रतिज्ञा प्रधान कारण मानी जाती है; क्योंकि दृढ़ प्रतिज्ञासे मनुष्यमें एक अलौकिक शक्ति उत्पन्न होती है जिससे उनके कार्य-सिद्धिमें जितनी भी बाधाएँ आती हैं, उन सबको वह ठुकराकर अपने लक्ष्यको प्राप्त कर सकता है और श्रीभीष्म पितामह, श्रीलक्ष्मण व श्रीअर्जुन आदि महापुरुषोंकी तरह, प्रलोभन-पूर्ण परिस्थितियोंमें भी अपने मनको विचलित होने नहीं देगा। इसलिए ब्रह्मचर्य आदि महान् सिद्धियोंको प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको दृढ़-प्रतिज्ञ रहना ही चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(१६) **सततोद्योग** :— यदि तुम्हें ब्रह्मचारी बनना है तो तुम्हें मनको सदा किसी न किसी उद्योग (कार्य) में लगाए रखना चाहिए। क्योंकि बेकार रहनेसे साधारण मनुष्योंके मनमें अशुभ संकल्प उत्पन्न हुआ करते हैं। कहा भी है कि, "Empty mind is devil's workshop" अर्थात् बेकार मन शैतानका घर है।" यदि तुम शुभ कर्मोंमें अथवा आत्म-चिन्तनमें लगे रहोगे तो मनको कभी अशुभ संकल्प करनेका अवसर ही नहीं मिलेगा। कहा है :– "Constant occupation prevents temptation" अर्थात् शुभ कर्मोंमें लगे हुए मनुष्यके पास प्रलोभन नहीं आता। इसलिए ब्रह्मचर्यमें सहायक पवित्र मनको कायम रखनेके लिए सततोद्योगी रहना चाहिए।

(१७) **ईश्वर-भक्ति** :— अपने मनको शान्त व पवित्र बनानेके लिए 'भगवद्-भक्ति' एक-मात्र सबसे श्रेष्ठ साधन है। क्योंकि यह नियम है कि जब जिस किसीकी भक्ति जिस भावनासे की जाती है उस समय मन भी उसी भावनाके अनुरूप ही बन जाता है। और भगवद्-भक्ति करते समय उपासककी वृत्ति ईश्वरको सबसे श्रेष्ठ पवित्र व शुद्धरूपसे ग्रहण करती है और इस प्रकार ग्रहण करनेसे उपासककी बुद्धि (वृत्ति) भी स्वयं सबसे श्रेष्ठ, पवित्र व शुद्ध होने लग जाती है। इसलिए अपने मनके अशुभ संकल्प, कामोत्तेजक भावनाओं व अपवित्रताको नष्ट करनेके लिए ईश्वर-भक्ति अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रकार हे शिष्य ! ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिए कई

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

साधन, "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" 'ब्रह्मचर्य' आदि पुस्तकों में लिखे हुए हैं। मैंने तुम्हें प्रधान साधन थोड़ेमें बताए हैं। यदि इन नियमोंको सुनकर, मनन करके इनपर चलोगे तो अवश्य तुम ब्रह्मचर्यका पालन कर सकोगे।

भर्छुने भी सोचा कि "मैंने इतनी आयु तो भोगोंमें गवाँ दी; अब तो मुझे वैराग्य-संपन्न व सचेत होकर ब्रह्मचर्य आदि साधनों द्वारा चित्तको वशमें करके एकान्तमें आत्मानन्द का अनुभव करना चाहिए।

क्योंकि एकान्तमें जो आनन्द है वह कहीं नहीं है। कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीय उपनिषद्में आया है कि :—

जो नीरोग, जवान, दृढ़, स्थूल, बलवान् व विद्वान् राजा है, उसमें मनुष्योंके सुखोंका अन्त है अर्थात् सब मनुष्योंसे उसे अधिक सुख है। उससे सौगुना अधिक सुख मानव-गन्धर्वको (एक अच्छे गवैयेको गाते समय) है। उससे सौगुना अधिक देव-गन्धर्व (देवताओंके सामने गान करनेवालों) को है। उनसे सौगुना अधिक सुख पितृलोकमें पितरोंको है। उनसे सौगुना अधिक सुख अजानज देवोंको है। उनसे सौ गुना अधिक कर्मदेवोंको [जो कि अग्निहोत्रादि कर्म करके देवत्वको प्राप्त होते हैं, उनको] है। उनसे सौगुना अधिक मुख्यदेवों (ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु इन इकतीस) को है। उन मुख्यदेवोंसे सौगुना अधिक सुख इन्द्रको है। इन्द्रसे सौगुना अधिक सुख गुरु बृहस्तपतिको है। गुरुसे सौ गुना अधिक सुख प्रजापतिको है। प्रजापतिसे सौगुना अधिक सुख ब्रह्माजीको है, जिन्हें कभी दुःख होता ही नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सोरठा

"राजातें ब्रह्मान्त, कह्यो जु सुख सगरो लहै।
रहत सदा एकान्त, काम-दग्ध जाको न हिय ॥"

अर्थात् इस प्रकार राजासे लेकर ब्रह्मा तक जितना भी सुख तैत्तिरीय श्रुतिने बतलाया है, उतना सारा सुख, काम-वासनाओं (इच्छाओं) से रहित मनवाले ज्ञानीको एकान्त देशमें आत्म-चिन्तन करते समय प्राप्त होता है।

इस प्रकार सोचकर वह भर्छु मन्त्री वनमें कन्द-मूलों से अपना जीवन निर्वाह करता हुआ, वहीं एक वट-वृक्षके नीचे अपना आसन लगा कर एकान्त-देशमें आत्म-चिन्तन (साक्षी और ब्रह्मकी एकताके चिन्तन) द्वारा आत्मानन्द का अनुभव करने लगा।

जब यह वृत्तान्त मन्त्रियोंने सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए; किन्तु उन्हें यह चिंता भी हुई कि, 'यदि राजा कभी शिकारके लिए उसी वनमें जाते समय भर्छुको देख लेंगे तो हम सब झूंठे बन जायँगे और राजा हम सबको दण्ड देंगे।'

तब वे सब आपसमें मिलकर मन्त्रणा (सलाह) करके राजाके पास जाकर कहने लगे कि, "हे राजन्! हमें पता लगा है कि वह भर्छु मन्त्री मरनेके बाद प्रेत बनकर इस समीपवाले वनमें घूमता रहता है; अतः कृपया आप इस वनमें कभी न जायँ। क्योंकि वह जिसे देखता है उसके साथ बात-चीत करनेके बहानेसे उसे मार डालता है, परन्तु जो उसे देखते ही भाग जाता है, वह बच जाता है।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार उन मन्त्रियोंके झूंठे वचनोंको, बिना सोचे ही राजाने सच्चे मान लिये। और एक बार शिकार खेलते हुए राजा वहीं जा पहुँचे जहाँ भर्छुं वृक्षके नीचे बैठे थे। बस उसे देखते ही [मन्त्रियोंके डाले हुए झूठे संस्कारोंके कारण असली भर्छुंको देखनेके बाद भी उसे प्रेत मान कर] राजा वापिस घोड़ेको लौटाकर भागने लगे। भर्छुंने बुलानेके लिए आवाज़ भी दी, किन्तु आवाज़को सुन कर राजाको और भी अधिक भय हुआ और जल्दी जल्दी उस वनसे बाहर निकल गया।

जिस प्रकार हे शिष्य! जब उस राजाने उन ईर्ष्यालु मन्त्रियोंके असत्य वचन सुने, तब भर्छुंके प्रेत होनेका उसे निश्चय हो गया और भर्छुंको प्रत्यक्ष सामने देखकर भी उसको प्रेत समझकर वहाँसे भाग गया, ठीक इसी प्रकार जब कोमल हृदयवाले जिज्ञासु जन द्वैत-वादियों (भेद-वादियों) के वेद-विरुद्ध असत्य वचन (जैसे जीव जन्मने मरनेवाले हैं व ब्रह्मसे भिन्न हैं इत्यादि असत्य वचन) सुनते हैं, तब अपने जीवपनेका और ब्रह्मसे अलगपनेका निश्चय उन्हें इतना दृढ़ हो जाता है कि फिर ब्रह्म-ज्ञानियोंसे अद्वैत-वार्ताके सुननेसे ब्रह्मसे अभिन्न सत्-चित्-आनन्द अद्वितीय अपने असली स्वरूपका प्रत्यक्षरूपसे भान होनेपर भी अपने आपको कर्त्ता, भोक्ता तथा जन्मने मरनेवाला व ब्रह्मसे भिन्न जीव समझकर जन्म मरणके चक्करमें भटकते रहते हैं।

इसलिए हे शिष्य! जब तक तुम द्वैत-वादियों (भेद-वादियों) के वचन सुनते रहोगे तथा उन्हें सत्य मानते

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रहोगे तब तक तुम्हें ब्रह्मसे अभिन्न आत्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता। क्योंकि भेद-भावनाके हृदयमें रहनेसे अभेद-भावनाका पूर्णरूपसे उदय नहीं होता। यदि थोड़ा उदय होता भी है तो फिर भेद-वादियोंके वचनोंको सुननेसे वह अभेद-भावना शिथिल हो जाती है। और जब तक भेद-भावना रहेगी तब तक "द्वितीयाद् वै भयं भवति" इस श्रुतिके अनुसार भय रहेगा ही और जब तक भय इत्यादि दोष अन्तःकरणमें हैं तब तक जन्म मरणका चक्र नहीं छूट सकता। इसलिए हे शिष्य! यदि तुम्हें जन्म मरणादि दुःखरूप संसारसे छूटना है तो जब तक अपरोक्ष ज्ञान नहीं हुआ है तब तक भेद-वादियोंके वेद-विरुद्ध वचन जैसे कानमें न पड़ें वैसा ही यत्न करना चाहिये अर्थात् भेद-वादियोंके संगको छोड़कर, केवल अद्वैत-वादी ब्रह्म-ज्ञानियों का ही संग करना चाहिये; जिससे तुम्हें आत्म-ज्ञान प्राप्त होगा और इस संसारके दुःखोंसे छूट जाओगे।

शंका :— भगवन्! यह तो मुझे समझमें आ गया कि मेरा कल्याण अद्वैत-वादी ब्रह्म-निष्ठ गुरुके सिवा नहीं हो सकता; किन्तु आपने कहा था कि गुरु और वेद भी मिथ्या हैं, तो मिथ्या गुरु और वेद इस मिथ्या जन्म-मरणरूपी संसार-दुःखको कैसे नष्ट कर सकेंगे, इस मेरी पहिलेवाली शंकाका निवारण नहीं हुआ है; सो कृपा करके इसका निवारण कीजिये।

उत्तर :— हे शिष्य! मिथ्या संसारकी निवृत्ति मिथ्या गुरु-वेदसे ही हो सकती है। यदि गुरु और वेद सत्य होते तब तो उनसे मिथ्या संसारकी निवृत्ति नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्योंकि यह नियम है कि "मिथ्या (कल्पित) वस्तुकी निवृत्ति मिथ्या पदार्थसे ही हो सकती है। जैसे सपनेका मिथ्या शेर सपनेकी मिथ्या बन्दूकसे ही मर सकता है, सपनेकी कल्पित बीमारी सपनेके कल्पित वैद्यकी कल्पित औषधि (दवा) से ही नष्ट हो सकती है; इस प्रकार इस मिथ्या (कल्पित) जन्म-मरण-रूप संसारकी निवृत्ति, मिथ्या गुरु द्वारा मिथ्या वेदके सुननेसे उत्पन्न हुए मिथ्या ज्ञानसे ही हो सकती है। सत्य वेद और गुरु इस मिथ्या संसारकी निवृत्तिके लिए अपेक्षित नहीं हैं। हे शिष्य ! इस बातको समझानेके लिए मैं तुझे एक राजाकी कहानी सुनाता हूँ।

कोई एक राजा अपने महलके शयन-भवनमें शय्यापर सोया हुआ था। उस महलके चारों तरफ योद्धा लोग शस्त्र धारण किए हुए खड़े थे। कोई पक्षी भी उस शयन-भवनमें प्रविष्ट नहीं हो सकता था। इस प्रकार चारों तरफसे प्रबन्ध किये हुए उस शयन-भवनमें सोये हुए उस राजाने सपनेमें देखा कि गीदड़ीने आकर उसके पाँव को पकड़ लिया है। राजा बहुत चिल्लाए किन्तु किसी बाहरके योद्धाने सहायता नहीं की। अन्तमें राजाने स्वयं अपनी लाठी गीदड़ीके सिर पर मारी। लाठी लगते ही गीदड़ी मर गई किन्तु पाँवमें घाव हो गया। तब वह राजा सपनेमें अपनेको दरिद्र समझकर स्वयं ही जर्राह (मल्लम-पट्टी करनेवाले) के पास गया। और मल्लम-पट्टी करनेके लिये जर्राहसे प्रार्थना की। किन्तु जर्राहने कहा कि "पैसे लाओ तो मल्लम दूँगा अन्यथा नहीं।" उस समय

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

राजाके पास एक पाई भी नहीं थी। अतः अन्तमें वह राजा दुःखी होकर वापस लौटा। और मनमें सोचने लगा, "यदि मेरे पास पैसे होते तो वह जर्राह घरपर दौड़ता आता। किन्तु इसका दोष नहीं, असलमें सारा संसार ही स्वार्थी है।" सही कहा है :—

"ऐसै जग स्वारथको सारो।
बिन स्वारथको काको प्यारो॥"

इतनेमें एक महात्मा मिले। वह राजा महात्माके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा, "भगवन् किसी प्रकार भी मेरे इस घावको ठीक करिये, मैं बड़ा दुःखी हुँ। तब महात्माने अपने पास पड़ी हुई जड़ी बूटीसे उसके घावको ठीक कर दिया।

ठीक इसी प्रकार हे शिष्य! यह ब्रह्मस्वरूप साक्षी चेतन (आत्मा) रूप राजा, इस माया द्वारा रचे हुए संसार रूप सपनेमें अपने आपको जीवरूप दरिद्र समझ रहा है। इसके कल्पित सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत अन्तःकरणरूपी पाँवमें अविद्यारूप गीदड़ीने काटकर जन्म-मरणादि दुःखरूप घाव कर दिया है। अब इसका असली स्वरूप आत्मदेव राजा होता हुआ भी यह अपने आपको अज्ञानसे कर्त्ता, भोक्ता जन्मने मरनेवाला जीव समझकर, द्वैतवादी रूप जर्राहके पास जाता है। किन्तु वे स्वार्थी लोग द्वैतकी भावनाको और डालकर उस अविद्यासे किये हुए जन्म-मरण-रूपी घावको और बढ़ा देते हैं। जब यह जीव भटकता भटकता किसी ब्रह्म-ज्ञानी-रूपी महात्माके पास पहुँचता है

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तब वह ब्रह्म-ज्ञानरूपी जड़ी बूटीसे इस जीवके अविद्यासे किये हुए जन्म-मरण आदि संसार-दुःख-रूपी घावको मिटाकर ब्रह्म-रूप बना देता है अर्थात् जीवपनेकी भ्रान्ति को हटाकर उसे अपने असली स्वरूपका निश्चय करवाकर, नित्य प्राप्त ब्रह्मकी प्राप्ति करवा देता है।

हे शिष्य! अब तुम्हें समझमें आगया होगा कि जैसे सपनेकी गीदड़ी भी मिथ्या थी, और उसका किया हुआ घाव भी मिथ्या था तो उस मिथ्या घावकी निवृत्ति भी मिथ्या (सपनेवाले) महात्माकी दी हुई मिथ्या जड़ी बूटीसे ही हुई, इसी प्रकार यह अविद्या भी मिथ्या (कल्पित) है और इसका किया हुआ जीव-भाव व जन्म-मरणादि दुःख-रूप संसार भी मिथ्या ही है और इस मिथ्या संसारकी निवृत्ति भी मिथ्या सद्गुरु-द्वारा मिथ्या वेद (उपनिषद्) सुननेसे उत्पन्न हुए मिथ्या (कल्पित) आत्म-ज्ञानसे ही हो सकती है। इसलिए (जब सारा संसार ही मिथ्या है तो गुरु और वेद भी संसारमें ही हैं; अतः मिथ्या माने जाते हैं) यद्यपि गुरु-वेद मिथ्या हैं तथापि उन्हींसे ही इस मिथ्या संसारकी निवृत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

और हे शिष्य! जो तुमने मरुस्थलके जल और प्यास का उदाहरण देकर कहा था कि जैसे मिथ्या मृगतृष्णाका जल प्यासकी निवृत्ति नहीं कर सकता, वैसे मिथ्या गुरु और वेद भी संसारकी निवृत्ति नहीं कर सकते, वह तुम्हारा कहना ठीक नहीं था; क्योंकि :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"आपसमें सम-सत्ता जिनकी, लखि साधक-बाधकता तिनकी ।
सम-सत्ता भव-दुख गुरु-वेदा, यों गुरु-वेद करत भव-छेदा ॥"

अर्थात् जिन पदार्थोंकी आपसमें समान (एक) सत्ता होती है, वे ही आपसमें साधक व बाधक बना करते हैं। जैसे जाग्रत्की मिट्टी जाग्रत्के घड़ेकी ही साधक (कारण) बन सकती है, न कि सपनेके घड़ेकी; और जाग्रत्की, अग्नि सपनेकी लकड़ीकी बाधक (नाशक) नहीं बन सकती किन्तु जाग्रत्की लकड़ीकी बाधक तो बन ही सकती है। इससे यह सिद्ध होता है कि एक सत्तावाले ही आपसमें साधक व बाधक बना करते हैं। किन्तु जो तुमने मृग-तृष्णा-जल और प्यासका उदाहरण दिया था वह ठीक नहीं है; क्योंकि मृग-तृष्णाका जल मिथ्या (प्रातिभासिक) है और प्यास सच्ची (व्यावहारिक) है। इसलिए दोनोंकी सत्ता एक न होनेके कारण प्रातिभासिक जलसे व्यावहारिक प्यास नहीं मिट सकती। व्यावहारिक प्यास तो व्यावहारिक जलसे (कुएँ इत्यादिके जलसे) ही मिट सकती है।

किन्तु यहाँ प्रकृत (वर्तमान प्रसंग) में तो भव-दुःख अर्थात् जन्म-मरण-रूप संसार-दुःख और गुरु-वेद, दोनों मिथ्या हैं अर्थात् दोनोंकी सत्ता एक है; अतः मिथ्या गुरु-वेदसे इस मिथ्या संसारकी निवृत्ति हो सकती है।

शंका :— भगवन् ! प्रातिभासिक व व्यावहारिक शब्दका अर्थ क्या है, यह कृपा करके बतलाइये।

उत्तर :— हे शिष्य ! ये दोनों शब्द सत्ताओंके नाम हैं। सत्ता तीन प्रकारकी मानी जाती है। (१) पारमार्थिक सत्ता

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(२) व्यावहारिक सत्ता (३) प्रातिभासिक सत्ता ।

(१) **पारमार्थिक सत्ता :**— जिसका तीनों कालोंमें बाध न हो सके, अर्थात् जो किसी भी कालमें मिथ्या सिद्ध न हो सके उसकी सत्ता (अस्तित्व) पारमार्थिक मानी जाती है। चेतन (ब्रह्म) का बाध कभी नहीं होता, इसलिए **पारमार्थिक सत्ता केवल चेतनकी ही है।**

(२) **व्यावहारिक सत्ता :**— जिस पदार्थका ब्रह्मज्ञानके बिना बाध [अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) मिथ्या निश्चय] न हो सके, उस पदार्थकी व्यावहारिक सत्ता मानी जाती है। मूल-अविद्या (संसारकी मूल कारण अनादि-अविद्या) के कार्य जो जाग्रत्के पदार्थ शरीर इन्द्रियादि जो **ईश्वरीय-सृष्टि** है, उसका बिना ब्रह्मज्ञानके बाध नहीं होता, इसलिए उसकी (ईश्वरीय-सृष्टिकी) **व्यावहारिक** सत्ता (जन्म-मरण बन्ध मोक्ष आदि व्यवहारको सिद्ध करनेवाली सत्ता) मानी जाती है

(३) **प्रातिभासिक सत्ता :**— ब्रह्मज्ञानके बिना ही जिन पदार्थोंका बाध हो जाय, उनकी प्रातिभासिक सत्ता मानी जाती है। जैसे :— बिना ब्रह्मज्ञानके ही, सीपि, रस्सी, मरुस्थल आदिकोंके ज्ञानसे (क्रमशः) मिथ्या चाँदी, साँप, जलादिकोंका बाध हो जाता है, इसलिए उन कल्पित चाँदी सर्पादिकोंकी **प्रातिभासिक सत्ता** (प्रतीति-मात्र सत्ता) मानी जाती है।

इस प्रकार हे शिष्य ! ईश्वरीय सृष्टिके अन्तर्गत वेद-गुरु तथा संसार-दुःख, इनकी आपसमें समान (एक)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

व्यावहारिक सत्ता ही है; इसलिए मिथ्या वेद-गुरुसे ही मिथ्या संसार-दुःखका नाश हो सकता है, अन्यथा नहीं।

शंका :— भगवन् ! आप ब्रह्मसे भिन्न सभी पदार्थोंको मिथ्या ही कहा करते हैं फिर उन मिथ्या पदार्थोंमें भी सीपिमें कल्पित चाँदी, रस्सीमें कल्पित साँप और मरुस्थलमें कल्पित जल-आदिकोंका **ब्रह्मज्ञानके बिना** तथा संसार-दुःखका **ब्रह्मज्ञानके बाद** ही बाध होता है, यह भेद क्यों रक्खा है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्मसे भिन्न सभी पदार्थ (अविद्याके कार्य होनेसे) मिथ्या ही हैं, तो भी जिसके अज्ञानसे जो पदार्थ उत्पन्न होता है उसीके ज्ञानसे ही उस कल्पित पदार्थका बाध हो सकता है, इस नियमसे सीपि, रस्सी और मरुस्थल आदिकोंके अज्ञानसे उत्पन्न हुए कल्पित चाँदी, साँप तथा जलादिकोंका बाध सीपि, रस्सी तथा मरुस्थल आदिकोंके ज्ञानसे ही होता है। और ब्रह्मके अज्ञानसे (अनादि अज्ञानसे) उत्पन्न हुए अनिर्वचनीय (मिथ्या) जन्म-मरणादिक संसार-दुःखका बाध ब्रह्म-ज्ञानसे ही होता है। बस इसी कारण प्रातिभासिक पदार्थोंमें (कल्पित साँप तथा सपने आदिकोंमें) तथा व्यावहारिक पदार्थोंमें (शरीरादि संसारिक पदार्थोंमें) भेद माना है; और वैसे दोनों अविद्याके कार्य होनेसे मिथ्या हैं।

शंका :— स्वामिन् ! यह जन्म-मरणादिक संसार जो ब्रह्मके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, वह किस क्रमसे हुआ है यह कृपा करके समझाइये।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— हे शिष्य ! इस संसारकी उत्पत्तिका कोई क्रम नहीं है। क्योंकि कल्पित पदार्थ किसी क्रमसे उत्पन्न नहीं होते किन्तु कल्पनाके साथ-साथ ही उत्पन्न हो जाते है; जैसे सपनेके पदार्थोंकी उत्पत्ति किसी क्रमसे नहीं होती, ठीक वैसे ही इस जाग्रत् (बड़े सपने) के पदार्थोंकी उत्पत्ति का भी कोई क्रम नहीं है। यह जाग्रत् सृष्टि तो दृष्टि (ज्ञान) के साथ-साथ ही उत्पन्न होती है; क्योंकि ये दृष्टि और सृष्टि दोनों साथ ही उत्पन्न होती हैं और साथ ही नष्ट होती हैं।

शंका :— भगवन् ! यदि इस संसारकी उत्पत्तिका कोई क्रम नहीं है तो फिर उपनिषदोंमें (वेदोंमें) परमात्मासे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदिकोंकी उत्पत्ति के क्रमका वर्णन कैसे आया है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! वेदोंने जो सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम कहा है, वह केवल इस संसारके कारणरूप अद्वैत ब्रह्मको समझानेके लिए ही न कि क्रमको बतानेके लिए। क्योंकि यदि वेदोंका तात्पर्य संसारके क्रमको बतलानेमें होता तो एक ही प्रकारसे क्रम बतलाते; किन्तु छाँदोग्य उपनिषद्में तो "सत्रूप परमात्मासे अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमसे उत्पन्न होते हैं" यह कहा है और तैत्तिरीयमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यों पाँच भूतोंकी क्रमसे उत्पत्ति कही है और कहीं तो "सबकी बिना क्रमके ही परमेश्वर उत्पत्ति करते हैं", ऐसा लिखा है। इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति वेदोंने अनेक प्रकारसे कही है। इसलिए हे शिष्य !

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जैसे दशहरेके उत्सवपर जलानेके लिए बनाये हुए बारूद से भरे हुए लकड़ीके रावणका यदि कोई नाक कान टेढ़ा हो जाता है, तो उसे फिर ठीक करनेका यत्न कोई नहीं करता; क्योंकि उस रावण बनानेका तात्पर्य रावणको दिखाने में नहीं होता, किन्तु उसे जलाकर 'अभिमानी रावणका किस प्रकार राम-द्वारा अन्त हुआ था' इस सिद्धान्तको समझानेमें ही होता है; इसी प्रकार 'नेति नेति' द्वारा इस दृश्य संसारका निषेध करके, अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान करवानेके लिये ही इस संसारका श्रुति (वेद) ने आरोप (काल्पनिक कथन) किया है। इसलिये अपवाद (निषेध) करनेके लिए किसी न किसी क्रम सहित आरोप किये हुए संसारकी उत्पत्तिके एक क्रम बतलाने का वेदने कोई यत्न नहीं किया; क्योंकि वेदके **सृष्टि-कथन करने का लक्ष्य, लय-चिन्तन द्वारा अद्वैत ब्रह्मको जनवाना ही है,** न कि क्रम बतलाना।

भगवान्ने भी गीताके १५ अध्यायके ३ श्लोकमें कहा है:— " **न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।**" अर्थात् इस संसार-वृक्षका स्वरूप जैसा क्रम सहित भिन्न भिन्न श्रुतियोंने कहा है, वैसा यहाँ विचार-कालमें नहीं पाया जाता; क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है और न अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है, अर्थात् तीनों कालोंमें एकरूपसे (सत्‌रूपसे) नहीं रहता।

भगवान्के इस कथनसे भी यह सिद्ध होता है कि इस संसारका जो क्रम-सहित स्वरूप वर्णन किया गया है वह वास्तवमें नहीं है किन्तु जिनमें ब्रह्म-विचार-द्वारा यथार्थ-ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्राप्त करनेकी योग्यता नहीं होती उन्हें लय-चिंतन (जगत्रूपी कार्यका ब्रह्मरूपी कारणमें लय करने) का अभ्यास कराया जाता है। उस अभ्यासके लिये संसारकी उत्पत्तिका कोई न कोई क्रम बतलाना पड़ता है, जिससे जिज्ञासुकी बुद्धि, आसानीसे बतलाए हुए उत्पत्ति-क्रमसे उल्टा लय-चिन्तन करके, अद्वैत-ब्रह्ममें स्थित हो सके।

शंका :– भगवन् ! तो लय-चिन्तन-द्वारा अद्वैत ब्रह्ममें मेरी बुद्धिको स्थित करनेके लिये, मुझे भी पहिले सृष्टिकी उत्पत्तिका कोई क्रम कृपा करके बतलाइये।

उत्तर :– हे शिष्य ! इस जगत्की उत्पत्तिके क्रमको सुननेसे पहिले, इस जगत्की उत्पत्ति कहाँसे होती है, यह समझना चाहिये। जो शुद्ध चेतन ब्रह्म है, वह तो असंग और अक्रिय है; इसलिये उससे संसारकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु माया-विशिष्ट-चेतन जो ईश्वर है, उसीसे जगत्की उत्पत्ति होती है।

शंका :— भगवन् ! कृपा करके माया और ईश्वरका भी थोड़ेमें स्वरूप बतला दीजिये।

उत्तर —: हे अनघ ! जो शुद्ध ब्रह्मके आश्रित, शुद्ध-सत्त्व-गुण-प्रधान-प्रकृति है उसे **माया** कहते हैं। यह एक प्रकार से तीनों गुणोंकी एक अवस्था है; क्योंकि जब तीनों गुण (सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण) समान अवस्थामें होते हैं तब उसे **प्रकृति** कहते हैं। जब उन तीनोंमें सत्त्वगुण बढ़कर रजोगुण और तमोगुणको दबा लेता है तब उसे **माया** कहते हैं। और जब रजोगुण व तमोगुणके बढ़नेसे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सत्त्वगुण मलिन पड़ जाता है अर्थात् दब जाता है, तब उन्हीं तीनों गुणोंकी उस अवस्थाका नाम **अविद्या अथवा अज्ञान** पड़ता है। इस प्रकार हे शिष्य! ये सब नाम उस त्रिगुणमयी प्रकृतिके ही हैं।

शंका :— भगवन् ! जब ये माया और अविद्या दोनों नाम एक प्रकृतिके ही हैं तो फिर नामोंका भेद क्यों है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! माया शब्दके दो भाग हैं, एक 'मा' दूसरा 'या' । 'मा' का अर्थ है 'न' और 'या' का अर्थ है 'जो' । अर्थात् वास्तवमें और विचारकाल (ज्ञान-काल) में **'जो न'** हो और बिना विचारके प्रतीत हो उसे कहते हैं **माया** और वह विद्या (ज्ञान) से नष्ट होती है इसलिए उसे **अविद्या** भी कहते हैं। तथा वह शुद्ध ब्रह्मके स्वरूपका आच्छादन करती है (ढक लेती है) इसलिए उसे **अज्ञान** भी कहते हैं।

इस प्रकार हे शिष्य! यह जो त्रिगुणमयी माया है, (१) इसकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए अनादि है। (२) एक है। (३) सान्त अर्थात् अन्तवाली है; क्योंकि इस माया का ज्ञानसे अन्त (नाश) हो जाता है। (४) सत् असत्से विलक्षण है; क्योंकि सत् कहते हैं उसको, जिसका तीनों कालोंमें बाध न हो सके। ऐसा केवल चेतन ही है। मायाका तो ज्ञानसे बाध हो जाता है इसलिए माया सत्से विलक्षण (न्यारी) है। और असत् कहते हैं उसको जिसकी तीनों कालों में प्रतीति न हो; जैसे खरगोशके सींग, वन्ध्याका पुत्र आकाशके फूल इत्यादि। किन्तु माया और उसका कार्य यह संसार तो प्रतीत होता है, इसलिए मायाको असत् भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कह सकते; अर्थात् माया असत्से भी विलक्षण है। जैसे माया सत् असत्से विलक्षण है, वैसे उसका कार्य यह संसार भी सत् असत्से विलक्षण है। और सत् असत्से विलक्षणको अद्वैत-मत में **मिथ्या** तथा **अनिर्वचनीय** भी कहते हैं।

शंका :— भगवन् ! जब मायाको अनादि मानते हैं और ब्रह्म भी अनादि है तो फिर दो पदार्थोंके अनादि होनेसे द्वैत होनेपर अद्वैत कैसे रहेगा ?

उत्तर :— हे शिष्य ! द्वैत सदा समान सत्तावालोंमें ही माना जाता है। जैसे सपनेवाले शिष्य और जाग्रत्वाले गुरुका आपसमें द्वैत नहीं बन सकता; क्योंकि सपनेवाले शिष्यकी सत्ता प्रातिभासिक है तथा जाग्रत्वाले गुरुकी सत्ता व्यावहारिक है। रस्सी और रस्सीमें कल्पित साँप ये आपसमें दो नहीं माने जाते; क्योंकि रस्सीकी सत्ता व्यावहारिक है तथा साँपकी सत्ता प्रातिभासिक (प्रतीति-मात्र) है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म और मायाका भी आपसमें द्वैत सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि ब्रह्मकी सत्ता पारमार्थिक है और मायाकी सत्ता प्रातिभासिक है अर्थात् ब्रह्म सत्य है और माया मिथ्या (अनिर्वचनीय) है। इसलिए अनादि होते हुए भी उस मिथ्या मायाका सत्य ब्रह्मसे द्वैत सिद्ध नहीं हो सकता, अपितु परमार्थ (वास्तव) में एक ब्रह्म ही होनेके कारण अद्वैत ही सिद्ध होता है।

और हे शिष्य ! जैसे अन्धकार घरके आश्रित होकर, घरको ही ढकता है, उसी प्रकार यह मिथ्या (अनिर्वचनीय) अज्ञान (माया) शुद्ध ब्रह्मके आश्रित होकर, शुद्ध-ब्रह्मको ही ढकता है। इसीलिए अज्ञानको **स्वाश्रय-स्वविषय** कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

[स्व=ब्रह्म ही आश्रय है और स्व=ब्रह्मको ही विषय करता है अर्थात् ढकता है]

इस विषयमें **वाचस्पति** कहते हैं:— "अज्ञान ब्रह्मके आश्रित होकर ब्रह्मको विषय नहीं करता, किन्तु **जीवके आश्रित है और ब्रह्मको विषय करता है।** क्योंकि "मैं अज्ञानी (जीव) ब्रह्मको नहीं जानता" इस प्रतीतिसे यह सिद्ध होता है कि अज्ञानका आश्रय जीव (मैं शब्दका अर्थ) है और वह अज्ञान ब्रह्मको विषय करता है अर्थात् ढकता है।

और वह अज्ञान एक नहीं किन्तु अनेक हैं; क्योंकि यदि अज्ञान एक होता तो एक पुरुषके अज्ञानके नष्ट होनेसे सभी का अज्ञान नष्ट हो जाता और सभी ज्ञानी होनेसे मुक्त हो जाते। यदि कहो कि आज तक किसीको ज्ञान हुआ ही नहीं है, तो फिर आगे भी किसीको नहीं होगा, और ऐसा माननेसे श्रवण-मननादिक साधन भी निष्फल हो जाएँगे। इसलिए अनेक जीवोंके आश्रित अज्ञान भी अनेक हैं, ऐसा मानना चाहिये। और उन अनेक अज्ञानों-द्वारा कल्पित ईश्वर और ब्रह्माँड भी अनेक हैं अर्थात् उन अनेक जीवों के अपने अपने अज्ञानसे कल्पित ईश्वर और संसार भी भिन्न भिन्न हैं।

और जिस जिस जीवको ज्ञान होता जाता है, उस उस जीवका अज्ञान, ईश्वर और संसार भी निवृत्त होता जाता है, तथा जिस जीवको ज्ञान प्राप्त नहीं होता उसका बन्धन रह जाता है अर्थात् वह मुक्त नहीं होता।"

यह वाचस्पतिका मत है, किन्तु यह समीचीन (ठीक)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं है। क्योंकि "ईश्वर जीवके अज्ञानसे कल्पित है और अज्ञानके नाना (अनेक) होनेसे अज्ञान-द्वारा कल्पित ईश्वर व संसार भी नाना हैं" यह कहना श्रुति स्मृति तथा पुराणादि शास्त्रोंके विरुद्ध है। इसलिए अज्ञान नाना नहीं किन्तु एक ही मानना चाहिए। क्योंकि एक मानने से उससे कल्पित ईश्वर और संसार भी एक ही मानना पड़ेगा, जो वेद आदि शास्त्रोंके विरुद्ध नहीं है।

और वह अज्ञान जीवके आश्रित नहीं किन्तु शुद्ध ब्रह्म के आश्रित है; क्योंकि जीव और ईश्वर ये तो अज्ञानके कार्य हैं। कार्य कभी कारणका अधिष्ठानरूप आश्रय नहीं बना करता। यद्यपि "मैं अज्ञानी हूँ" इस प्रकारका जीवको जो अभिमान होता है, उस अभिमानके नाते अज्ञान का **अभिमानी-रूप आश्रय** जीव कहलाता है किन्तु **अधिष्ठान-रूप आश्रय** तो केवल ब्रह्म ही है। अतः उस अनादि एक अज्ञानको स्वाश्रय-स्वविषय (शुद्ध ब्रह्मके आश्रित और शुद्ध ब्रह्मको ही ढकनेवाला) मानना ही समीचीन (ठीक) है।

शंका :— भगवन्! "यदि अज्ञान एक है तो फिर एक के ज्ञानी होनेसे सभीका अज्ञान नष्ट होना चाहिए? इस वाचस्पतिके दलीलका कृपा करके समाधान कीजिये।

उत्तर :— हे शिष्य! रात्रि होनेपर जो (अंशीरूप) अन्धकार सर्वत्र व्यापक हो जाता है वह है तो यद्यपि एक ही किन्तु तुम्हारे घरमें दीपक जलानेसे, जो अन्धकारका अंश तुम्हारे घरको व्याप्त करता है वही अंश केवल नष्ट होता है, न कि दूसरा अंश। इस प्रकार जिस जिस घरमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दीपक इत्यादिसे प्रकाश होता जाता है उस उस घरवाला अंधकारका अंश नष्ट होता जाता है। ठीक इसी प्रकार जिस अंशीरूप अज्ञानने सारे संसारको अपने नाना अंशोंसे व्याप्त कर रखा है वह है तो यद्यपि एक ही, किन्तु जिस जिसके अन्तःकरणमें ज्ञान दीपक जलता जाता है, उस उसके अन्तःकरणवाला अज्ञानका अंश नष्ट होता जाता है, और जिनके अन्तःकरणोंमें ज्ञानका उदय नहीं होता, उनके अन्तःकरणोंमें अज्ञानका अंश रह ही जाता है; इसलिये अंशीरूप अज्ञानके एक होनेपर भी (नाना अंशोंके कारण) एकके ज्ञानी होनेसे सबका अज्ञान नष्ट होकर सभी मुक्त नहीं होते किन्तु जिसको ज्ञान होता है वही मुक्त होता है।

परन्तु हे शिष्य ! यदि किसीको वाचस्पतिका बताया हुआ नाना-अज्ञान-वाद ही समझमें आजाय, तो उससे भी अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान हो सकता है इसलिये उसके खण्डनमें मेरा कोई आग्रह नहीं है; क्योंकि जिस प्रकारसे जिज्ञासुको अद्वैत-ज्ञान हो जाय उसके लिए वही तरीका ठीक है। **नैष्कर्म्य-सिद्धि-कारने** भी लिखा है :—

"यया यया भवेत्पुंसां, व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि।
सा सैव प्रक्रियेह स्यात्, साध्वी सा च व्यवस्थितिः ॥"

अर्थात् :— जिज्ञासुओंको, जिस जिस प्रक्रियासे प्रत्यक्-आत्माका (अपने स्वरूपका) ज्ञान हो सके वही प्रक्रिया वेदान्त-सिद्धान्तमें श्रेष्ठ है, और वही व्यवस्था है।"

शंका :— भगवन् ! आपने बताया कि वह अनादि अज्ञान शुद्ध ब्रह्मके आश्रित है; किन्तु ब्रह्म तो ज्ञान-स्वरूप है,

१४

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उसके आश्रित अज्ञान कैसे हो सकता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जैसे सामान्य अग्नि लकड़ीकी विरोधी नहीं है किन्तु विशेषरूपसे प्रकट हुई अग्नि ही लकड़ी की विरोधी होती है, उसी प्रकार सामान्य-ज्ञान (शुद्ध-चेतन ब्रह्म) अज्ञानका विरोधी नहीं है; क्योंकि हम देखते भी हैं कि सुषुप्ति अवस्थामें, अज्ञान भी रहता है तो अज्ञानके साक्षीरूप से सामान्य-चेतन भी रहता है। इसलिए सामान्य-चेतन अज्ञान (माया) का विरोधी नहीं है अपितु सत्ता व स्फुरणा देनेके नाते साधक है। किन्तु वृत्तिमें आरूढ (स्थित) चेतन अथवा चेतन-सहित वृत्ति (वृत्ति-ज्ञान) अज्ञानका विरोधी है।

हे शिष्य ! इस प्रकार जो तुमने माया (अज्ञान) का स्वरूप सुना वह (१) शुद्ध-सत्त्व-गुण-सहित माया (२) माया का अधिष्ठान शुद्ध-चेतन (ब्रह्म) और (३) उस मायामें आया हुआ चेतनका आभास। इन तीनोंको मिलाकर **ईश्वर** कहते हैं और वही ईश्वर इस जगत्का कारण है।

शंका :— भगवन् ! प्रत्येक वस्तुके दो कारण माने जाते हैं (१) उपादान-कारण (२) निमित्त-कारण। जैसे घड़ेका उपादान-कारण है मिट्टी और निमित्त-कारण हैं कुम्हार, डंडा, चक्र इत्यादि। इसी प्रकार इस जगत्के भी दोनों कारण कृपा करके बताइये ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जैसे एक ही मकड़ी अपने बनाये हुए जालेका उपादान-कारण भी है और निमित्त-कारण भी है तथा जैसे एक ही अविद्या-विशिष्ट-चेतन (प्राज्ञ) सपनेका उपादान तथा निमित्त कारण है, वैसे एक ही माया-विशिष्ट-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चेतन ईश्वर इस जगत्का उपादान-कारण भी है तथा निमित्त-कारण भी है।

उसमें भी, जैसे मकड़ीका जड़ शरीर जालेका उपादान-कारण है और मकड़ीका अन्तःकरण-सहित-चेतन-भाग जालेका निमित्त-कारण है और प्राज्ञका शरीर नाना-सूक्ष्म-संस्कार-गर्भित अविद्या, सपनेका उपादान-कारण है तथा अविद्या-सहित-चेतन-भाग सपनेका निमित्त-कारण है; ठीक इसी प्रकार ईश्वरका शरीर समष्टि-संस्कार-गर्भित-तमःप्रधान-प्रकृतिरूप माया जगत्का उपादान-कारण है और ईश्वरका शुद्ध-सत्त्व-प्रधान-माया-सहित-चेतन-भाग जगत्का निमित्त-कारण है।

शंका :— भगवन् ! इस जगत्के कारण ईश्वरको जगत् उत्पन्न करनेकी इच्छा क्यों हुई ?

उत्तर :—हे शिष्य ! जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा ईश्वरको अपने आप नहीं होती किन्तु जीवोंके कर्म-वशात् ही होती है। क्योंकि जब समष्टि जीवोंके [(१) मलिन-सत्त्व-गुण-सहित अज्ञानका अंश (२) उसका अधिष्ठान चेतन (३) उस अज्ञान-अंशमें आया हुआ चेतनका आभास; इन तीनोंको मिलाकर **जीव** कहते हैं।] कर्म, भोग देनेसे उदासीन हो जाते हैं तब प्रलय होता है। उस समय जीवोंके कर्म, संस्काररूपसे मायामें रहते हैं फिर जैसे पृथ्वीमें पड़े हुए बीज समयपर पक जानेके बाद अंकुर देने के लिये सम्मुख (तैयार) हो जाते हैं, उसी प्रकार जब जीवोंके कर्म भोग देनेके लिए सम्मुख होते हैं तब ईश्वरको यह इच्छा होती है **'जीवोंके भोग-निमित्त जगत् उत्पन्न हो'**।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ऐसी इच्छा (संकल्प) होते ही तमोगुण प्रधान प्रकृति से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। और उन पाँच भूतोंमें क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, ये पाँच गुण उत्पन्न होते हैं।

हे शिष्य ! लय-चिन्तन-द्वारा अद्वैत-ब्रह्मका बोध कराने के लिए जगत्की उत्पत्तिका क्रम यों बतलाते हैं कि पहिले,

(१) मायासे प्रतिध्वनि-रूप-शब्द-सहित आकाशकी उत्पत्ति हुई।

(२) आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। वायु आकाशका कार्य है, इसलिये आकाशका **शब्द गुण** ('सी सी' रूपसे) वायुमें आता है तथा अपना गुण (उष्ण, शीत, तथा कठिन से विलक्षणरूप) **स्पर्श** है।

(३) वायुसे तेजकी उत्पत्ति हुई। तेजमें आकाशका **शब्द गुण** (भुकभुकरूपसे) है, वायुका **स्पर्श गुण** (उष्ण रूपसे) है तथा अपना गुण **रूप** है जो प्रकाशरूपसे है।

(४) तेजसे जलकी उत्पत्ति हुई। जलमें आकाशका **शब्द** (चुलुचुलुरूपसे) है, वायुका **स्पर्श** (शीतरूपसे) है तेजका **रूप** (शुक्लरूपसे है, तथा अपना गुण 'मधुर' **रस** है।

(५) जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। पृथ्वीमें आकाशका **शब्द** (कड़कड़रूपसे)है, वायुका **स्पर्श** (कठिनरूपसे) है, तेज का **रूप** (सफेद नीला, पीला, लाल, हरा आदिरूपसे) है, जलका **रस** (मीठा खट्टा, खारा, कड़ुवा, कसैला और तिक्त

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रूपसे) है तथा अपना गुण (सुगंध और दुर्गन्धरूपसे दो प्रकार का) गन्ध है।

इस प्रकार आकाशमें एक, वायुमें दो, तेजमें तीन, जलमें चार और पृथ्वीमें पाँच गुण हैं। उनमें एक एक गुण अपना है और शेष अधिक गुण कारणके हैं। सब का मूल कारण ईश्वर है। ईश्वरके प्रधान दो भाग हैं; एक माया और दूसरा चेतन। इन दोनों भागोंके गुण भी सारे संसारमें मौजूद हैं। जो सारे संसारमें मिथ्यापना दीखता है वह मायाका भाग है तथा जो सत्ता, स्फूर्ति (भासमानता) व आनंद प्रतीत होता है वह चेतनका भाग है।

इस प्रकार हे शिष्य ! जब इन पाँचों भूतोंकी गुणों सहित सृष्टि हो गई, तब उन पाँचों भूतोंके मिले हुए सत्त्व-गुण-अंशसे **अंतःकरणकी** उत्पत्ति हुई। उस अन्तःकरणके परिणामको **वृत्ति** कहते हैं। वह अन्तःकरणकी वृत्ति चार प्रकारकी होती है।

(१) पदार्थोंके भले बुरे स्वरूपका निश्चय करनेवाली वृत्ति **बुद्धि** कहलाती है।

(२) संकल्प-विकल्प-वृत्ति **मन** कहलाती है।

(३) चिन्तनरूप वृत्ति **चित्त** कहलाती है।

(४) "अहं" (मैं) ऐसी अभिमान-वृत्ति **अहंकार** कहलाती है।

इस प्रकार अन्तःकरणकी उत्पत्तिके बाद, पाँच भूतोंके मिले हुए रजोगुण-अंशसे **प्राणकी** उत्पत्ति हुई। वह प्राण, क्रिया-भेदसे और स्थान-भेदसे पाँच प्रकारका है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(१) **प्राण** :— जिसका स्थान है हृदय और क्रिया है भूख प्यास लगाना।

(२) **अपान** :— जिसका स्थान है गुदा और क्रिया है मल-मूत्रको नीचे लेजाना।

(३) **समान** :— जिसका स्थान है नाभि और क्रिया है खाए, पीए, अन्न जलको पकाने योग्य सम करना।

(४) **उदान** :— जिसका स्थान है कण्ठ और क्रिया है श्वास लेना।

(५) **व्यान** :— जिसका स्थान सारा शरीर है और क्रिया है रस-मेलन।

इस प्रकार पाँच भूतोंके मिले हुए सत्त्वगुणसे अन्तःकरण तथा रजोगुणसे प्राणकी उत्पत्ति हुई। फिर एक एक भूतके अपने अपने सत्त्व-गुण-अंशसे पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ बनीं। जैसे :—

(१) आकाशके सत्त्व-गुण-अंशसे **कान**।
(२) वायुके सत्त्व-गुण-अंशसे **त्वचा** (चमड़ी)।
(३) तेजके सत्त्व-गुण-अंशसे **नेत्र**।
(४) जलके सत्त्व-गुण-अंशसे **रसना**।
(५) पृथ्वीके सत्त्व-गुण-अंशसे **नाक**।

और एक एक भूतके रजो-गुण-अंशसे एक एक कर्म-इन्द्रिय बनी।

(१) आकाशके रजोगुण-अंशसे **वाक्** (वाणी)।
(२) वायुके रजोगुण-अंशसे **हाथ**।
(३) तेजके रजोगुण-अंशसे **पाँव**।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(४) जलके रजोगुण-अंशसे **उपस्थ** (भोग-इन्द्रिय) ।
(५) पृथ्वीके रजोगुण-अंशसे **गुदाकी** उत्पत्ति हुई है ।

इस प्रकार हे शिष्य ! यह जो मैंने अन्तःकरण, प्राण, ज्ञान-इन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय तक सृष्टि बतलाई है वह पंच-महाभूतोंके पंचीकरण होनेसे पहिले पहिलेकी बनी हुई हैं; इसलिए इस सृष्टिको अपंचीकृत भूतोंका कार्य व **सूक्ष्म-सृष्टि** कहते हैं ।

इस सूक्ष्म-सृष्टिके बाद ईश्वरकी इच्छासे स्थूल सृष्टि के बननेके लिये उन अपंचीकृत भूतोंका **पंचीकरण** हुआ । वह पंचीकरण दो प्रकारसे माना जाता है । (१) जैसे कोई पाँच भाई थे, वे भिन्न भिन्न प्रकारकी सेर सेर भर मिठाई ले आए। तब उन्होंने सोचा कि हम आपस में यह मिठाई इस विधिसे बाँटें कि सबके पास अपनी अपनी मिठाई सबसे अधिक रहे और दूसरे दूसरे प्रकार की मिठाई भी आजाय । तब उन पाँचोंने अपनी अपनी मिठाईके आधे आधे सेरके दो दो भाग किये । फिर प्रत्येक ने अपनी अपनी मिठाईका आधा आधा सेर तो अपने पास रखा और शेष रहे हुए आधे आधे सेरको दो दो छटाँकके हिसाब से, अपनेसे भिन्न चार भाइयोंमें बाँट दिया । इस प्रकार पाँचोंके पास सेर सेर मिठाई भी हो गई और उसमें आधा सेर अपनी मिठाईका, तथा दो दो छटाँक दूसरे चार भाइयोंकी मिठाईके भी आ गए । इसीको पाँचों मिठाइयों का **पंचीकरण** कहते हैं । पाँचों महाभूतोंका पंचीकरण भी इसी प्रकार हुआ है । पाँचों भूतोंके आधे आधे भाग तो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उनके पास रहे और शेष रहे हुए आधे भागके चार भाग होकर अपनेसे भिन्न चार भूतोंमें आ गए।

(२) दूसरा पंचीकरणका प्रकार यह है :— एक एक भूतके पच्चीस पच्चीस भाग हुए। उनमेंसे प्रत्येकके इक्कीस इक्कीस भाग अपने अपने पास रहे और शेष रहे हुए चार भाग अपनेसें भिन्न दूसरे चार भूतोंमें आ गए।

इस प्रकार भूतोंके पंचीकरण होनेके बाद उनका नाम **पंचीकृत** पड़ा। और उन पंचीकृत भूतोंसे ही यह स्थूल-ब्रह्मांड बना। इस ब्रह्मांडमें भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, और सत्यलोक ये सात भुवन ऊपरके बने। तथा अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल और महातल ये सात लोक नीचेके बने। तत्पश्चात् उन चौदह लोकोंमें जीवोंके भोग्य-पदार्थ अन्नादिक तथा भोग भोगनेके स्थान देव, मनुष्य, पशु आदि स्थूल शरीर बने।

हे शिष्य! यह जो मैंने तुम्हें सूक्ष्मसृष्टि और स्थूलसृष्टि बताई है इसीमें तीनों शरीर व पाँचों कोश भी माने जाते हैं।

शंका :— भगवन्! वे तीनों शरीर व पाँचों कोश भी कृपा करके बतलाइये।

उत्तर :— हे शिष्य! कारण, सूक्ष्म और स्थूल ये तीन शरीर हैं। उनमें :—

(१) **कारण-शरीर :—** मलिन-सत्त्व-गुण-सहित अविद्याका **अंश जीवका कारण शरीर** कहलाता है तथा शुद्ध-सत्त्व-गुण-सहित-माया **ईश्वरका कारण-शरीर** कहलाती है।

(२) **सूक्ष्म-शरीर :—** उत्तर शरीरके आरम्भक पाँच

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सूक्ष्म भूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पाँच प्राण, पाँच कर्म-इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ, ये सब मिलकर **जीव का सूक्ष्म शरीर** है, और सब जीवोंके सूक्ष्म शरीर मिलकर **ईश्वरका सूक्ष्म शरीर** है।

(३) **स्थूल-शरीर :—** यह हाड़-माँस आदिका बना हुआ पिञ्जरा (भोग भोगनेका स्थान) **जीवका स्थूल शरीर** है, और सारा स्थूल ब्रह्मांड **ईश्वरका स्थूल शरीर** है।

और अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय ये पाँचों कोश भी ऊपर कहे हुए तीनों शरीरों के अन्तर्गत ही हैं।

(१) **अन्नमय-कोश :—** स्थूल शरीरको ही **अन्नमय-कोश** कहते हैं; क्योंकि यह माता पिताके खाये हुए अन्नसे उत्पन्न हुए रज-वीर्यसे ही उत्पन्न होता है, अन्नपर ही रहता है और अन्तमें अन्नरूप पृथ्वीमें ही मिल जाता है। प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय ये तीनों कोश सूक्ष्म शरीरमें हैं जैसे :—

(२) **प्राणमय-कोश :—** पाँच प्राण और पाँच कर्म-इन्द्रियोंको मिलाकर **प्राणमय-कोश** कहते हैं।

(३) **मनोमय-कोश :—** पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मनको मिलाकर **मनोमय-कोश** कहते हैं।

(४) **विज्ञानमय-कोश :—** पाँच ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धिको मिलाकर **विज्ञानमय-कोश** कहते हैं।

(५) **आनन्दमय-कोश :—** कारण शरीरको **आनन्दमय-कोश** कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार ईश्वरके भी पाँचों कोश माने जाते हैं जैसे :—

(१) सम्पूर्ण स्थूल-सृष्टि-रूप विराट् जो ईश्वरका स्थूल शरीर है, वही **ईश्वरका अन्नमय-कोश** है। (२) समष्टि कर्म-इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतारूप अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति और यम ये पाँच ईश्वरके कर्म-इन्द्रिय और समष्टि प्राण वा वायुका अभिमानी देवतारूप ईश्वरका प्राण, ये सब मिलकर **ईश्वरका प्राणमय-कोश** है। (३) समष्टि ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतारूप दिक्पाल, वायु, सूर्य, वरुण, और अश्विनीकुमार, ये पाँच ईश्वरकी ज्ञानेन्द्रियाँ और समष्टि मनरूप अहंकारमय अथवा सबके मनका अभिमानी चन्द्रमारूप ईश्वरका मन, ये सब मिलकर **ईश्वरका मनोमय कोश** है। (४) उक्त ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतारूप पाँच ईश्वरकी ज्ञान-इन्द्रियाँ और समष्टि बुद्धिमय महत्तत्त्वरूप अथवा सब बुद्धियोंका अभिमानी ब्रह्मारूप ईश्वरकी बुद्धि, ये सब मिलकर **ईश्वरका विज्ञानमय कोश** है। (५) समष्टि अज्ञानरूप माया जो ईश्वरका कारण शरीर है वह **ईश्वर का आनन्दमय कोश** है।

शंका :— भगवन् इनका कोश नाम क्यों पड़ा ?

उत्तर :— हे शिष्य ! कोश कहते हैं म्यान को। जैसे म्यान तलवारको ढक लेती है, उसी प्रकार ये पाँचों कोश भी आत्माके असंग आनन्दादिक विशेष स्वरूपको ढक लेते हैं, इसलिए इन अन्नमयादिकोंको **कोश** कहते हैं।

कई मन्दमति पुरुष आत्मासे भिन्न (अनात्मरूप) इन पाँच

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कोशोंमेंसे किसी एकको आत्मा मानकर अपने असली स्वरूप साक्षी आत्मासे विमुख रहकर जन्म-मरणके चक्रमें भटकते ही रहते हैं। जैसे स्थूल शरीरको आत्मा मानने वाले **विरोचनके** मत (चार्वाक्) के अनुयायी कहते हैं :—"स्थूल-शरीरमें ही सबको "मैं मनुष्य हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ" इस प्रकारकी अहंबुद्धि होती है और यही सबसे प्रिय है, इसलिए यह **स्थूल शरीर** (अन्नमय कोश) ही आत्मा है। और इस स्थूल शरीरका वस्त्र, भूषण, तेल, आदिकोंसे शृंगार करना और नाना प्रकारके भोजनोंसे पोषण करना ही **परम पुरुषार्थ** है। इसलिए :—

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥"

अर्थात् जब तक जीवन है तब तक सुखसे जीना चाहिए। ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए। अर्थात् किसी भी प्रकार विषय भोगने चाहियें; क्योंकि शरीरके भस्म होनेके बाद (मरनेके बाद) फिर संसारमें थोड़े ही आना है।" यह विरोचनका सिद्धान्त है।

(२) **इन्द्रिय-आत्म-वादी** कहते हैं :—"स्थूल शरीर आत्मा नहीं है किन्तु इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं; क्योंकि जब तक इन्द्रियाँ इस स्थूल शरीरमें रहती हैं तब तक यह चल फिर सकता है, और जब सभी इन्द्रियाँ निकल जाती हैं, तब यह मुर्दा हो जाता है, तथा सबको "मैं सुनता हूँ, मैं देखता हूँ" इस प्रकार अहंभावना भी इन्द्रियोंमें ही होती है; इसलिए **इन्द्रियाँ** ही आत्मा हैं"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(३) **हिरण्यगर्भके उपासक (प्राण-आत्म-वादी)** कहते हैं :— "शरीरमें यदि आँख इत्यादि इन्द्रियाँ नहीं रहतीं, तो भी शरीर मरता नहीं किन्तु प्राण निकलते ही शरीर मुर्दा हो जाता है। और सुषुप्ति--अवस्थामें जहाँ इन्द्रियोंका लय हो जाता है, वहाँ भी प्राण तो चलता ही रहता है। इसलिए इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हैं, किन्तु **प्राण** ही आत्मा है।

(४) **मन-आत्म-वादी** कहते हैं :— "प्राण जड़ है [क्योंकि वह न स्वयंको जानता है, न दूसरोंको जानता है] इसलिए प्राण आत्मा नहीं है किन्तु मन ही आत्मा है; क्योंकि मनके संबन्धसे ही, इन्द्रियाँ ज्ञानकी साधन बनती हैं। और श्रुति भी कहती है [इस प्रकार वे अपने पक्षको सिद्ध करनेके लिए सारे प्रसंगको बिना समझे ही वेदके कुछ टुकड़े भी प्रमाणके रूपमें देते हैं] " **तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः**" अर्थात् " उस प्राणमयसे दूसरा अन्तर आत्मा मनोमय है"। और "**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः**" अर्थात् "मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है" इससे भी सिद्ध होता है कि **मन** ही आत्मा है।

(५) **विज्ञान-वादी बौद्ध** कहते हैं, "मन आत्मा नहीं है किन्तु क्षण-क्षणमें बदलनेवाला प्रकाशरूप जो विज्ञान अर्थात् बुद्धि है, वही आत्मा है। क्योंकि मन बुद्धिके ही आधीन है, प्रत्युत यों कहना चाहिए कि बुद्धिका ही आकार है; क्योंकि प्रत्येक वस्तुके ज्ञानके समय पहिले अहं-वृत्ति ('मैं' ऐसी वृत्ति) रूप बुद्धि उत्पन्न होती है, फिर इदं-वृत्ति ("यह घट है, यह पुस्तक है" ऐसी वृत्ति) रूप मन उत्पन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार मनका भी कारण बुद्धि है; इसलिये बुद्धि ही आत्मा है। और श्रुतिने जो मनका नाम लिया है, वह तो कोशोंको बताते हुए कहा है कि प्राणमय कोशसे अन्दर मनोमय कोश है, वास्तवमें तो श्रुति विज्ञानमय बुद्धिको ही आत्मा बताती है। [इसपर वे प्रसंगके बीचमेंसे ही कुछ श्रुतिका हिस्सा लेकर कहते हैं] जैसे :— **"तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः"** अर्थात् उस मनोमयसे दूसरा अन्तर आत्मा विज्ञानमय है। इससे भी सिद्ध होता है कि विज्ञानमयरूप बुद्धि ही आत्मा है।

(६) **आनन्दमय कोशको आत्मा माननेवाले** पूर्वमीमाँसा के वार्त्तिककार भट्ट कहते हैं:—"बुद्धि क्षणिक है, और आत्मा नित्य है, तथा बुद्धिका सुषुप्ति-अवस्थामें लोप हो जाता है, किन्तु आत्माका लोप नहीं होता; क्योंकि श्रुति कहती है **"नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्"** अर्थात् "द्रष्टा [साक्षी = प्रकाशक] रूप दृष्टि (ज्ञान) का कभी लोप नहीं होता; क्योंकि वह अविनाशी है" और विज्ञानमय (जो एक कोश है) का नाम तो श्रुतिने कोशों को बतलाते हुए लिया है। इसलिये क्षणिक-विज्ञानरूप बुद्धि आत्मा नहीं है किन्तु जड़-चेतन-स्वरूप (आनन्दमय कोश) ही आत्मा है; क्योंकि सुषुप्ति-अवस्थामें अपने (आत्माके) जड़पनेका अनुभव होता है और उस अपने जड़पनेका अनुभव करनेवाला भी स्वयं (चेतनरूप) आत्मा ही है; इसलिये आत्मा खद्योत (जुगुनु) की तरह प्रकाश और अप्रकाश-रूप अर्थात् जड़ और चेतन दोनोंरूप है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(७) दूसरे **आनन्दमय कोशको आत्मा माननेवाले शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध** कहते हैं :– "जैसे खद्योतका एक अंश प्रकाशरूप है और दूसरा अंश अप्रकाशरूप है इसी प्रकार आत्माको भी प्रकाश-अप्रकाश अर्थात् जड़ चेतन दोनोंरूप माननेके लिये अंशवाला मानना पड़ेगा। और अंशवाला माननेपर अंशवाले घटादि पदार्थोंकी तरह आत्माको भी उत्पत्ति और नाशवाला मानना पड़ेगा। जो पदार्थ उत्पत्ति व नाशवाला होता है वह उत्पत्ति से पहिले और नाशके बाद असत् (शून्य) होता है। और जो आदि-अन्तमें असत् होता है वह मध्य (बीच) में भी असत् ही होता है; इसलिये आत्मा असत्‌रूप है। वैसे आत्मा से भिन्न और सारे पदार्थ भी, उत्पत्ति-नाशवाले होनेके कारण असत्‌रूप हैं। इस प्रकार आत्मा और अनात्मा सभी असत्‌रूप होनेके कारण, शून्य ही परम तत्त्व है।"

इस रीतिसे जीवन्मुक्त महात्मा, जिस मायाको (समष्टि अज्ञान-रूप कारण शरीर अर्थात् आनन्दमय कोशको) तुच्छ अर्थात् शून्यरूप समझता है; उसीको ये शून्यवादी बौद्ध आत्मा मानते है।

(८) तीसरे **आनन्दमय-कोशको आत्मा माननेवाले** पूर्व-मीमाँसाके एकदेशी प्रभाकर और नैयायिक कहते हैं– "शून्यको आत्मा कहनेवालोंसे हम पूछते हैं कि, "शून्यका किसीने अनुभव किया है या नहीं ?" यदि कहें कि "शून्यका अनुभव नहीं होता।" तो शून्य नामका कोई पदार्थ सिद्ध नहीं हो सकता और यदि कहें कि, "शून्यका अनुभव किया है" तो हम कहेंगे कि जिसने शून्यका भी अनुभव किया है,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वही शून्यसे न्यारा आत्मा है; अर्थात् शून्य भी तभी सिद्ध हो सकता है जब उसका कोई अनुभव करनेवाला माना जाय; इसलिये जो शून्यसे भी न्यारा उसका अनुभव करने वाला है, वही आत्मा है। और उस आत्मामें मनके संयोगसे ज्ञान उत्पन्न होता है; वैसे वह स्वरूपसे जड़ है।" किन्तु यह उनका मत भी ठीक नहीं है क्योंकि—

वे सुषुप्ति-अवस्थावाले आनन्दमय कोशको ही आत्मा समझकर उसमें गूढ़-चेतनको (बादलोंमें सूर्यकी तरह गुप्त आत्म-चेतनको) न पहिचाननेसे, उसे ज्ञान-हीन समझकर जड़ कहते हैं। और जिस अनित्य ज्ञानको वे आत्मा (आनन्द-मय कोश) का गुण मानते हैं; वह वास्तवमें अन्तःकरणकी वृत्तिरूप बुद्धि है। तथा आत्माको जड़ माननेसे, वह घटादि जड़ पदार्थोंकी तरह अनित्य हो जायगा और यदि आत्माको अनित्य मानेंगे तो फिर वेदके बताये हुए मोक्षके लिये प्रयत्न करना भी निरर्थक हो जायगा और "**सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम्**" अर्थात् वह आत्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है और **नित्य** है, "**आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः**" अर्थात् वह आकाशकी तरह सर्वव्यापक और **नित्य** है। "**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्**" अर्थात् वह नित्योंका **नित्य** और चेतनों का भी **चेतन** है अर्थात् जितने भी संसारमें पदार्थ हैं वे इस आत्माकी सत्तासे ही नित्य और आत्माकी चेतनतासे ही चेतन प्रतीत हो रहे हैं" इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध होगा; इसलिए आत्माको नित्य व चेतन-स्वरूप ही मानना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार हे शिष्य ! वेदान्त वाक्योंमें विश्वास-हीन अनेक बहिर्मुख लोग पाँच कोशोंमेंसे ही किसी एकको आत्मा मानकर तथा मुख्य आत्म-स्वरूप साक्षीसे विमुख रहकर जन्म-मरणके चक्रमें भटकते ही रहते हैं।

इस प्रकार आत्माके असली स्वरूपको ढक लेनेके कारण ही इन अन्नमयादिकोंका नाम कोश पड़ा है।

और जैसे इन पाँच कोशोंके कारण आत्माके स्वरूपको समझनेमें लोगोंको भ्रान्ति हो जाती है इस प्रकार इन कोशोंके कारण भ्रान्तिसे ईश्वरके असली स्वरूपको न समझकर लोग अंतर्यामीसे लेकर पीपल पर्यन्तको ईश्वर मानकर अपनी अपनी भावनानुसार फल प्राप्त करते हैं। किन्तु मोक्ष तो **"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"** इस श्रुतिके अनुसार बिना ब्रह्म-ज्ञानके हो ही नहीं सकता। इसलिए जिसको मोक्षकी इच्छा है उसे विचार-द्वारा जीव-ईश्वरके असली स्वरूपको पाँच कोशोंसे अलग करके जानना चाहिये। इनमें से भी जीवके असली स्वरूप आत्माको समझनेके बाद, ईश्वरके असली-स्वरूप ब्रह्मको समझना आसान है; क्योंकि वास्तवमें आत्मा और ब्रह्म दोनों एक ही हैं; केवल घट और मठकी उपाधिसे आकाशकी तरह, अविद्या और मायाकी उपाधिके कारण भ्रान्तिसे भिन्न प्रतीत होते हैं।

शंका :– हे प्रभो ! कृपा करके पाँचों कोशोंसे आत्माके विवेक (अलग करने) की कोई विधि बतलाइये।

उत्तर :– हे शिष्य ! यह नियम है कि 'जो वस्तु दूसरी भिन्न भिन्न वस्तुओंके बदलते रहनेपर भी नहीं बदलती,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अपितु उन बदलनेवाली वस्तुओंका साक्षीरूप होकर विराजमान रहती है, वह वस्तु उन बदलती रहनेवाली वस्तुओंसे भिन्न होती है।' इस नियमसे अपना असली स्वरूप आत्मा इन पाँचों कोशोंसे अर्थात् तीनों शरीरोंसे भिन्न है। [पाँचों कोश तीनों शरीरोंके अन्तर्गत हैं यह पहिले बतला दिया है] क्योंकि जाग्रत्में जो यह स्थूल शरीर दीखता है इसके बदलते रहनेपर भी आत्मा नहीं बदलता; क्योंकि सबको ऐसी प्रत्यभिज्ञा (स्मृतिके साथ होनेवाला प्रत्यक्ष-ज्ञान) होती है कि "जो मैं बचपनमें माँकी गोदमें खेला करता था, किशोर अवस्थामें लड़कोंसे खेलता था, जवानीमें विषयभोग भोगता था वही मैं अब वृद्ध अवस्थामें काँप रहा हूँ।" इस ज्ञानसे सिद्ध होता है कि बचपन आदि अवस्थावाला स्थूल शरीर नहीं रहता किन्तु हम रहते हैं अर्थात् शरीरके बदलनेपर भी हम (हमारा असली स्वरूप आत्मा) नहीं बदलते और जब जाग्रत् बदलकर सपना आता है तब इस स्थूल शरीरका भान न रहने पर भी आत्माका (अपने आपका) सपनेके साक्षी रूपसे तो भान रहता ही है। फिर जब सुषुप्ति अवस्था आती है तो वहाँ सूक्ष्म शरीरका भी भान नहीं रहता किन्तु उस सुषुप्तिके अज्ञान व आनन्दके साक्षीरूपसे आत्मा तो वहाँ भी विराजमान है। फिर निदिध्यासन करते करते जब समाधि अवस्था आजाती है तो वहाँ अज्ञान भी नहीं रहता बस केवल अपना आप। चेतनानन्द-रूप ही रह जाता है। इस प्रकार इन जाग्रत् आदि अवस्थाओंके बदलते रहनेपर तथा शरीरोंके न रहनें पर भी आत्मा नहीं बदलता और सदा

१५

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उनके व उनके अभावके साक्षीरूपसे विराजमान ही रहता है। इससे सिद्ध होता है कि ये अवस्थाएँ आत्मा की नहीं हैं। आत्मा इन तीनों शरीरों (पाँचों कोशों) से न्यारा है। और हे शिष्य! यह भी नियम है कि 'द्रष्टा कभी दृश्य नहीं बन सकता तथा ज्ञाता कभी ज्ञेय नहीं बन सकता।' इस नियमसे आत्मा कभी शरीर नहीं बन सकता अर्थात् आत्मा इन शरीरोंसे न्यारा है; क्योंकि तुम शरीरको जानते हो इसलिए तुम शरीर नहीं हो किन्तु शरीरके ज्ञाता (जाननेवाले) हो इस प्रकार तुम कान, त्वचा, आँख, रसना, नाक इन पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको तथा वाणी, हाथ, पाँव, गुदा, उपस्थ, इन पाँच कर्मइन्द्रियोंको भी जानते हो, इसलिए तुम इनसे भिन्न हो।

तुम (साक्षी) प्राणको भी जानते हो प्राण तुम्हारा असली स्वरूप नहीं है। तुम मनको भी जानते हो कि 'मेरा मन अभी भजनमें लग रहा है अथवा भाग रहा है'; इसलिए तुम मन भी नहीं हो। और बुद्धिको भी तुम (तुम्हारा असली स्वरूप साक्षी) जानते हो कि 'यह बात मेरी बुद्धिमें आ रही है अथवा मेरी बुद्धि काम नहीं करती, इस प्रकार बुद्धिको तथा उसके जानने अथवा नहीं जाननेको भी तुम जानते हो, अर्थात् तुम्हारा असली स्वरूप आत्मा उस बुद्धिका भी साक्षी है। इससे सिद्ध होता है कि तुम बुद्धिसे न्यारे हो। इस प्रकार तुम्हारा असली स्वरूप सबसे (तीनों शरीरों अर्थात् पाँचों कोशोंसे) न्यारा और सभीका साक्षी है। बस इस प्रकार अपने स्वरूपका

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निश्चय करना ही कोशोंसे आत्माका विवेक करना कहलाता है और यही आत्म-ज्ञान है।

इस प्रकार हे शिष्य! केवल अपनेको साक्षी समझने मात्रसे ही मनुष्य कृतकृत्य नहीं होता; अतः फिर अपने आप को ब्रह्म (व्यापक) रूपसे निश्चय करे अर्थात् जो मैं इन तीनों शरीरोंका साक्षी हूँ, वही मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् अस्ति-भाति-प्रिय रूपसे सर्वत्र व्यापक हूँ। जैसे मृगतृष्णाका जल वास्तवमें है ही नहीं, केवल कल्पित है और वह कल्पित जल बालूको गीला नहीं कर सकता; इसी प्रकार यह सारा संसार भी वास्तवमें मुझ साक्षी चेतनमें है ही नहीं, केवल कल्पित है; और यह कल्पित संसार मुझे (साक्षीको) सुखी दुःखी नहीं कर सकता। अन्तःकरणमें ही संसार है और अन्तःकरणको ही सुखी-दुःखी करता है। मेरा असली स्वरूप तो **अकर्ता, अभोक्ता, नित्य-मुक्त तथा सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म** (व्यापक) है। इस प्रकारका निश्चय ही ब्रह्मज्ञान कहलाता है और यही ज्ञान मोक्षका साधन है।

शंका:— भगवन्! यदि आत्मा सदा ही नित्य-मुक्त ब्रह्म-स्वरूप है और उसमें कभी बन्धन है ही नहीं तो फिर मोक्ष (बन्धनकी निवृत्ति) के लिए श्रवणादि ज्ञानके साधनोंकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर:— हे शिष्य! यद्यपि वास्तवमें आत्मा ज्ञानसे पहिले भी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप ही है, किन्तु अज्ञानके कारण अपने आपको (आत्माको) भ्रान्तिसे कर्ता भोक्ता मानकर सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिए अनेक साधन

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करता हुआ यह प्राणी नाना क्लेशोंको प्राप्त होता है। फिर पुण्य-उदय होनेसे जब कोई ब्रह्मज्ञानी गुरु मिल जाता है तब गुरु-मुख-द्वारा वेदान्तका श्रवण करनेसे "मैं कर्ता भोक्ता नहीं किन्तु ब्रह्म-स्वरूप हूँ; अब मुझे कुछ प्राप्त करना नहीं रहा, इसलिए इस शरीरसे स्वभाव-वशात् अथवा प्रारब्ध-वशात् चाहे कोई कर्म होता रहे, किन्तु मेरे लिए अब कुछ कर्त्तव्य नहीं रहा।" इस प्रकारका ज्ञान हो जाना ही वेदान्त-श्रवणका फल है, न कि ब्रह्मकी प्राप्ति; क्योंकि ब्रह्म अपना स्वरूप होनेके कारण नित्य-प्राप्त है। इसी दृष्टिसे श्रीरामचन्द्रजीने श्रीवशिष्ठजीसे कहा था "हे भगवन्! मैंने सब कुछ पाया और कुछ नहीं पाया।" श्रीवशिष्ठजीने कहा "यह कैसे"? तब रामचन्द्रजी बोले "भगवन्! सारा संसार ब्रह्म-स्वरूप है और उस ब्रह्मको जानना ही उसे प्राप्त करना है, सो उस ब्रह्मको मैंने जान लिया है अर्थात् ब्रह्मको मैंने पालिया है इसलिए मैंने सब कुछ पालिया।" श्रीवशिष्ठजी बोले, "फिर कैसे कहते हो कि मैंने कुछ नहीं पाया?" राम बोले "भगवन्! वह ब्रह्म तो मैं स्वयं हूँ, पाया क्या?" तब श्रीवशिष्ठजीने कहा, "यद्यपि ब्रह्म तुम्हारा असली स्वरूप है इसलिए उसकी प्राप्ति नहीं बनती, किन्तु मेरा असली स्वरूप ब्रह्म है यह आत्म-ज्ञान पहिले थोड़े ही था, यह ज्ञान तो तुमने नया पाया है।"

हे शिष्य! इस प्रकार दृढ़ अपरोक्ष आत्मज्ञान होनेके बाद यह जीव कृतकृत्य हो जाता है। क्योंकि स्मृति कहती है :— **"आत्म-लाभान्न परं विद्यते"** अर्थात् आत्म-लाभसे फिर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कोई और अधिक लाभ नहीं है अर्थात् आत्म-प्राप्तिके बाद फिर उस ज्ञानीको कुछ और प्राप्त करना नहीं रहता। साँसारिक वासनाएँ उसकी नष्ट हो जाती हैं; क्योंकि उसे संसारके मिथ्यापनेका तथा अपने सत्-चित्-आनन्दपनेका दृढ़ निश्चय हो जाता है। फिर वह कर्त्तव्यकी आगमें झुलसता नहीं रहता अर्थात् मैंने यह कर लिया है और यह नहीं किया है, यह करना चाहिए और यह करूँगा, इस प्रकारकी कर्त्तव्यकी चिंता उसे नहीं सताती। स्वभाव व प्रारब्ध-वशात् उसके शरीरसे कर्म होते रहते हैं। श्रुति भी कहती है:—

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥"

अर्थात् यदि यह पुरुष अपने आपको जानले कि 'यह ब्रह्म मैं हूँ' तो फिर उसे किस वस्तुकी इच्छा रहेगी किस पदार्थकी कामना उसे सतावेगी और किस लिए वह शरीर के दुःखोंसे दुःखी होगा। अर्थात् उस ज्ञानीकी कोई इच्छा न रहनेसे अपने आप कर्त्तव्य-बुद्धिसे (यह काम मुझे करना ही पड़ेगा इस बुद्धिसे) कोई कर्म नहीं होता। गीतामें भी ३ अध्यायके १७वें श्लोकमें भगवान्ने कहा है:—

"यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्म-तृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥"

अर्थात् जिस पुरुषका केवल आत्मामें ही प्रेम है न कि विषयोंमें और जो सदा आत्मामें ही तृप्त रहता है तथा आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, उसके लिए कोई कर्त्तव्य शेष रहता ही नहीं है।" इत्यादि श्रुति स्मृतिके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि ज्ञानीके लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है। वैसे स्वेच्छा-प्रारब्ध, अनिच्छा-प्रारब्ध, परेच्छा-प्रारब्ध, अथवा स्वभावसे उससे कर्म हो सकते हैं। लोगोंकी दृष्टिसे उसे **लोक-संग्रह** भी कहते हैं। वैसे वास्तव में वह कर्म नहीं है किन्तु **कर्माभास** है। क्योंकि कर्म कहते हैं उस क्रियाको जिसे कर्त्तापने और भोक्तापनेकी भावनाके साथ किया जाय। किन्तु ज्ञानी तो समझता है कि मैं असंग, अकर्त्ता, अभोक्ता, निर्विकार, अक्रिय, ब्रह्म-स्वरूप हूँ; कर्त्तापन, भोक्तापन मेरेमें हैं नहीं; यह शरीर ही प्रारब्ध-वशात् कर्म करता रहता है। इसलिए ज्ञानीके उन लोक-संग्रह-रूप अथवा शारीरिक कर्मोंको कर्माभास कहते हैं। उस कर्माभाससे उसे कोई लेप नहीं लगता। इसलिए शास्त्रोंमें आता है कि ज्ञानी कर्म करता हुआ भी नहीं करता अर्थात् शरीरकी दृष्टिसे कर्म करता हुआ भी साक्षी आत्माकी दृष्टिसे कर्म नहीं करता। गीतामें भी भगवान्ने ४ अध्यायके २०वें श्लोकमें कहा है:—

"त्यक्त्वा कर्म-फलासंगं नित्य-तृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥"

अर्थात् ब्रह्मानन्दमें मग्न रहनेवाला, कामना-रहित पुरुष, कर्मोंके फल और संग अर्थात् कर्तृत्व-अभिमानको त्यागकर कर्मोंमें अच्छी प्रकार वर्तता हुआ भी अपनेको अकर्त्ता ही समझता है। आगे २१वें श्लोकमें भी कहा है:— **"शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्"** अर्थात् आशा-रहित आत्म-ज्ञानी पुरुष, केवल शरीर-निर्वाहके लिए

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कर्म करता हुआ भी किल्बिष अर्थात् जन्म-मरणके कारण पुण्य-पापरूप अनिष्टको प्राप्त नहीं होता। और ५वें अध्याय के ७वें श्लोकमें भी कहा है :—

"योग-युक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्व-भूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥"

अर्थात् कर्मयोगसे युक्त अत एव शुद्ध-मन, देहको वशमें रखनेवाला, जितेन्द्रिय एवं जिसका आत्मा सम्पूर्ण प्राणियों का स्वरूपभूत आत्मा है अर्थात् जिसने "अहमेवेदं सर्वम्" (मैं ही यह सब कुछ हूँ) इस श्रुतिके वाक्यके अनुसार सारे संसारको अपना स्वरूप समझ लिया है, ऐसा ज्ञानी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता। क्योंकि वह कर्म नहीं किन्तु कर्माभास है अर्थात् उस कर्मको करता हुआ ज्ञानी अपने असली-स्वरूप साक्षीको अकर्त्ता समझता है। भगवान्‌ने भी इस कर्माभासकी विधिको बतलाते हुए गीता के ५वें अध्याय के ८ व ९ श्लोकमें कहा है :—

"नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥"

अर्थात् "हे अर्जुन! तत्त्वको जाननेवाला आत्मज्ञानी देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, जाता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, तथा आँखोंको खोलता और मीचता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अपने अपने अर्थोंमें बर्त रही हैं, इस प्रकार समझता हुआ, निःसंदेह ऐसे माने, कि मैं (मेरा असली स्वरूप साक्षी) कुछ नहीं करता ।"

श्रीनिश्चलदासजी महाराजने अपने गोप्य तत्त्व के उपदेशमें परमार्थता (वास्तविकता) का उपदेश करते हुए इस कर्माभासका वर्णन किया है।

शंका :— भगवन् ! उस गोप्य तत्त्वके उपदेशको कृपा करके समझाइये ।

उत्तर :— हे शिष्य ! **"माया-मात्रमिदं द्वैतम्"** इस श्रुति के कथन-अनुसार यह सारा संसार माया-मात्र है अर्थात् यह सारा संसार कल्पित है वास्तवमें शुद्धब्रह्मके अतिरिक्त कुछ सत्य वस्तु है ही नहीं। पञ्चदशीकार श्रीविद्यारण्य स्वामीने भी चित्रदीपमें श्रुतिका प्रमाण देते हुए कहा है :—

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥२३५॥"

अर्थात्— न कभी आत्माका नाश होता है। न यह आत्मा कभी देहके संबंधमें आता है। न इसे कभी सुख-दुःख होते हैं न यह कभी सुख-दुःखोंसे छूटनेके लिये साधना करता है। न इसमें कभी मुमुक्षुभाव ही रहता है और न कभी यह मुक्त ही होता है। यही परमार्थता (वास्तविकता) है। अर्थात् निरोध (नाश), उत्पत्ति, बद्धता, साधक-भाव, मुमुक्षुत्त्व तथा मुक्ति यह कुछ भी वास्तविक नहीं है। ये सब तो आत्म-सागरमें आनेवाली क्षुद्र लहरें हैं। ये सब इस आत्म-समुद्रमें उठ खड़े हुए तुच्छ बुलबुले हैं। समुद्रके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गम्भीर अन्तस्तलकी तरह यह आत्म-सागर सदा शान्त और एकरस ही बना रहता है। ऊपर कही हुई घटनाओंमें से एक भी घटना पारमार्थिक नहीं है। बस यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका निचोड़ किंवा परमार्थ रहस्य है।

शंका :— भगवन् ! आत्मा (शुद्ध-चेतन) में जीवपन और ईश्वरपन भी नहीं है क्या ?

उत्तर :— हे शिष्य ! वास्तवमें शुद्ध-चेतन ब्रह्ममें जीव-पन और ईश्वरपन भी कल्पित ही है। पंचदशीकारने भी चित्र-दीप प्रकरणमें कहा है :—

" मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
यथेच्छं पिबतां द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि ॥२३६॥"

अर्थात् मायारूपी कामधेनुके जीव और ईश्वररूपी दो बछड़े हैं, ये दोनों चाहे कितना ही द्वैतरूपी दूधको पीते रहें किन्तु वास्तवमें तत्त्व तो एक अद्वैत शुद्ध ब्रह्म ही है।

इसी प्रकार श्रीनिश्चलदासजी महाराज परमार्थ तत्त्वका उपदेश करते हुए कर्माभासका वर्णन करते हैं :—

॥ इंदव छन्द ॥

एक अखंडित ब्रह्म असंग, अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं।
मूलअज्ञान न सूछमथूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं॥
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न, तैजस विस्वस्वरूप न जामैं।
भोग न जोग न बन्ध न मोछ, नहिं कछु वामैं रु है सब वामैं॥
जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धिविलास बन्यो है।
ज्यूं सुपनेमहिं भोग्य न भोग, तऊं इक चित्र विचित्र जन्यो है॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लीन सुषुप्तिमैं मति होतहि, भेद भगै इकरूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथमात्र सु, निश्चल बुद्धि-प्रकास भन्यो है ॥

॥ सवैया छन्द ॥

जाके हिये ज्ञान-उजियारो, तम अंधियारो खरो विनास।
सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयं-प्रकास ॥
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है, जगत मनोरथ-मात्र विलास।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत, ज्यूँ ज्ञानीके कोउ न आस ॥
देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहै रु लेत न स्वाद।
सूँघि परसि परसै न न सूँघै, बैन न बोलै करै विवाद ॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद।
भोगै युवति सदा संन्यासी, सिष लखि यह अद्भुत संवाद ॥

इसका अभिप्राय कहते हैं :—

निजविषयनमैं इन्द्रिय वर्तें, तिनतैं मेरो नाहिं संग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साछी कूटस्थ असंग ॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, मोकूं लगै न रंचक रंग।
यह निश्चय ज्ञानीको जातैं, कर्त्ता दीखै करै न अंग (हे प्रिय) ॥

इस प्रकार गोप्य तत्त्वका उपदेश करनेके बाद भी शिष्यके चेहरेपर आत्मानन्द (खुदमस्ती) की झलक न देख कर, आचार्य (गुरु) ने सोचा कि 'इसका अन्तःकरण शुद्ध न होनेके कारण इसे आत्म-ज्ञानकी बातें समझमें नहीं आई हैं; इसलिए इसको **लय-चिन्तन** द्वारा 'ॐ'कारकी अहंग्रह-उपासना बतानी चाहिये; जिससे इसका अन्तःकरण शुद्ध होकर इसे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो जायगा। यह सोचकर गुरुजी बोले :—

गुरुजी :— हे शिष्य ! इस सारे संसार का कारण ब्रह्म

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं। और यह नियम है कि 'कार्य कारणसे भिन्न नहीं होता अपितु कारणका स्वरूप ही होता है।" जैसे जेवर सोनेके कार्य हैं तो वे कारणरूप सोनेसे भिन्न नहीं अपितु सोनेके स्वरूप ही हैं, जैसे तरंग और बुदबुदे जलसे भिन्न नहीं किन्तु जलके ही स्वरूप हैं अथवा जैसे मिट्टीके कार्य घड़ा आदि मिट्टीरूपी कारणसे भिन्न नहीं अपितु मिट्टी-स्वरूप ही हैं; ठीक इसी प्रकार यह सारा संसाररूप कार्य, कारणरूप ब्रह्मसे भिन्न नहीं अपितु ब्रह्म-स्वरूप ही है। श्रुति भी कहती है कि—"**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**" अर्थात् "यह सारा संसार, निश्चय जानो, ब्रह्मस्वरूप ही है।"

हे शिष्य ! इस प्रकार जगत्को ब्रह्म-स्वरूप समझकर, '**सोऽहम्**' "सो ब्रह्म मैं (मेरा असली स्वरूप साक्षी) हूँ" इस श्रुत्यनुसार लय-चिन्तनका अभ्यास करनेसे तुझे आत्मा का प्रत्यक्ष-ज्ञान हो जायगा।

शंका :—भगवन् ! कृपा करके इस लय-चिन्तनका प्रकार (तरीका) स्पष्ट करके समझाइये।

उत्तर :—हे शिष्य ! कार्यको कारणरूप समझकर जो चिन्तन किया जाता है उसे **लय-चिन्तन** अथवा **प्रतिलोम-परिणाम** भी कहते हैं। यह एक प्रकारका ध्यान है। जिसे अन्तः-करण शुद्ध न होनेके कारण अथवा बुद्धिकी मंदता, विषयों में आसक्ति, कुतर्क, विपर्यय-दुराग्रह अर्थात् "मैं मनुष्य हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ" इस प्रकार शरीर आदि अनात्म पदार्थोंको आत्मा समझनेका दुराग्रह, नष्ट हुए धन पुत्रादि प्रिय वस्तुओंको बार बार याद करना, ब्रह्मलोक आदि लोकोंकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इच्छा अथवा जन्मान्तरके हेतुभूत शेष प्रारब्ध, इत्यादि प्रतिबन्धकों (ज्ञानमें रुकावट डालनेवालों) के कारण, वेदान्त-श्रवणसे आत्माका प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं होता, उसे लय-चिन्तनके अभ्याससे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर आत्म-ज्ञान की प्राप्तिके बाद मोक्ष प्राप्त हो जायगा। वह लय-चिन्तन का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिये।

अभ्यास करते समय, कार्य कारणसे भिन्न नहीं होता किन्तु कारण-स्वरूप ही होता है यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये। यहाँ कारण शब्दसे उपादान-कारण लिया गया है; जैसे घड़ेका उपादान-कारण मिट्टी है, तो घड़ा मिट्टीसे भिन्न नहीं अपितु मिट्टी-स्वरूप ही है। इसी प्रकार यह सारा स्थूल ब्रह्मांड पंचीकृत भूतोंका (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन पंचीकृत भूतोंका) कार्य होनेसे पंचीकृत भूतोंसे भिन्न नहीं अपितु पंचीकृत-भूत-स्वरूप ही है। और पंचीकृत-भूत तथा अन्तःकरण आदि सूक्ष्म सृष्टि, अपंचीकृत भूतोंका कार्य है। जैसे :— अन्तःकरण अपंचीकृत भूतोंके सत्त्व-गुण-अंशका कार्य है, प्राण रजोगुण-अंशका कार्य है ज्ञान-इन्द्रियाँ और कर्म-इन्द्रियाँ भी उन्हीं अपंचीकृत भूतोंके ही कार्य हैं; इसलिये पंचीकृत भूत तथा अन्तःकरण आदि सूक्ष्म-सृष्टि, अपंचीकृत भूतोंसे भिन्न नहीं, अपितु उनका स्वरूप ही है। उन अपंचीकृत भूतोंमें भी, पृथ्वी जलका कार्य है, जल तेजका कार्य है, तेज वायुका कार्य है, वायु आकाशका कार्य है, आकाश तमोगुण प्रधान प्रकृतिका कार्य है और वह प्रकृति मायासे भिन्न नहीं; क्योंकि एक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ही वस्तुके (१) प्रधान (२) प्रकृति (३) माया (४) अविद्या (५) अज्ञान (६) शक्ति ये छः नाम हैं। इसलिये वह प्रकृति माया-स्वरूप ही है। इससे सिद्ध हुआ कि पाँचों अपंचीकृत (सूक्ष्म) भूत मायाके कार्य होनेके कारण मायासे भिन्न नहीं किन्तु माया-स्वरूप ही हैं और वह माया ब्रह्म चेतनकी शक्ति है। जैसे पुरुषकी सामर्थ्य-रूप शक्ति पुरुष से भिन्न नहीं होती, वैसे मायारूप शक्ति भी चेतनसे भिन्न नहीं है। अथवा यह माया शुद्ध-चेतनमें कल्पित ही है और कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती जैसे रस्सी में कल्पित सर्प वास्तवमें रस्सीसे कोई भिन्न नहीं होता किन्तु रस्सीका स्वरूप ही होता है; उसी प्रकार शुद्ध-चेतन ब्रह्ममें कल्पित यह माया भी वास्तवमें ब्रह्मसे कोई भिन्न नहीं किन्तु ब्रह्म-स्वरूप ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्थूल ब्रह्माँडसे लेकर माया तक यह सारा अनात्म संसार ब्रह्मसे भिन्न नहीं किन्तु ब्रह्म-स्वरूप ही है। हे शिष्य! इस प्रकार सभी अनात्म पदार्थोंका ब्रह्ममें लय-चिन्तन करके फिर "वह अद्वय ब्रह्म मैं हूँ" यह चिन्तन करना चाहिये।

शंका :— भगवन्! आपकी कृपासे मुझे लय-चिन्तनकी विधि तो अच्छी तरहसे समझमें आगई, किन्तु आपने पहिले यह कहा था कि जिसे आत्म-ज्ञानकी बातें समझमें न आवें उसे यह लय-चिन्तन-रूप ध्यान करना चाहिये; तो भगवन्! ज्ञान और ध्यानमें कुछ भेद है क्या?

उत्तर :— हाँ शिष्य! ज्ञान और ध्यानमें भेद है। ज्ञान तो केवल प्रमाण (आँख आदि इन्द्रिय) और प्रमेय (जानने

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

योग्य वस्तु) के आधीन है और ध्यान विधि (वेद आदि की आज्ञा), पुरुषकी इच्छा, विश्वास और हठके आधीन है।

जैसे :— घड़ेके प्रत्यक्ष ज्ञानमें आँखका घड़ेसे संबन्ध होनेपर पुरुषकी इच्छा, विश्वास, हठ अथवा किसीकी आज्ञा के बिना भी घड़ेका प्रत्यक्ष-ज्ञान हो ही जाता है। जैसे बिना इच्छा आदिके भी भाद्रपद-चतुर्थी (चौथ) के चन्द्रमारूप प्रमेय (ज्ञेय) से आँखरूप प्रमाणका सम्बन्ध होते ही चन्द्रमाका प्रत्यक्ष-ज्ञान हो ही जाता है। इसलिये **ज्ञान** प्रमाण और प्रमेयके ही आधीन है न कि विधि व इच्छा आदिके।

और ध्यानमें मनुष्य प्रवृत्त तभी होता है जब उसे वेद शास्त्रादिका कोई प्रेरक वचन प्रेरणा करता है कि इस ध्यान करनेसे यह फल मिलेगा इसलिए इस फलकी इच्छावाला यह ध्यान करे। इस प्रकारकी **प्रेरणाके** बाद भी यदि उपासककी **इच्छा** नहीं होगी तो भी ध्यान नहीं होगा और प्रेरणा व इच्छा रहते हुए भी यदि **विश्वास** न होगा तो भी ध्यान नहीं बन सकता और प्रेरणा, इच्छा तथा विश्वास होते हुए भी यदि मन चञ्चल है, बार बार भाग जाता है तो भी ध्यान नहीं हो सकता; इसलिये **हठसे** मनको रोकनेकी भी आवश्यकता है; इस प्रकार **ध्यान** विधि (प्रेरणा), इच्छा, विश्वास और हठ इन चार के आधीन है।

यही ज्ञान और ध्यानमें भेद है। श्रीविद्यारण्य स्वामी ने भी पंचदशीके ध्यानदीप प्रकरणके (७४) श्लोकमें ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और ध्यानमें क्या भेद है इस प्रश्नके उत्तरमें कहा है:— "वस्तु-तन्त्रो भवेद् बोधः कर्तृ तन्त्र-मुपासनम्" अर्थात् ज्ञान तो वस्तुके आधीन है, और ध्यान कर्त्ता (उपासक) के आधीन है। इस प्रकार हे शिष्य ! ध्यान और ज्ञानमें भेद माना जाता है।

शंका :— भगवन् ! यह जो आपने लय-चिन्तन-रूप ध्यान बतलाया, यह एक ही ध्यान है कि और भी ध्यानके प्रकार हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! ध्यान (उपासना) प्रधानतया चार प्रकारका होता है। (१) प्रतीक-ध्यान (२) संपद्-ध्यान (३) ध्येय-अनुसार-ध्यान (४) अहंग्रह-ध्यान।

(१) प्रतीक-ध्यान :— अन्य वस्तुके अन्यरूपसे ध्यान करने को **प्रतीक-ध्यान** कहते हैं। जैसे शालिग्रामका (एक प्रकार के गोल पत्थरका) विष्णुरूपसे तथा नर्मदेश्वरका (शिवलिङ्ग नामक एक गोल पत्थरका) शिवरूपसे ध्यान होता है।

यह ध्यान भी मुख्यतया आठ प्रकारका होता है (१) अग्नि (२) जल (३) सूर्य (४) मिट्टीकी मूर्ति (५) पत्थरकी मूर्ति (६) काष्ठकी मूर्ति (७) कागजका चित्र और (८) भीतपर रंगोंकी बनी हुई मूर्ति, इन आठ प्रकारों में से किसी न किसीमें अपने ध्येय-रूपकी भावना करके ध्यान किया जाता है। इन आठ प्रकारोंमेंसे फिर और कई प्रकार निकलते हैं जैसे तुलसी, पीपल, तलवार, त्रिशूल, बाण पंचाग्नि इत्यादि [छाँदोग्य उपनिषद्में पंचाग्नि विद्या प्रकरणमें स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष और स्त्री इन पाँच

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पदार्थोंकी अग्निरूपसे उपासना बताई है और श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न तथा वीर्य इन पाँच पदार्थोंकी पंच-अग्निकी आहुति रूपसे उपासना बतलाई है। वास्तवमें स्वर्ग आदिक अग्नि नहीं हैं और श्रद्धा सोम आदिक आहुति नहीं हैं, तो भी वेदकी आज्ञासे स्वर्गलोक आदिकोंकी अग्निरूपसे और श्रद्धा आदिकोंकी आहुति-रूपसे उपासना की जाती है।] ये सब प्रतीक उपासना (प्रतीक ध्यान) के अन्तर्गत हैं। इनमेंसे जिसका जिसमें मन लगे वह उसीमें ईश्वर-भावना रखकर ध्यान करे। इस प्रतीक-ध्यानका फल **सालोक्य मोक्ष** है।

(२) **संपद्-ध्यान** :— एक अंगमें संपूर्ण स्वरूपकी भावना करके ध्यान करनेको **संपद्-ध्यान** कहते हैं। जैसे किसी देवता के अनेक गुणोंमेंसे किसी एक गुणमें सब गुणोंकी भावना करके ध्यान करना, जैसे विराट्के किसी एक अंगमें सारे विराट् स्वरूपकी भावना करके ध्यान किया जाता है। इस संपद्-ध्यानका फल **सामीप्य मोक्ष** है।

(३) **ध्येय-अनुसार-ध्यान** :— जैसा ध्येय हो (ध्यान करने योग्य इष्टदेव हो) उसके उसी रूपसे ध्यान करनेको ध्येयानुसार ध्यान कहते हैं। जैसे :— शास्त्रने जैसा विष्णुका स्वरूप, शंख-चक्रादिक-सहित चतुर्भुज-मूर्ति-रूपसे वर्णन किया है, उसी रूपसे विष्णुका ध्यान करना विष्णुका **ध्येयानुसार ध्यान** है। इस ध्येयानुसार ध्यानका फल **सारूप्य मोक्ष** है।

(४) **अहंग्रह-ध्यान** :— जिस ध्यानमें अहं (मैं) का ग्रहण हो जैसे "मैं शिव हूँ" तो उस ध्यानको **अहंग्रह-ध्यान** कहते हैं। इस ध्यानको ध्येयानुसार-ध्यानका एक भेद भी मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इनमें अन्तर केवल इतना ही है कि ध्येयानुसार-ध्यानमें तो जैसा ध्येय होता है उसी स्वरूपका भेद-बुद्धिसे ध्यान किया जाता है और अहंग्रह-ध्यानमें ध्येय-स्वरूपका अपनेसे अभेद (एकता) करके ध्यान किया जाता है। जैसे :– विष्णुके स्वरूप का ध्यान करके फिर "सो विष्णु मैं हूँ" ऐसा ध्यान करना। जैसे प्रह्लादनें किया। यदि ब्रह्मका अहंग्रह-ध्यान करना हो तो "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा ध्यान करना चाहिये। इस अहंग्रह-ध्यानका फल **सायुज्य मोक्ष** है। इस प्रकार हे शिष्य ! ध्यान चार प्रकारके ही होते हैं।

शंका :– भगवन् ! ध्यानके प्रकार तो मुझे समझमें आगए किन्तु इनके फल जो सालोक्य, सारूप्य आदि मोक्ष बतलाए उनको कृपा करके समझाइये।

उत्तर :– हे शिष्य ! मोक्ष कुल छः प्रकारके होते हैं। (१) स्वर्ग्य-मोक्ष (२) सालोक्य-मोक्ष (३) सामीप्य-मोक्ष (४) सारूप्य-मोक्ष (५) सायुज्य-मोक्ष (६) कैवल्य-मोक्ष।

(१) **स्वर्ग्य-मोक्ष :–** जिस प्रकार राजाके देशमें जहाँ राज-प्रबन्ध अच्छा रहता है वहाँ लोग सुखी रहते हैं; उसी प्रकार ईश्वर-रूपी राजाके देशमें जहाँ अच्छे अच्छे भोग प्राप्त होते हैं जैसे स्वर्गमें; तो इस भूलोकसे मोक्ष (छुटकारा) पाकर वहाँ स्वर्गमें जाकर जब तक पुण्य नष्ट न हों तब तक स्वर्गके भोग भोगना **स्वर्ग्य-मोक्ष** कहलाता। यह मोक्ष स्वर्गकी कामना रखकर स्वर्गेष्टि यज्ञ आदि कर्म करनेसे प्राप्त होता है।

(२) **सालोक्य मोक्ष :—** जैसे राजा जिस नगरमें रहते

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं, उस नगरमें रहनेवाले लोग कभी कभी राजाके दर्शन भी कर लेते हैं और वहाँके भोग भी भोगते हैं। उसी प्रकार जिस देवताकी उपासना की हो उसी देवताके लोक की प्राप्ति होना और वहाँके भोगोंका भोगना **सालोक्य मोक्ष** कहलाता है। यह मोक्ष प्रतीक-ध्यानसे प्राप्त होता है।

(३) **सामीप्य मोक्ष** :— जैसे राजाके नौकर राजाके समीप रहते हैं उसी प्रकार विष्णु-लोक, शिव-लोक इत्यादि लोकोंमें जाकर शिव विष्णु आदिकोंके समीप निवास करनेको **सामीप्य मोक्ष** कहते हैं। यह मोक्ष संपद्-ध्यानसे प्राप्त होता है।

(४) **सारूप्य मोक्ष** :— राजाके छोटे भाईकी तरह, विष्णु-लोक आदिकोंमें विष्णु आदिकोंके समान चतुर्भुज आदि रूपको प्राप्त करके, वहाँके भोग भोगनेको **सारूप्य मोक्ष** कहते हैं। यह मोक्ष ध्येयानुसार-ध्यानसे प्राप्त होता है।

(५) **सायुज्य मोक्ष** :— राजाके बड़े पुत्र (युवराज) की तरह विष्णु लोक आदिकोंमें जाकर विष्णु आदिकोंके समान विभूतिको प्राप्त करना **सायुज्य मोक्ष** कहलाता है। यह मोक्ष अहंग्रह-ध्यानसे प्राप्त होता है।

किन्तु हे शिष्य ! ब्रह्मलोकको प्राप्त करके, वहाँ जगत्‌की उत्पत्ति पालन व संहारको छोड़कर और सारी कार्य-ब्रह्म (समष्टि सूक्ष्म सृष्टिके अभिमानी चेतन **हिरण्यगर्भ**) के समान विभूतिको अर्थात् संकल्प-मात्रसे सिद्ध होनेवाले दिव्य पदार्थोंको भोगनारूप जो **सार्ष्टि मोक्ष** है जिसे **सायुज्य मोक्ष** भी कहते हैं वह तो केवल 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार पर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(निर्गुण) अथवा अपर (सगुण) ब्रह्मका ॐकार-द्वारा अहंग्रह-ध्यान करनेसे ही प्राप्त होता है। ॐकारका अहंग्रह-ध्यान परब्रह्म और अपरब्रह्म-रूपसे दो प्रकारका होता है इस बातको बताते हुए श्रुति कहती है :— **"एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति।"**

अर्थात्— पिप्लाद मुनि कहते हैं, "हे सत्यकाम! निश्चितरूपसे यह ॐकार पर (निर्गुण) और अपर (सगुण) ब्रह्मरूप है [अर्थात् इस ॐकारका ध्यान पर-ब्रह्म और अपर-ब्रह्म-रूपसे दो प्रकारका होता है] अतः विद्वान् इसी मार्गसे [अर्थात् इस ॐकाररूपी साधनके द्वारा ही] एकतर को (पर-ब्रह्म और अपरब्रह्ममेंसे एकको) प्राप्त होता है। उसमें भी जो ब्रह्मलोकके भोगोंकी (सायुज्य मोक्षकी) इच्छा रखनेवाले, ॐकार-द्वारा **सगुण ब्रह्मका** अहंग्रह-ध्यान करते हैं, उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है किन्तु पुण्य क्षीण होनें के बाद फिर जन्म-मरणके चक्रमें आना पड़ता है। भगवान्ने भी श्रीमद्भगवद्गीताके ८वें अध्यायके १६वें श्लोकमें कहा है, **"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन"** अर्थात् हे अर्जुन! ब्रह्मलोक तक जितने भी लोक हैं, उनमें जाकर पुण्य क्षीण होनेके बाद फिर संसारमें जन्म लेना पड़ता है।

और जो ॐकार-द्वारा **निर्गुण ब्रह्मका** अहंग्रह-ध्यान करते हैं उन्हें यदि इस लोकके भोगोंकी इच्छा रह गई तो इस लोकमें अत्यन्त विभूतिवाले पवित्र सत्संगी कुलमें जन्म लेकर, पूर्व इच्छा-अनुसार सारे भोग प्राप्त करके,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy.

पहिले जन्मके अहंग्रह-ध्यानके संस्कारोंसे फिर अहंग्रह-ध्यानमें अथवा आत्म-विचारमें प्रवृत्त होकर आत्मज्ञान प्राप्त करके **कैवल्य मोक्षको** प्राप्त होते हैं।

यदि ब्रह्मलोकके भोगोंकी कामना रह गई हो तो वह निर्गुण ब्रह्मका अभेद उपासक उत्तरायण मार्ग (देव-मार्ग) से ब्रह्मलोक (सायुज्य मोक्ष) को प्राप्त करके, हिरण्यगर्भके समान बहुत समय तक संकल्पसिद्ध दिव्य पदार्थोंको भोग कर, प्रलय-कालमें जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होता है, तब ज्ञान प्राप्त करके **विदेह-मोक्ष** (कैवल्य-मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है। इसी बातको भगवान्‌ने गीतामें ८वें अध्यायके १३वें श्लोकमें कहा है :—

" ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ "

अर्थात् जो पुरुष ' ॐ ' इस एकाक्षर प्रणवका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा (मुझ निर्गुण ब्रह्मका) अभेदरूपसे ध्यान करता हुआ शरीरको छोड़ता है, वह पुरुष क्रमसे (देव-मार्ग-द्वारा ब्रह्मलोक जाकर, वहाँके भोग भोगनेके बाद ज्ञान प्राप्त करके) परम गतिको अर्थात् कैवल्य-मोक्षको प्राप्त हो जाता है।

यदि उस निर्गुण ब्रह्मके अहंग्रह-ध्यान करनेवालेको कोई इच्छा न होगी तो वर्तमान शरीर छूटनेके बाद किसी वैराग्यवान् ज्ञानीके घरमें जन्म लेकर वहाँ श्रवण मनन आदि ज्ञानके साधनों द्वारा उसे ज्ञान प्राप्त होकर **कैवल्य मोक्षकी** प्राप्ति हो जायगी। और यदि इसी जन्ममें अन्तःकरण शुद्ध

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होकर उस अहंग्रह-उपासकको श्रवण आदि साधनों द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया तो इसी जन्ममें उसका कैवल्य-मोक्ष हो जायगा ।

(६) **कैवल्य मोक्ष :—** जिस स्थितिको प्राप्त करनेके बाद फिर जन्म-मरणके चक्रमें आना नहीं पड़ता, उस ब्राह्मी स्थितिको **कैवल्य मोक्ष** कहते हैं । इस कैवल्य मोक्षको प्राप्त करनेके लिए किसी लोकमें जाना नहीं पड़ता किन्तु यहीं प्राण लीन हो जाते हैं अर्थात् जैसे स्वप्न टूटनेसे स्वप्नके शरीर आदि सभी पदार्थोंका लय हो जाता है उसी प्रकार विदेह मोक्ष होनेपर सूक्ष्म शरीर आदि सारे संसारका यहीं लय हो जाता है और घड़ेके टूटनेसे जैसे घटाकाश कोई उड़कर महाकाशमें नहीं मिलता किन्तु वह पहिलेसे ही मिला हुआ है; केवल घड़ेकी उपाधिसे होनेवाली भेद-प्रतीति ही नष्ट होती है, ठीक इसी प्रकार विदेह-मोक्ष होनेपर साक्षी-चेतन कोई दौड़कर ब्रह्ममें नहीं मिलता किन्तु वह पहिलेसे ही मिला हुआ है केवल अविद्या (अविद्या व अविद्याके कार्य सूक्ष्म-शरीरादि) उपाधिसे होनेवाली भेद-प्रतीति ही नष्ट होती है । और इस प्रकार भेद-प्रतीतिके सदाके लिए नष्ट हो जानेको (जन्म-मरणके अभावको) ही **कैवल्य मोक्ष** कहते हैं ।

शंका :— भगवन् ! यह कैवल्य मोक्ष कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! कैवल्य मोक्ष तो केवल आत्म-ज्ञानसे ही प्राप्त होता है । श्रुति (वेद) कहती है कि **"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"** अर्थात् बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं हो सकती । **"तमेवं विद्वानमृत इह भवति"** (नृसिंहपूर्व० १ । ६)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् उसको (ब्रह्मको) जाननेवाला इस लोकमें अमृत (मुक्त) हो जाता है। "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (श्वेता० ६ । १५) अर्थात् मोक्ष-प्राप्तिके लिये ज्ञानके सिवाय और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। "तरति शोकमात्मवित्" (छा० उ० ७ । १ । ३) अर्थात् आत्मज्ञानी शोक (जन्म-मरणादिदुःख) के पार हो जाता है। "निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।" (क० उ० १ । ३ । १५) उसका (ब्रह्मसे अभिन्न आत्माका) अनुभव कर लेनेपर मृत्युके मुखसे छूट जाता है।

"कर्मजं बुद्धि-युक्ता हि, फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्म-बन्ध-विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥"

(गीता २।५१)

अर्थात् समत्व-बुद्धि (ज्ञान) से युक्त आत्मज्ञानी पुरुष कर्म-जनित फल (जन्म-मरणादि संसार) को त्यागकर, जन्म-बन्धनसे मुक्त होकर समस्त उपद्रवोंसे रहित मोक्ष नामक परमपदको प्राप्त करते हैं।

"सर्वं ज्ञान-प्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।"
"ज्ञानाग्निः सर्व-कर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा"

(गीता ४ । ३६-३७)

अर्थात् "हे अर्जुन ! तू ज्ञानरूप नौकाके द्वारा ही समस्त पापरूप समुद्रसे अच्छी तरह पार उतर जायगा अर्थात् मुक्त हो जायगा।"

"उसी प्रकार ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्म (निर्बीज) कर देता है अर्थात् कर्मोंके भस्म होनेसे जन्म-मरण का चक्र टूट जाता है।"

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्व-विद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं यतः ॥"

अर्थात् इन सभी साधनोंमें आत्मज्ञान ही उत्कृष्ट साधन माना गया है तथा सम्पूर्ण विद्याओंमें भी वही सबसे बढ़कर है; क्योंकि इससे अमृतत्व (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ।

हे शिष्य ! इस प्रकार श्रुति (वेद), गीतादि स्मृति और इतिहासादिकोंके अनेक प्रमाण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि केवल ज्ञानसे ही **कैवल्य मोक्षकी** प्राप्ति हो सकती है न कि किसी और उपायसे ।

किन्तु जिसको अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण आत्म-ज्ञानकी बातें समझमें नहीं आतीं, उन्हें ॐद्वारा परब्रह्म (निर्गुण ब्रह्म) का अहंग्रह ध्यान करना चाहिये । जिससे उसका अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान-प्राप्तिके बाद मोक्ष हो जायगा ।

अथर्ववेदके श्रीनृसिंहोत्तर तापनी उपनिषद्में भी ॐकार द्वारा निर्गुण-ब्रह्मका ध्यान करनेसे ज्ञान होकर मोक्ष मिलता है यह बतलाते हुए कहा :—

"सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति अशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणो ह्यमनाः सच्चिदानन्दमात्रः स स्वराट् भवति य एवं वेद चिन्मयो ह्ययमोङ्कारश्चिन्मयमिदं सर्वं तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदमृतमभयमेतद्-ब्रह्माभयं वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यम् ।"

अर्थात् "वह कामना-रहित हो जाता है । उसके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मनसे सब लौकिक-कामनाएँ निकल जाती हैं। उसे सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्राप्त हो जाता है (उसके मनमें किसी भी वस्तुको पानेकी इच्छा शेष नहीं रहती)। वह केवल आत्माकी ही कामना रखता है; अनात्माकी नहीं। मृत्यु के पश्चात् उसके प्राण (साधारण प्राणियोंके समान) उत्क्रमण (कर्मफल-भोगार्थ अन्य शरीर धारण करनेके लिये गमन) नहीं करते, किन्तु यहीं (आत्मा-अभिन्न-ब्रह्ममें ही) लीन हो जाते हैं। वह पहिलेसे ब्रह्म-स्वरूप होता हुआ ही पुनः ब्रह्मको ही प्राप्त होता है [केवल ब्रह्मसे भिन्न होनेका भ्रममात्र ही दूर होता है; अर्थात् अपने असली स्वरूप ब्रह्मके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ अब्रह्मत्व (जीवपना) नष्ट हो जाता है]।

वह शरीर-रहित, इन्द्रिय-रहित, प्राण-रहित, तम (मोह एवं अज्ञान) से रहित तथा शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप स्वराट् (स्वयम्प्रकाश-ब्रह्म) हो जाता है **जो कि यह जान जाता है कि :—**

निश्चय ही यह ओंङ्कार चिन्मय है [चित्का अर्थ है चेतन-शुद्धचेतनब्रह्म; ॐकार चेतनका बोधक (वाचक) है; इसलिए चिन्मय है]। यह सब जो कुछ प्रतीत होता है, (सारा संसार), चिन्मय ही है। इसलिए ब्रह्मके लक्षणभूत चिन्मयत्वसे युक्त होनेके कारण, यह ॐकार परमेश्वर (ब्रह्म-स्वरूप) ही है। इस प्रकार संसार और ॐकार दोनों की चिन्मयता एक होनेके कारण, दोनों एकमात्र ब्रह्म ही हैं। यह अमृत-स्वरूप है, यह ब्रह्म सर्वथा भय-रहित है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जिसे ॐकार-द्वारा इस प्रकार ब्रह्मका ज्ञान हो जाता है, वह अवश्य ही भय-रहित ब्रह्म हो जाता है। यह इस प्रसंगका गूढ़ रहस्य है।"

शंका :— भगवन् ! तो कृपा करके बतलाइये कि ॐका अहंग्रह ध्यान कैसे किया जाय ?

उत्तर :— हे शिष्य ! ॐका अहंग्रह-ध्यान सगुण ब्रह्म व निर्गुण ब्रह्मरूपसे दो प्रकारका होता है, और ब्रह्मलोककी कामनावालेको सगुण ॐका तथा कैवल्य मोक्ष अथवा ब्रह्मलोक की प्राप्तिके बाद कैवल्य मोक्षकी कामनावालेको निर्गुण ॐका ध्यान करना चाहिये; यह तो मैंने पहिले विस्तारसे तुम्हें बतला दिया है। अब उन दोनों ध्यानोंमेंसे तुम्हें सगुण ॐके ध्यानका प्रकार (तरीका) बतलाकर फिर निर्गुण ॐके ध्यानका प्रकार बतलाता हूँ।

सगुण ॐका ध्यान :— सगुण-ध्यान दो प्रकारका होता है।

(१) साकार-सगुण-ध्यान (२) निराकार-सगुण-ध्यान।

(१) साकार-सगुण-ध्यान :— यह ध्यान नाना प्रकारका होता है; क्योंकि ईश्वरके साकार-सगुण-अवतार भी राम-कृष्ण आदि रूपसे नाना हुए हैं। उनमेंसे जिसमें भी मन लगे उसे ॐरूप समझ करके उससे **अभेद-भावना रखकर** ध्यान करने को, **साकार-सगुण ॐका अहंग्रह ध्यान** कहते हैं।

(२) निराकार-सगुण-ध्यान :— जो माया-विशिष्ट-चेतन ईश्वर है, वह रंग-रूप आदि आकारसे रहित होनेके कारण निराकार तो है किन्तु त्रिगुणमयी मायासे विशिष्ट (मिला हुआ) होनेके कारण सगुण भी है। उस निराकार सगुण ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का ॐकारसे अभेद करके अहंग्रह-ध्यान (सो मैं हूँ इस प्रकारके ध्यान) करनेको **निराकार सगुण ॐका अहंग्रह ध्यान** कहते हैं।

निर्गुण ॐका ध्यान :— संसारमें जो कुछ कार्य-कारणरूप वस्तुएँ दीखती हैं वे सब ओंकार-स्वरूप हैं, इसलिए सारा संसार ॐरूप माना जाता है। क्योंकि जितने भी संसारमें पदार्थ हैं उन सबमें नाम और रूप ये दो भाग हैं। उसमें रूप-भाग अपने-अपने नाम-भागसे अलग नहीं है किन्तु **नाम-स्वरूप** ही है; क्योंकि पदार्थोंके जो रूप अर्थात् आकार हैं, उनका नाम द्वारा निरूपण करके ही ग्रहण अथवा त्याग होता है। बिना नामके जाने केवल आकारसे कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। और जैसे घड़ेका नाश होनेपर भी मिट्टीके शेष रह जानेके कारण, घड़ा मिट्टीसे भिन्न नहीं अपितु मिट्टी-स्वरूप ही माना जाता है, उसी प्रकार आकारके नष्ट होने पर भी नाम शेष रह जाता है इसलिए आकार नामसे भिन्न नहीं किन्तु **नाम-स्वरूप** ही है।

किंवा जैसे घड़ा, सुराई, ढक्कन इत्यादि जितने भी मिट्टी के बने हुए पदार्थ हैं उन सबमें मिट्टी व्यापक होनेके कारण वे सब मिट्टीसे भिन्न नहीं किन्तु मिट्टी-स्वरूप ही हैं, ठीक इसी प्रकार जितने भी संसारमें आकार हैं उन सबमें नाम व्यापक है इसलिए वे सब अपने-अपने नाम-भागसे भिन्न नहीं किन्तु नाम-स्वरूप ही हैं। और एक नामवाले सभी पदार्थोंके आकारोंमें वह एक नाम व्यापक रहता है। जैसे घड़े नामके जितने भी पदार्थ हैं उन सबके आकारों में 'घड़ा' यह दो अक्षरका नाम व्यापक है। इससे यह सिद्ध होता है कि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

संसारमें जितने भी पदार्थ हैं उन सबके आकार (रूप-भाग), अपने अपने नाम भागसे भिन्न नहीं हैं किन्तु **नाम-स्वरूप** ही हैं। तथा जैसे घड़ेसे मिट्टी निकाल लेनेके बाद, घड़ा केवल नाममात्र रह जाता है, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्डमें व्यापक अस्ति, भाति व प्रियरूप परब्रह्मके सिवाय, यह संसार केवल नाममात्र है; अतएव इस संसारको नाम-स्वरूप कहते हैं।

जैसे सभी पदार्थोंके आकार नामसे भिन्न नहीं अपितु नाम-स्वरूप ही हैं, वैसे सभी नाम ॐकारसे भिन्न नहीं अपितु **ओंकार-स्वरूप** ही हैं, क्योंकि ओंकार सभी नामों (शब्दों) का वाचक है। श्रीनृसिंहोत्तर तापनी उपनिषद्में भी आया है कि **"नैवमिति पृष्ट ओमित्येवाह वाग्वा ओङ्कारो वागेव"** अर्थात् "जब कोई किसी मनुष्यसे पूछता है कि "क्या यह बात ऐसी ही है ? क्या यह बात ऐसी नहीं है ?" तो उसके उत्तरमें वह ओम् (हाँ) का ही उच्चारण करता है। (अतः सबका वाचक होनेके कारण ओंकार सर्वत्र व्यापक है।) **निश्चय ही वाणीमात्र ॐकार** है।" तथा सभी नाम ओंकारसे उत्पन्न हुए हैं; यह भी वेदमें प्रसिद्ध ही है। और यह नियम है कि 'सभी कार्य कारण-स्वरूप होते हैं'; इससे यह सिद्ध होता है कि **ओंकारके कार्य, जितने भी वाचक शब्द (नाम) हैं, वे सब ओंकार-स्वरूप हैं।**

इस प्रकार हे शिष्य ! संसारके सभी पदार्थोंके आकार नाम-स्वरूप हैं और सभी नाम ओंकार-स्वरूप हैं। इससे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सिद्ध हुआ कि सारा संसार ओंकार-स्वरूप है। और वह ओंकार ब्रह्म-स्वरूप है; क्योंकि जैसे **"ॐकार एवेदं सर्वम्"** यह श्रुति सारे संसारको ॐकार-स्वरूप बतलाती है। उसी प्रकार **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** अर्थात् निश्चय ही यह सब कुछ ब्रह्म है। **"सर्वं ह्येतद् ब्रह्म"** अर्थात् यह सब ब्रह्म ही है। **"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन"** अर्थात् एक ही अद्वितीय ब्रह्म है, यह जो नानापन प्रतीत हो रहा है वह वास्तवमें कुछ नहीं।" इत्यादि श्रुतियाँ सारे संसार को ब्रह्म-स्वरूप ही बतलाती हैं और ॐकार ब्रह्मका वाचक है तथा ब्रह्म वाच्य है। वाच्य और वाचकका आपसमें अभेद होता है, इसलिए भी ॐकार ब्रह्म-स्वरूप है। और जब सारा संसार ब्रह्ममें कल्पित है तो ॐकार भी संसारके अन्तर्गत होनेके कारण ब्रह्ममें कल्पित ही है। यह नियम है कि 'कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती।' इस नियमसे भी ॐकार ब्रह्म-स्वरूप ही है। और श्रुति भी कहती है कि **"ओमित्येतदक्षरं परं ब्रह्म"** अर्थात् "ओम्" यह अक्षर परब्रह्म-स्वरूप है।" श्रीमद्भगवद्गीतामें भी ८वें अध्यायके १३वें श्लोकमें आया है कि **"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म"** अर्थात् ओम् यह एक अक्षर ब्रह्म-स्वरूप है।" इत्यादि प्रमाणोंसे यह सिद्ध हुआ कि **ॐकार ब्रह्म-स्वरूप** है। इसलिए हे शिष्य! ॐकारको ब्रह्म-स्वरूप समझकर चिन्तन करना चाहिए।

और जैसे ओंकार ब्रह्म-स्वरूप है इसी प्रकार आत्मा भी ब्रह्म-स्वरूप ही है; क्योंकि जैसे ब्रह्म सत् चित् आनन्द

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्वरूप है, वैसे आत्मा भी सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। श्रुति भी कहती है:— **"सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्स्यम्"** अर्थात् यह सत्य है कि आत्मा ब्रह्म ही है और ब्रह्म आत्मा ही है; इस विषयमें कोई संशय नहीं करना चाहिए। और **"अयमात्मा ब्रह्म"** अर्थात् यह आत्मा (मेरा असली स्वरूप) ब्रह्म है। इसलिए हे शिष्य ! ओंकारका अहंग्रह ध्यान करते समय ओंकार, ब्रह्म और आत्मा इन तीनोंका आपसमें **अभेद-चिन्तन** करना चाहिए।

शंका :— भगवन् ! तो कृपा करके बतलाइये कि ॐकार का ध्यान करते समय ॐ, ब्रह्म तथा आत्माका अभेद-चिन्तन कैसे किया जाय ?

उत्तर :— हे शिष्य ! ॐकारका वाच्य (अर्थ) जो ब्रह्म है वही आत्माका असली स्वरूप है अर्थात् वह आत्मासे (अपने असली स्वरूप साक्षीसे) भिन्न नहीं है। इसलिए ॐकारका ध्यान करते समय **"वह ॐकार-रूप ब्रह्म मैं हूँ"** इस प्रकार ॐकार, ब्रह्म और आत्माके अभेदका चिन्तन करना चाहिए।

हे शिष्य ! अब इन तीनोंके अभेदको, अधिक स्पष्ट करनेके लिए, नीचे एक कोष्ठक-चित्र (नक्शा) बताता हूँ, जिसे समझनेसे तुम्हें इनका अभेद अच्छी तरहसे समझमें आजायगा।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ओंकार, ब्रह्म और आत्माके चार पादोंका कोष्ठक–चित्र (नक्शा)

क्रमाङ्क	(१)	(२)	(३)	(४)
ॐकारके मात्रा-रूप चार पाद	अकार	उकार	मकार	अमात्र
आत्माके चार पाद	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	जीव-साक्षी वा कूटस्थ
ब्रह्मके चार पाद	विराट्	हिरण्यगर्भ	ईश्वर	ईश्वर-साक्षी वा शुद्ध ब्रह्म
उपाधि	स्थूल	सूक्ष्म	कारण	स्थूलादि तीनोंका अभाव
अवस्था	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	तुरीया

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हे शिष्य ! जैसे शास्त्रोंमें ब्रह्मके चार पाद (¼ अंश) कहे गए हैं वैसे आत्मा तथा ॐकारके भी चार पाद हैं। जैसे :—

ब्रह्मके चार पाद :— (१) विराट् (२) हिरण्यगर्भ (३) ईश्वर और (४) तत्पदका लक्ष्य ईश्वर-साक्षी।

आत्माके चार पाद :— (१) विश्व (२) तैजस (३) प्राज्ञ और (४) त्वंपदका लक्ष्य जीव-साक्षी।

ॐकारके चार पाद :— (१) अकार (२) उकार (३) मकार और (४) अमात्र

(१) विराट् :— समष्टि-स्थूल-प्रपंच-सहित-चेतन अर्थात् सम्पूर्ण-स्थूल-संसार-सहित-चेतनको **विराट्** कहते हैं। जिसका वर्णन गीताके ११वें अध्यायमें भी आया है।

(१) विश्व :— व्यष्टि-स्थूल-अभिमानी अर्थात् भिन्न-भिन्न स्थूल शरीरमें अभिमान करनेवालेको **विश्व** कहते हैं।

विराट् और विश्व इन दोनोंकी उपाधि एक स्थूल ही है; अतः **विश्व, विराट्से भिन्न नहीं अपितु विराट्रूप ही है** अर्थात् इन दोनोंका परस्पर अभेद है।

इस विराट्रूप विश्वके सात अंग हैं :—

(१) स्वर्गलोक **मूर्धा** (मस्तक) है। (२) सूर्य चन्द्र **नेत्र** हैं। (३) वायु **प्राण** है। (४) आकाश **कबन्ध** (धड़) है। (५) समुद्रादिरूप जल **मूत्र-स्थान** है। (६) पृथ्वी **पाद** (पाँव) है। (७) जिस अग्निमें होम किया जाता है वह अग्नि **मुख** है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और इसी विराट्‌रूप विश्वके उन्नीस मुख हैं—पाँच प्राण, पाँच कर्म-इन्द्रिय, पाँच ज्ञान-इन्द्रिय और चार अन्तःकरण; (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) ये उन्नीस, मुखकी तरह भोगके साधन होनेके कारण, मुख कहलाते हैं।

किन्तु इन उन्नीस मुखोंमें जो श्रोत्रादिक दस इन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण हैं, इन चौदहोंसे अपने अपने विषय तथा देवताकी सहायताके बिना कोई भोग नहीं हो सकता; इसलिए पाँच प्राण और चतुर्दश-त्रिपुटी (दश इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण ये चौदह और उनके विषय व देवता इन सबको मिलाकर चतुर्दश-त्रिपुटी कहते हैं) ये सभी विराट्‌रूप विश्वके **मुख** कहलाते हैं।

शंका :—भगवन् ! इस चतुर्दश-त्रिपुटीको कुछ स्पष्टरूप से समझाइये।

उत्तर :— हे शिष्य ! अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव के समुदायको **त्रिपुटी** कहते हैं।

अध्यात्म :— ज्ञान-इन्द्रिय, कर्म-इन्द्रिय और अन्तःकरण को **अध्यात्म** कहते हैं।

अधिभूत :— इनके विषयोंको **अधिभूत** कहते हैं।

अधिदैव :— और इनके सहायक देवताओंको **अधिदैव** कहते हैं।

ये त्रिपुटियाँ कुल चौदह हैं। जैसे :—

(१) श्रोत्र-इन्द्रिय (कान) **अध्यात्म** है, इसका विषय 'शब्द' **अधिभूत** है और दिशाका अभिमानी देवता **अधिदैव** है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(२) त्वचा-इन्द्रिय **अध्यात्म** है, इसका विषय 'स्पर्श' **अधिभूत** है और वायुका अभिमानी देवता **अधिदैव** है।

(३) नेत्र-इन्द्रिय **अध्यात्म** है, रूप **अधिभूत** है और सूर्य **अधिदैव** है।

(४) रसना-इन्द्रिय **अध्यात्म** है, रस **अधिभूत** है और वरुण **अधिदैव** है।

(५) घ्राण-इन्द्रिय (नाक) **अध्यात्म** है, गन्ध **अधिभूत** हैं और अश्विनीकुमार वा पृथिवीका अभिमानी देवता **अधिदैव** है।

(६) वाक्-इन्द्रिय (वाणी) **अध्यात्म** है, वक्तव्य (कहने योग्य) **अधिभूत** है और अग्नि देवता **अधिदैव** है।

(७) हस्त-इन्द्रिय (हाथ) **अध्यात्म** है, पदार्थको ग्रहण करना **अधिभूत** है और इन्द्र **अधिदैव** है।

(८) पाद-इन्द्रिय (पाँव) **अध्यात्म** है, गमन (चलना) **अधिभूत** है और विष्णु **अधिदैव** है।

(९) गुदा-इन्द्रिय **अध्यात्म** है, मलका त्याग **अधिभूत** है और यम **अधिदैव** है।

(१०) उपस्थ-इन्द्रिय (भोग-इन्द्रिय) **अध्यात्म** है, ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति **अधिभूत** है और प्रजापति **अधिदैव** है।

(११) मन **अध्यात्म** है, मननका विषय **अधिभूत** है और चन्द्रमा **अधिदैव** है।

(१२) बुद्धि **अध्यात्म** है, बोद्धव्य (जानने योग्य) **अधिभूत** है और बृहस्पति **अधिदैव** है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(१३) अहंकार **अध्यात्म** है, अहंकारका विषय **अधिभूत** है और रुद्र **अधिदैव** है।

(१४) चित्त **अध्यात्म** है, चिन्तनका विषय **अधिभूत** है और क्षेत्रज्ञ जो साक्षी है वह **अधिदैव** है।

यह चतुर्दश-त्रिपुटी और पाँच प्राण ये उन्नीस विराट् रूप विश्वके **मुख** हैं।

जैसे विश्वका विराट्से अभेद है, वैसे ओंकारकी पहिली मात्रा जो अकार है उसका भी विराट्रूप विश्वसे अभेद है; क्योंकि जैसे ब्रह्मके चार पादोंमें पहिला पाद **विराट्** है और आत्माके चार पादोंमें पहिला पाद **विश्व** है उसी प्रकार ओंकारके मात्रारूप चार पादोंमें पहिला पाद **अकार** है। इस प्रकार विराट्, विश्व और अकार इन तीनोंमें 'पहिलापन' रूप समान धर्म होनेके कारण, **इन तीनोंका आपसमें अभेद चिन्तन** करना चाहिए।

(२) **हिरण्यगर्भ** :— समष्टि-सूक्ष्म-प्रपंच-सहित-चेतन अर्थात् सारे सूक्ष्म संसार सहित चेतनको **हिरण्यगर्भ** कहते हैं।

(२) **तैजस** :— व्यष्टि-सूक्ष्म-अभिमानी अर्थात् भिन्न भिन्न (अकेले) सूक्ष्म शरीरमें अभिमान करनेवालेको **तैजस** कहते हैं।

जो सात अंग और उन्नीस मुख पहिले विश्वके बताए, वे ही तैजसके भी समझने चाहियें। उनमें भेद केवल इतना है कि :— विश्वके जो अंग और मुख हैं, वे **ईश्वर-रचित** हैं और तैजसके जो इन्द्रिय-देवता-विषयरूप त्रिपुटी और मूर्धादि अंग हैं वे **मनोमय** हैं। और विश्वके भोग्य

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बाह्य शब्दादिक **स्थूल** हैं व तैजसके भोग्य मानस होनेके कारण सूक्ष्म हैं; अतः विश्वका भोग स्थूल होनेके कारण, उसे **स्थूलका भोक्ता** कहते हैं तथा तैजसका भोग सूक्ष्म होनेके कारण, उसे **सूक्ष्मका भोक्ता** कहते हैं। और विश्व **बहिःप्रज्ञ** है व तैजस **अन्तःप्रज्ञ** है; क्योंकि विश्वकी जो अन्तःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है, वह बाहर जाती है और तैजसकी बाहर नहीं जाती।

हे शिष्य ! जैसे पहिले विश्व और विराट्का अभेद बताया था वैसे **तैजस और हिरण्यगर्भका भी अभेद** (एकता) समझना; क्योंकि जैसे तैजसकी उपाधि सूक्ष्म है वैसे हिरण्यगर्भकी भी उपाधि सूक्ष्म ही है।

इस प्रकार तैजस और हिरण्यगर्भकी एकताको जाननेके बाद उस हिरण्यगर्भरूप तैजसका ओंकारकी दूसरी मात्रा उकारसे अभेद-चिन्तन करना चाहिए; क्योंकि जैसे ब्रह्मके चार पादोंमें दूसरा पाद **हिरण्यगर्भ** है और आत्माके चार पादोंमें दूसरा पाद **तैजस** है, उसी प्रकार ओंकारके मात्रा-रूप चार पादोंमें भी दूसरा पाद **उकार** है। इस प्रकार हिरण्यगर्भ, तैजस और उकार इन तीनोंमें 'दूसरापन' रूप समान धर्म होनेके कारण, **इन तीनोंका आपसमें अभेद-चिन्तन** करना चाहिये।

(३) **ईश्वर** :– समष्टि-कारण-प्रपंच – (समष्टि-अविद्या अर्थात् माया)-सहित-चेतनको **ईश्वर** कहते हैं।

(३) **प्राज्ञ** :– व्यष्टि-कारण-(अविद्या)-अभिमानी अर्थात् भिन्न भिन्न कारण-शरीरमें अभिमान करनेवालेको **प्राज्ञ**

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कहते हैं।

जैसे विश्व और तैजसका भोग त्रिपुटीसे होता है, वैसे प्राज्ञके भोगकी भी त्रिपुटी है। उसमें चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है वह **अध्यात्म** है, अज्ञानसे आवृत (ढका हुआ) जो स्वरूपानन्द है वह **अधिभूत** है और ईश्वर **अधिदैव** है।

अविद्यासे आवृत उस स्वरूप-आनन्दको भोगनेके कारण, वेदने इस प्राज्ञको **आनन्दभुक्** कहा है। और जैसे विश्व बहि:प्रज्ञ और तैजस अन्त:प्रज्ञ है वैसे यह प्राज्ञ **प्रज्ञानघन** है; क्योंकि जैसे पीसे हुए अन्नके कण जलकी सहायतासे आपसमें मिलकर, घनरूपमें (एक पिंडरूपमें) हो जाते हैं अथवा वर्षाके जलके अनेक कण तलावमें एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार जाग्रत् व स्वप्नके अनेक प्रज्ञान (ज्ञान) सुषुप्ति-अवस्थामें एक अविद्या-रूपमें (घनरूपमें) हो जाते हैं; उस अविद्यामें स्थित जो अधिष्ठान कूटस्थ चेतनका प्रतिबिम्बरूप प्राज्ञ-जीव है, वह **प्रज्ञानघन** कहलाता है।

ईश्वर और प्राज्ञ इन दोनोंकी उपाधि एक कारण (अविद्या) ही है; अत: **प्राज्ञ, ईश्वरसे भिन्न नहीं अपितु ईश्वर-रूप ही है** अर्थात् प्राज्ञ और ईश्वर दोनोंका परस्पर अभेद है।

हे शिष्य! जैसे प्राज्ञका ईश्वरसे अभेद है, उसी प्रकार ओंकारकी तीसरी मात्रा जो मकार है उसका भी ईश्वररूप प्राज्ञसे अभेद है; क्योंकि जैसे ब्रह्मके चार पादोंमें तीसरा पाद **ईश्वर** है और आत्माके चार पादोंमें तीसरा पाद प्राज्ञ है

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उसी प्रकार ओंकारके भी मात्रारूप चार पादोंमें तीसरा पाद मकार है। इस प्रकार ईश्वर, प्राज्ञ और मकारमें 'तीसरापन' रूप समान धर्म होनेके कारण, **इन तीनोंका परस्पर अभेद चिन्तन** करना चाहिए।

हे शिष्य! इस प्रकार तुमने अकारके वाच्य (वाच्य-अर्थ) विराट्-अभिन्न-विश्व, उकारके वाच्य हिरण्यगर्भ-अभिन्न-तैजस व मकारके वाच्य ईश्वर-अभिन्न-प्राज्ञ, इन तीनोंका **पृथक्-पृथक् रूपसे अभेद-चिन्तन** सुना। इस चिन्तनके बाद फिर इन तीनों (विश्व, तैजस व प्राज्ञका) **आपसमें अभेद-चिन्तन** (एकता-चिन्तन) करना चाहिए।

शंका :— भगवन्! इस शरीरमें आपने तीन जीव बताए; (१) जाग्रत्का विराट्रूप **विश्व** (२) स्वप्नका हिरण्यगर्भरूप **तैजस** और (३) सुषुप्तिका ईश्वररूप **प्राज्ञ**। सो भगवन्! इन भिन्न भिन्न अवस्थावाले तीनों जीवोंकी आपसमें एकता कैसे हो सकती है?

उत्तर :— हे शिष्य! वास्तवमें जीव एक ही है। यह जो तुम्हें भेद प्रतीत हो रहा है, वह केवल अवस्थाओंकी उपाधि से ही। यदि जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ न होतीं तो तुम्हें विश्व, तैजस व प्राज्ञ; ये तीन प्रकारके जीवके भेद भी नज़र न आते।

और ये जीव वास्तवमें ही यदि तीन होते तो स्वप्न की सृष्टिका भोक्ता तो है तैजस-जीव और जाग्रत्में उस स्वप्न-सृष्टिका वर्णन करता है विश्व-जीव; यह कैसे बन सकता। देखे एक बताये दूसरा यह नहीं बन सकता। इसी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रकार सुषुप्ति अवस्थामें भी आनन्दका अनुभव करता है प्राज्ञ-जीव और जाग्रत्‌में उस आनन्दका वर्णन करता है विश्व-जीव; क्योंकि जाग्रत् अवस्थामें स्वप्न व सुषुप्ति अवस्थाका वर्णन करनेवाला प्राज्ञ व तैजस न मानकर केवल विश्व ही माना जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव एक ही है केवल उपाधिके कारण उसके तीन नाम रखे गये हैं। **वही एक जीव,** जब सुषुप्ति अवस्था होती है तब स्वरूप-आनन्द-आकार अविद्याकी वृत्तिरूप उपाधि होनेके कारण **प्राज्ञ** कहलाता है और जब स्वप्न-अवस्थामें कण्ठ स्थानमें आता है तब **तैजस** कहलाता है तथा जब जाग्रत्-अवस्थामें नेत्र स्थानमें आता है तब **विश्व** कहलाता है।

उस विश्वकी उपाधि, स्थूल सूक्ष्म व कारण (अज्ञान) ये तीनों हैं; इसलिए वह तीनों अवस्थाओंको जानता है। तैजस की उपाधि सूक्ष्म और कारण ये दो हैं, इसलिए वह उस समय जाग्रत्‌को नहीं जानता किन्तु स्वप्नको जानता है तथा इन्द्रियाँ कारण शरीरमें लीन हैं। और प्राज्ञकी उपाधि केवल कारण (अविद्या) है, इसलिए वह उस समय जाग्रत् व स्वप्नको नहीं जानता; क्योंकि जाग्रत्‌को जाननेवाली इन्द्रियाँ व स्वप्न संसार सभीका उस समय अज्ञानमें लय हो जाता है। इस प्रकार उपाधिके भेदसे इन तीनोंमें भेद प्रतीत होता है; परन्तु वास्तवमें इन तीनोंमें स्वरूपसे कोई भेद नहीं है अर्थात् ये तीनों एकरूप ही हैं। इसलिए **इन तीनोंका (विश्व, तैजस व प्राज्ञका) आपसमें अभेद-चिन्तन करना चाहिये।**

(४) तत्पदका लक्ष्य ईश्वर-साक्षी :— विराट्, हिरण्यगर्भ

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और ईश्वरमें अनुगत शुद्ध चेतन, जो इन तीनोंका अधिष्ठान है वह **ईश्वर-साक्षी** वा **ब्रह्म** कहलाता है।

(४) **त्वं पदका लक्ष्य जीव-साक्षी :—** विश्व, तैजस और प्राज्ञमें अनुगत शुद्ध चेतन, जो इन तीनोंका अधिष्ठान है वह **जीव-साक्षी** वा **कूटस्थ** कहलाता है।

हे शिष्य! जैसे विराट् और विश्व, हिरण्यगर्भ और तैजस, ईश्वर और प्राज्ञ इन सबका वास्तवमें अभेद है, वैसे विराट् हिरण्यगर्भ व ईश्वर इन तीनोंमें अस्ति-भाति-प्रिय-रूपसे अनुगत (व्यापक) **ईश्वर-साक्षी** अर्थात् **ब्रह्म** और विश्व, तैजस व प्राज्ञ इन तीनोंमें अस्ति-भाति-प्रियरूपसे अनुगत **जीव-साक्षी** अर्थात् **कूटस्थ** इन दोनोंका भी वास्तवमें **अभेद** है। समष्टि-स्थूल-सूक्ष्म-कारण व व्यष्टि-स्थूल-सूक्ष्म-कारण उपाधियोंसे ही केवल उस अधिष्ठानरूप एक चेतनके जीवसाक्षी (कूटस्थ) व ईश्वर-साक्षी (ब्रह्म) ये दो नाम पड़े हैं। उस शुद्ध चेतनसे वास्तवमें इन तीनों उपाधियोंका कोई संबन्ध नहीं है। वह नहीं बहिःप्रज्ञ है, न अन्तःप्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न कर्म-इन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियोंका विषय है, न बुद्धिका विषय है और न किसी शब्दका ही विषय है। ऐसा जो तुरीय है वही **शुद्ध-ब्रह्म** है।

हे शिष्य! जैसे ईश्वर-साक्षी (ब्रह्म) व जीव-साक्षी (कूटस्थ) दोनों एक हैं अर्थात् इन दोनोंका आपसमें अभेद है, वैसे ॐकार का चौथा पाद जो अमात्र है [ओंकार की तीनों मात्रा अकार, उकार व मकारमें अस्ति-भाति-प्रियरूपसे अनुगत व्यापक शुद्ध चेतन जो ॐकार का परमार्थरूप है वह **अमात्र**

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कहलाता है; क्योंकि उस परमार्थरूपमें कोई मात्रा विभाग नहीं है ।] उसका भी ईश्वर-साक्षीरूप जीव-साक्षीसे अभेद है; क्योंकि जैसे ब्रह्मके चार पादोंमें चौथा पाद **ईश्वर-साक्षी** है और आत्माके चार पादोंमें चौथा पाद **जीव-साक्षी** है, उसी प्रकार ॐकारके भी चार पादोंमें चौथा पाद **अमात्र** है । इस प्रकार ईश्वर-साक्षी जीव-साक्षी और अमात्रमें 'चौथापन' रूप समान धर्म होनेके कारण, **इन तीनोंका आपसमें अभेद चिन्तन** करना चाहिये ।

इस प्रकार हे शिष्य ! ॐकार, ब्रह्म और आत्माको एकरूप समझकर उनके परमार्थ स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये ।

शंका :– भगवन् ! आपने ॐकार, ब्रह्म व आत्माके परमार्थ स्वरूप के चिन्तन करनेकी आज्ञा दी, किन्तु मैं इनके परमार्थरूपको नहीं जानता, अतः इन तीनोंका परमार्थ स्वरूप और अपरमार्थ स्वरूप कौनसा है, यह कृपा करके समझाइये ।

उत्तर :– हे शिष्य ! पहिले जो ब्रह्मरूप आत्माके चार पाद बताए थे, उनमेंसे जो पहिले तीन पाद हैं वे ॐकार के वाच्य ब्रह्मरूप आत्माका **अपरमार्थ-स्वरूप** है, और चौथा पाद **परमार्थ-स्वरूप** है । जैसे ब्रह्म-अभिन्न-आत्माके दो स्वरूप हैं वैसे ॐकारके भी दो स्वरूप हैं ।

(१) अकार, उकार और मकार ये तीन मात्रारूप जो अक्षर हैं वह ओंकारका **अपरमार्थ-स्वरूप** है । और

(२) तीनों मात्राओंमें व्यापक जो अस्ति-भाति-प्रियरूप अधिष्ठान चेतन अमात्र है वह ॐकारका **परमार्थ-स्वरूप** है ।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हे शिष्य ! इस प्रकार दो स्वरूपवाला जो ॐकार है, उसका दो स्वरूपवाले आत्मासे अभेद (एकता) जानना चाहिये और इन दोनोंके (आत्माके पादों और ॐकी मात्राओंके) अभेदको जाननेके बाद, **लय-चिन्तन** करना चाहिये, जिससे ज्ञान उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त होता है ।

शंका :— भगवन् ! लय-चिन्तन कैसे किया जाय, यह कृपा करके समझाइये ।

उत्तर :—हे शिष्य ! कार्यकी उत्पत्ति और लय दोनों कारणमें ही होते हैं, इसलिए कार्य कारणसे भिन्न नहीं अपितु कारण-स्वरूप ही है; जैसे घड़ेकी उत्पत्ति और लय दोनों मिट्टीमें ही होते हैं इसलिए घड़ा मिट्टीसे भिन्न नहीं अपितु मिट्टी-स्वरूप ही है; इस प्रकार कार्यके कारणमें लय करनेको **लय-चिन्तन** कहते हैं ।

हे शिष्य ! अब तुझे मैं ओंकारका उच्चारण करते समय आत्मा-अभिन्न-ब्रह्मके चार पादोंका लय-चिन्तन कैसे किया जाय, यह समझाता हूँ :—

(१) **विश्वरूप जो अकार** है वह तैजसरूप उकारसे भिन्न नहीं किन्तु **उकार-रूप** ही है; इस प्रकार विश्वरूप अकारका तैजसरूप उकारमें लय करना चाहिये । [यहाँ विश्व शब्दसे विश्व-अभिन्न-विराट्का ग्रहण करना चाहिये इस प्रकार आगे भी जो तैजस व प्राज्ञ शब्द आवेंगे उनसे तैजस-अभिन्न-हिरण्यगर्भ व प्राज्ञ-अभिन्न-ईश्वरका ही ग्रहण करना चाहिए ।]

(२) जिस उकारमें अकारका लय किया है, उस

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तैजसरूप उकारका फिर प्राज्ञरूप जो मकार है उसमें लय करना चाहिये; अर्थात् तैजसरूप उकार, प्राज्ञरूप मकारसे भिन्न नहीं अपितु मकाररूप ही है, ऐसा चिन्तन करना चाहिये ।

(३) जिस **प्राज्ञरूप मकारमें** उकारका लय किया है, उस मकारका फिर **तुरीयरूप** जो ओंकारका परमार्थरूप **अमात्र** है, उसमें लय करना चाहिये; क्योंकि ओंकारका जो परमार्थ-स्वरूप (अकार, उकार तथा मकारमें व्यापक अस्ति-भाति-प्रियरूप) अमात्र है, वही अस्ति-भाति-प्रियरूप शुद्ध चेतन, आत्मा-अभिन्न-ब्रह्मका परमार्थ-स्वरूप तुरीय (चौथा) पाद है । और उस शुद्धब्रह्ममें ईश्वर और प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं । यह नियम है कि, 'जो जिसमें कल्पित होता है वह कल्पित उस अधिष्ठानसे भिन्न नहीं अपितु उसका स्वरूप ही होता है' जैसे रस्सीमें कल्पित साँप रस्सीसे भिन्न नहीं अपितु रस्सी-स्वरूप ही है। इस नियमसे प्राज्ञ-अभिन्न ईश्वररूप मकार, साक्षी-अभिन्न-शुद्ध-ब्रह्म-रूप अमात्रसे भिन्न नहीं अपितु उसका स्वरूप ही है ।

इस प्रकार जिस ओंकारके परमार्थ-स्वरूप शुद्ध ब्रह्मरूप अमात्रमें, सबका लय किया है,' **"वह मैं हूँ"** ऐसा एकाग्र-चित्त होकर चिन्तन करना चाहिये । इस प्रकारके चिन्तनको **निर्गुण प्रणव** (ॐकार) का **अहंग्रह ध्यान** कहा जाता है ।

इस रीतिसे हे शिष्य ! स्थावर-जंगम-रूप, असंग, अद्वय, असंसारी, नित्य-मुक्त, निर्भय व ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थ स्वरूप है "वह मैं हूँ" ऐसा चिन्तन करनेसे आत्म-ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्पन्न होता है। इसलिये ज्ञान-द्वारा मुक्तिरूप फलका देनेवाला यह ओंकारका निर्गुण-ध्यान सब ध्यानोंसे उत्तम माना जाता है।

जो पूर्वरीतिसे ओंकारके स्वरूपको जानता है वही **मुनि** है; क्योंकि मुनि नाम मनन करनेवालेका है। यह ओंकारका चिन्तन मननरूप है। जो यह मनन नहीं करता वह मुनि नहीं है। माण्डूक्य-उपनिषद्के गौडपादीय कारिकामें आया है **"ओंकारो विदितो येन, स मुनिर्नेतरो जनः ॥"** (माण्डू० का० १ । २९) अर्थात् जिसने ओंकारको जाना है वही मुनि है; और कोई पुरुष नहीं। यह ओंकारका चिन्तन परमहंस आसक्ति-रहित महात्माओंका गोप्य धन है। संसारमें आसक्त बहिर्मुख वृत्तिवालोंको यह धन हाथ नहीं आसकता। जिसका स्वभाव सात्त्विक व वृत्ति अन्तर्मुख है वही इसके योग्य है और वही इस द्वारा ज्ञान प्राप्त करके **जीवन्मुक्तिके** आनन्दको लूटकर **कैवल्य-मोक्षको** प्राप्त कर सकता है।

शंका :— भगवन् ! जिस व्यक्तिकी इस निर्गुण-ध्यानमें वृत्ति न लग सके, उसे क्या करना चाहिये ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह निर्गुण-ध्यान यदि न हो सके तो माया-विशिष्ट-चेतन **कारण-ब्रह्म-रूप** सगुण ईश्वरका ध्यान करना चाहिये। वह भी न हो सके तो हिरण्यगर्भ वैश्वानर, हरि, हर, गौरी, गणेश, सूर्य और उनके अवतार **कार्य-ब्रह्म-रूप** सगुण साकार ईश्वरका ध्यान करना चाहिये। वह भी न हो सके तो उनकी प्रतिमादि प्रतिनिधिरूप

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सगुण साकार ईश्वरका ध्यान करना चाहिए। यदि सगुण-साकार-उपासना भी न हो सके तो फलकी कामनासे रहित स्ववर्णाश्रमके अनुसार कर्मोंको ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करके उसके साथ साथ नामकीर्तनादि द्वारा भगवान्का भजन करना चाहिये। और यदि वह भी न हो सके तो सकाम (किसी कामनासे भी) शुभ कर्म तो अवश्य ही करने चाहियें। और जो भाग्य-हीन दुष्ट पुरुष शुभ कर्म भी नहीं कर सकता वह तो इस संसार-सागरमें गोता खाता रहेगा और नाना ठोकरों (दुःखों) का अनुभव करता हुआ इस जन्म-मरणके चक्रमें भटकता रहेगा। किन्तु हे शिष्य ! जिनके कोई पुण्य कर्म उदित होते हैं वे निष्काम कर्म व उपासना-द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होनेके बाद, प्रभु-कृपासे गुरु-प्राप्ति होनेपर आत्म-ज्ञान प्राप्त करके इस संसारकें जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार गुरु-मुखसे श्रवण करके, अदृष्टि नाम जो मध्यम-शिष्य था वह उस परमानन्दको प्राप्त करनेके लिये निर्गुण ओंकारके अहंग्रह-ध्यानमें प्रवृत्त हो गया।

इति श्रीविचारसागरदर्पणे गुरु-वेदादि-व्यावहारिक-प्रतिपादनं वा मध्यमाधिकारी-साधन-वर्णनं नाम पंचमस्तरंगः समाप्तः ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ॐ

षष्ठस्तरंगः

अथ श्रीगुरु-वेदादि-साधन-वर्णनम्

पहिले तरंगमें ॐकारकी उपासना और संसारकी उत्पत्तिके कथनसे पहिले, यह कहा गया था कि जो चेतन से भिन्न अज्ञान और अज्ञानका कार्य संसार है उसे अनात्मा कहते हैं, और वह सारा अनात्म संसार स्वप्नकी तरह मिथ्या है। इस बातको सुनकर दोनों भाइयोंको शान्त देखकर छोटा भाई 'तर्क-दृष्टि' गुरुजीसे पूछने लगा।

शंका :— भगवन्! आपने जगत्को मिथ्या बतलानेके लिए स्वप्नका उदाहरण दिया। किन्तु सपना यदि मिथ्या होता तब तो आपका यह दृष्टान्त ठीक बन सकता, परन्तु मुझे तो सपना सत्य प्रतीत होता है; क्योंकि सपना एक प्रकारसे संसारके सत् पदार्थोंकी स्मृति (यादास्त) ही है। हम देखते हैं कि जिन पदार्थोंका हमें जाग्रत्में किसी भी प्रकारका अनुभव नहीं होता, उनके सपने भी नहीं आते और जिनका अनुभव होता है केवल उनके ही सपने आते हैं; इससे सिद्ध होता है कि सपना जाग्रत्के पदार्थोंकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्मृति ही है। और सत्य पदार्थोंकी स्मृति भी सत्य ही कहलाती है, इसलिए सपना भी सत्य ही है।

उत्तर :— हे शिष्य! यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं; क्योंकि जिन पदार्थोंकी स्मृति होती है वे पदार्थ सामने प्रत्यक्ष नहीं दीखते; किन्तु सपनेमें तो हमें सपनेके समस्त पदार्थ सामने प्रत्यक्ष दीखते हैं। इसलिए हम स्वप्नके पदार्थों को जाग्रत्के पदार्थोंकी स्मृति नहीं कह सकते। यदि सपने में केवल स्मृति-ज्ञान (यादास्त) ही होता तो जगनेके बाद स्वप्न-द्रष्टा ऐसे कहता कि "मुझे सपनेमें जाग्रत्के हाथी-घोड़े इत्यादि पदार्थोंकी याद आई थी।" किन्तु ऐसा कोई नहीं कहता। सब यही कहते हैं कि "मैंने सपनेमें **जाग्रत् जैसे** हाथी-घोड़े देखे।" इन प्रत्यक्ष अनुभवोंसे यह सिद्ध होता है कि सपना जाग्रत्के पदार्थोंकी स्मृति नहीं है। और जब सपना स्मृति सिद्ध नहीं हुआ, तो यह कहना कि "जाग्रत् के सत्य पदार्थोंकी स्मृति होनेके नाते सपना सत्य है" यह ठीक नहीं। और यह भी नियम नहीं है कि जिन पदार्थोंका जाग्रत्में अनुभव होता है वे ही हमें सपनेमें दीखते हैं; क्योंकि कभी कभी सपनेमें ऐसे भी पदार्थ दिखते हैं, जिनको न कभी देखा हो, न सुना हो।

शंका :— भगवन्! इसी जन्ममें देखे सुने पदार्थोंकी ही केवल स्मृति नहीं होती किन्तु जिन पदार्थोंका अनुभव हमने पहिले जन्मोंमें किया है, उनकी भी स्मृति हुआ करती है; जैसे बालक जन्मते ही माँका दूध पीनेके लिए स्तनोंकी तरफ बढ़ता है। अब उस समय उस बालकको कौन बताता अथवा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सिखाता है कि 'माँके स्तनोंमें दूध होता है और उसको इस प्रकार पीना चाहिये;' कोई नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि पहिले जन्मोंमें अनुभव किये हुए स्तनपानकी उसको स्मृति होती है और उसी स्मृतिसे वह दूध पीनेमें प्रवृत्त होता है। अतः यह मानना चाहिये कि सपनेमें जो ऐसे पदार्थ दीखते हैं, जिनका जाग्रत्में अनुभव न किया हो; तो पहिले जन्मोंमें उनका अनुभव अवश्य ही किया हुआ होगा।

उत्तर :– हे शिष्य! स्वप्नमें तो कभी कभी ऐसे भी पदार्थ दीखते हैं, जिनका किसी भी जन्ममें ज्ञान होना असंभव है। जैसे कभी स्वप्नमें अपने कटे हुए सिरको भी देखा जाता है। इस प्रकारका ज्ञान तो कभी जाग्रत्में हो ही नहीं सकता। अथवा जाग्रत्-संस्कारोंका मिला जुला रूप सपनेमें दिखता है। और यह तो तुमने पहिले सुन ही लिया कि यह स्वप्न जाग्रत्-पदार्थोंकी स्मृति होता तो प्रत्यक्ष नहीं दिखता; क्योंकि स्मृति प्रत्यक्ष नहीं होती और स्वप्न में तो पदार्थ प्रत्यक्ष दिखते हैं। इसलिए हे शिष्य! स्वप्न के पदार्थोंको जाग्रत्के पदार्थोंकी स्मृति कहना ठीक नहीं है।

शंका :— अच्छा गुरुजी! कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि– स्वप्नमें सूक्ष्म-शरीर स्थूल-शरीरसे बाहर निकलकर जाग्रत्के सत्य पदार्थोंको भोगता है इसलिए सपना मिथ्या नहीं किन्तु सत्य है; क्योंकि जाग्रत्के पदार्थ सत्य हैं तो उनका भोगना भी सत्य है।

उत्तर :– हे शिष्य! यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि यदि सूक्ष्म शरीर बाहर निकल जाय, तो प्राण भी सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत (शामिल) हैं; उनके निकलनेसे तो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यह स्थूल-शरीर मुर्देकी तरह अमंगल हो जायगा। किन्तु हम देखते हैं कि सोए हुए मनुष्योंके प्राण (श्वास) चला करते हैं। यदि तुम कहो कि प्राण तो रहते हैं, किन्तु अन्तःकरण और ज्ञान-इन्द्रियाँ बाहरके पदार्थोंको भोगनेके लिए निकलती हैं; तो यह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि प्राण, मन और इन्द्रियोंका राजा है, अतः उसके बिना निकले, वे इन्द्रियाँ अपने आप बाहर नहीं निकल सकती; क्योंकि शरीरसे बाहर निकलना और फिर अन्दर आना, यह क्रिया बिना प्राणके, केवल मन व इन्द्रियोंमें नहीं हो सकती। योग-शास्त्रमें भी कहा है कि "प्राणके रोकनेसे मन रुकता है और प्राणके चलनेसे मन चलता है।" इस से भी यह सिद्ध होता है कि मन तथा इन्द्रियोंका गमन प्राण के आधीन है। अतः यदि प्राण बाहर नहीं निकलेगा तो मन व इन्द्रियाँ भी बाहर नहीं निकल सकतीं। और यदि थोड़ी देरके लिए 'दुर्जन-तोषन्याय' से तुम्हारी बात मान भी लें, तो फिर सपनेमें जितना व्यवहार होता है उसका संबन्ध जाग्रत्में भी रहना चाहिए; किन्तु ऐसा होता नहीं। हम सो रहे हैं रात्रिको और सपना आ रहा है दिनका, या दिनमें सपना आ रहा है रात्रिका। और यदि कभी तुमने किसीसे सपनेमें कर्ज़ा लिया हो तो वह जाग्रत्में फिर चुकाना चाहिए। किन्तु तुम तो कहोगे कि "मैंने जो सपनेमें रुपये लिये थे वे कोई जाग्रत्वाले सच्चे थोड़े ही हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि सपनेका कोई संबन्ध इस जाग्रत् संसारसे नहीं है; किन्तु वह सारा संसार अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय (अन्तःकरण, इन्द्रिय और विषय) ये तीनों (त्रिपुटी समाज) सपनेमें (कण्ठकी हितानामक नाड़ी में) नए ही कल्पित (अनिर्वचनीय) उत्पन्न होते हैं। हे शिष्य ! जिस प्रकार स्वप्नमें अनिर्वचनीय पदार्थ नए उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार जितने भी भ्रम-स्थल हैं अर्थात् जहाँ जहाँ भ्रम होता है वहाँ वहाँ विषयकी (अनिर्वचनीय पदार्थ की) नई उत्पत्ति होती है।

शंका :— स्वामी जी ! जैसे सपनेमें पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है, ऐसे जाग्रत्में भी घड़ा, हाथी, घोड़ा इत्यादि सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं; अतः जैसे हम जाग्रत्के पदार्थोंको उत्पन्न होनेके नाते सत्य मानते हैं, उसी प्रकार सपनेके पदार्थोंको भी उत्पन्न होनेके नाते सत्य ही मानना पड़ेगा। अतः सपनेके पदार्थोंको मिथ्या सिद्ध करनेके लिए आपको यह कहना चाहिये कि जाग्रत्के पदार्थ तो उत्पन्न होकर प्रतीत होते हैं इसलिये सत् हैं, और स्वप्नके पदार्थ बिना उत्पन्न हुए ही प्रतीत होते हैं इसलिए मिथ्या हैं।

उत्तर :— हे शिष्य ! यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं; क्योंकि जो पदार्थ उत्पन्न ही नहीं होता है तो उसकी प्रतीति भी नहीं होती, जैसे बाँझके पुत्र उत्पन्न ही नहीं होता है तो दीखता भी नहीं। किन्तु सपना तो प्रत्यक्ष दीखता है; इसलिए सपनेके पदार्थ उत्पन्न होते हैं, ऐसा मानना पड़ेगा। परन्तु जो पदार्थ बिना देश, काल आदि सामग्रीके उत्पन्न होते हैं, जैसे बाज़ीगरका (जितना समय चाहिए उससे पहिले) उत्पन्न किया हुआ आमका पेड़ अथवा मेस्मेरिज़मसे पैदाकी हुई रुपयों

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

की वर्षा, उनको सच्चा नहीं किन्तु मिथ्या ही माना जाता है। इस प्रकार सपनेमें जो बड़ा देश और वर्षों तक लंबा काल (समय) नज़र आता है वह स्वयं कल्पित है तो फिर बिना सच्चे देश काल आदिके जो हाथी घोड़े इत्यादि पदार्थ बनते हैं वे भी मिथ्या ही हैं। और वहीं सपनेमें जो एक दूसरेके कार्य-कारण दीखते हैं, जैसे सपनेके पुत्रका कारण पिता दीखता है तो वह भी भ्रान्ति ही है; क्योंकि वहाँ तो पिता-पुत्र दोनों एक ही समयमें इकट्ठे अनिर्वचनीय उत्पन्न होते हैं, इसलिए वहाँ कोई किसीका कार्य तथा कारण नहीं माना जा सकता। किन्तु सपनेके सारे पदार्थोंका उपादान-कारण अज्ञान है और अधिष्ठान ब्रह्म है; क्योंकि जितने भी मिथ्या (अनिर्वचनीय) पदार्थ होते हैं, उन सब का उपादान-कारण अज्ञान (माया) और अधिष्ठान ब्रह्म ही माना जाता है। जैसे रस्सीमें कल्पित सर्पका उपादान-कारण रस्सी-उपहित-चेतनके आश्रित **अज्ञान** है, और अधिष्ठान रस्सी-उपहित-**चेतन** है। अतः जिस प्रकार रस्सीमें कल्पित सर्पको अज्ञानका परिणाम और चेतन (ब्रह्म) का विवर्त माना जाता है, उसी प्रकार स्वप्न भी अज्ञानका परिणाम और चेतनका विवर्त ही है।

शंका :— भगवन् ! आपने पहिले कहा था कि भ्रान्ति की निवृत्ति अधिष्ठानके ज्ञानसे ही होती है, तो स्वप्नकी निवृत्ति भी उसके अधिष्ठान (ब्रह्म) के ज्ञानसे ही होनी चाहिए। फिर बिना ब्रह्म-ज्ञानके ही अज्ञानीके स्वप्नकी निवृत्ति कैसे हो जाती है ?

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— हे शिष्य ! निवृत्ति दो प्रकारकी होती है; एक अत्यन्त-निवृत्ति, दूसरी लयरूप-निवृत्ति।

(१) **अत्यन्त-निवृत्ति :—** कारण-सहित कार्यकी निवृत्ति को अत्यन्त-निवृत्ति कहते हैं। जैसे सर्पका कारण रस्सीका अज्ञान और सर्प; इन दोनोंकी निवृत्ति एक साथ ही होती है।

(२) **लयरूप-निवृत्ति :—**कार्यके कारणमें लय होनेको लयरूप-निवृत्ति कहते हैं। जैसे सोनेके ज़ेवरोंका गलनेके बाद, सोनेमें लय हो जाता है। उनमेंसे लय-रूप-निवृत्ति तो अधिष्ठानके ज्ञानके बिना भी हो सकती है। जैसे बिना अधिष्ठानके ज्ञानके भी, ज़ेवरका गलनेके बाद, अपने अधिष्ठान सोनेमें लय हो जाता है। परन्तु अत्यन्त-निवृत्ति बिना अधिष्ठानके ज्ञानके नहीं हो सकती। इसलिए स्वप्नकी अत्यन्त-निवृत्ति तो बिना ब्रह्म-ज्ञानके नहीं होती; किन्तु अपने कारण (अज्ञान) में लय-रूप-निवृत्ति तो बिना ब्रह्म-ज्ञानके हो जाती है।

शंका :— भगवन् ! आपने जैसे स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म और उपादान-कारण अज्ञान कहा, वैसे वेदान्त मतमें जाग्रत् के व्यावहारिक पदार्थोंका भी अधिष्ठान ब्रह्म है, और उपादान-कारण अज्ञान है। तो फिर दोनोंकी सत्ता भिन्न भिन्न क्यों मानी जाती है; या तो दोनोंकी सत्ता व्यावहारिक मानें या प्रातिभासिक मानें।

उत्तर :— हे शिष्य ! वस्तुतः तो दोनों (जाग्रत् और स्वप्न) एक ही अधिष्ठान ब्रह्ममें कल्पित होनेके नाते मिथ्या

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अथवा प्रातिभासिक ही हैं, किन्तु उनमें व्यावहारिकपन और प्रातिभासिकपनका जो भिन्न भिन्न व्यवहार होता है, वह उनके उपादान-कारणकी दृष्टिसे ही; क्योंकि जाग्रत्के पदार्थोंका उपादान-कारण केवल अनादि अज्ञान (मूलाज्ञान) है और स्वप्नके पदार्थोंका उपादान-कारण निद्रा-दोष-सहित अज्ञान (तूलाज्ञान) है।

इस दृष्टिसे तीन प्रकारकी सत्ता मानी जाती है। जिन पदार्थोंका कारण केवल अनादि अज्ञान है उनकी सत्ता **व्यावहारिक,** और जिन पदार्थोंका कारण किसी दोष-सहित अज्ञान है, उनकी सत्ता **प्रातिभासिक** और चेतन (ब्रह्म) की सत्ता **पारमार्थिक** मानी जाती है। किन्तु वस्तुतः जाग्रत् और स्वप्नमें कोई अन्तर (भेद) नहीं है; क्योंकि जैसे सपना जाग्रत्में नहीं रहता इसलिए मिथ्या कहलाता है, इस प्रकार जाग्रत् संसार भी तो सपनेमें नहीं रहता अर्थात् प्रतीत नहीं होता इसलिए मिथ्या ही है। जैसे सपनेका संसार बिना देश और कालके उत्पन्न होता है, इसलिए मिथ्या है तो इस प्रकार जाग्रत् संसारको भी मिथ्या ही कहना चाहिये; क्योंकि इस जाग्रत् संसारकी उत्पत्ति जिस ब्रह्मसे हुई है, उसमें तो देश-कालका लेशमात्र भी नहीं है; बल्कि सपनेके संसारके लिए तो थोड़ा देश (कण्ठकी हिता नाड़ी) और थोड़ा समय माना भी जाता है, किन्तु जाग्रत् संसारके कारणरूप ब्रह्ममें तो थोड़ासा भी देशकाल नहीं है; इसलिए दोनों (जाग्रत् और स्वप्न) बिना देशकालके उत्पन्न होनेके कारण मिथ्या ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका :— भगवन् ! हम तो देखते हैं कि सब वस्तुएँ अपने अपने समयपर और अपने अपने स्थानपर ही उत्पन्न होती हैं। जैसे सब ऋतुएँ अपने अपने समयपर अपना अपना फल देती हैं, और भिन्न भिन्न फल भिन्न भिन्न देशों में भी उत्पन्न होते हैं। तो फिर आपने यह कैसे कहा कि सपनेकी तरह जाग्रत्के पदार्थ भी बिना देश और कालके उत्पन्न होनेके कारण मिथ्या हैं।

उत्तर :— हे शिष्य ! जैसे तुम्हें जाग्रत्में जाग्रत्के पदार्थ अपने अपने देशकालमें उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार स्वप्नमें भी तो सपनेके पदार्थ अपने अपने स्थान पर और अपने अपने समयपर उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं। जैसे सपनेके कश्मीरमें कश्मीरके फल, और सपनेके मरुस्थल में वे ही बालूके टीले नज़र आते हैं, तथा भिन्न भिन्न ऋतुओंका भिन्न भिन्न प्रभाव भी दीखता है; किन्तु ये सब देशकाल सपनेमें सच्चे प्रतीत होते हुए भी जैसे मिथ्या माने जाते हैं, उसी प्रकार जाग्रत्के देशकाल भी सच्चे मालूम होते हैं, किन्तु हैं मिथ्या। क्योंकि जिस प्रकार जिस अज्ञान (व्यष्टि अज्ञान अर्थात् अविद्या) ने सपनेके पदार्थोंको खड़ा किया है, उसी अज्ञानने सपनेके देशकाल को तथा उस देशकालमें कारणपनेको भी उत्पन्न किया है; ठीक इसी प्रकार जिस अज्ञान (समष्टि अज्ञान अर्थात् माया) ने इस जाग्रत् संसारके पदार्थोंको उत्पन्न किया है, उसी अज्ञान अर्थात् मायाने जाग्रत्के देशकालको तथा उसके कारणपनेको भी उत्पन्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सारांश यह है कि जैसे सपनेके सारे देशकाल इत्यादि पदार्थ अज्ञानके परिणाम (परिवर्तित स्वरूप) और चेतन (साक्षी) के विवर्त होनेके कारण मिथ्या हैं; ठीक इसी प्रकार इस जाग्रत् संसारके भी सारे देशकाल इत्यादि पदार्थ अज्ञान (माया) के परिणाम और चेतन (ब्रह्म) के विवर्त होनेके कारण मिथ्या ही हैं।

शंका :— स्वामीजी ! ये आपकी बातें समझमें तो आती हैं किन्तु हृदयमें जचती नहीं; क्योंकि सपना तो थोड़ी देर तक ही रहता है, और सपनेके पदार्थ बिना किसी कारणके ही उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए सपना तो मिथ्या है, किन्तु जाग्रत् में तो हम वर्षों तक जीवित रहकर अपना अपना व्यवहार करते हैं, और सब वस्तुएँ अपने अपने कारणसे उत्पन्न होती हैं, घड़ा मिट्टीसे बनता है, बिना वृक्षके फल नहीं लगता, बिना माता पिताके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकार सब जाग्रत् पदार्थ अपने अपने कारणसे ही उत्पन्न होते हैं; अतः वे मिथ्या कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! सपनेमें भी तो जब तक स्वप्न चलता है, तब तक जाग्रत्की तरह वो ही लम्बा समय और एक दूसरे के कारण व कार्य प्रतीत होते हैं। मानलो कि कोई छोटा १५ वर्षका लड़का है उसको ऐसा सपना आया है कि मैं अब पच्चीस वर्षका नवयुवक हो गया हूँ, और विवाह कर लिया है, पुत्र पौत्र भी हो गए हैं। अब वह बूढ़ा होनेके बाद एक दिन अपने पौत्रको जल लानेके लिए कहता है, वह पौत्र सामने रखे हुए मिट्टीके घड़ेमेंसे जल लाकर जब पिलाता है, तब वह

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अपने पौत्रको आज्ञाकारी देखकर बड़ा प्रसन्न होता है। और उसी क्षण अकस्मात् उसकी आँखें खुलते ही उसका सारा वर्षों का बना हुआ संसार क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है।

उस समय सपनेमें वह लड़का अपने आपको बूढा समझ रहा था और बराबर जैसे पचासों वर्ष बीत गए हों, ऐसा लम्बा समय उसे प्रतीत हो रहा था। मेरा पुत्र मेरेसे तथा मेरा पौत्र मेरे पुत्रसे उत्पन्न हुआ है, और घड़ा मिट्टीसे ही बना है, उसमें जल कुएँका है, इस प्रकार एक दूसरेमें कार्य-कारण-भावको समझ रहा था, और उसी संसारसे अपने आपको कृतकृत्य दुःखी और सुखी भी मान रहा था। इस प्रकार जाग्रत् की तरह लम्बा प्रतीत होता हुआ भी जैसे सपना मिथ्या है, उसी प्रकार यह जाग्रत् भी जाग्रत्के समय इतने लम्बे समय वाला और एक दूसरेसे उत्पन्न होनेवाला प्रतीत होता हुआ भी मिथ्या ही है।

शंका :— प्रभो ! यदि यह संसार मिथ्या है, तो फिर सत्य क्यों प्रतीत होता है, और देशकाल इसके कारण हैं, ऐसी भ्रान्ति क्यों होती है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! इस प्रकारकी भ्रान्ति तुम्हें संसार और ब्रह्मका विवेक (विवेचन = भिन्न भिन्न समझना) न करने से ही होती है। जिस प्रकार दूर रखे हुए लाल जलसे भरे हुए सफ़ेद काचके ग्लासको (ललाई जलकी है, और ग्लास स्वयं सफ़ेद है, ऐसा विवेक न होनेके कारण) हम लाल ही समझ लेते हैं, यह भ्रान्ति है; क्योंकि ललाई है जलकी और हम मान रहे हैं ग्लासमें; तथा अधिष्ठान चेतन (साक्षी) में

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कल्पित सपनेको (सपना स्वयं मिथ्या है, और अधिष्ठान चेतन सत्य है ऐसा विवेक न होनेसे) हम सत्य मान लेते हैं, यह भ्रान्ति है, [इसको अन्यथा-ख्याति भी कहते हैं]; क्योंकि सत्यता है चेतनकी और प्रतीत हो रही है सपनेके संसारमें। ठीक इसी प्रकार ब्रह्मसे उत्पन्न हुए इस संसार को [संसार स्वयं मिथ्या है, व ब्रह्म ही सत्य है और वही संसारका कारण है ऐसा विवेक न होनेके कारण] हम सत्य मानते हैं और इसी संसारके अन्तर्गत (शामिल) देशकाल को संसारका कारण भी समझ लेते हैं, यह भ्रान्ति ही है; क्योंकि कारणता और सत्यता है ब्रह्मकी और हमें प्रतीत हो रही है संसारमें।

अथवा जैसे सपनेमें पिता आदि पदार्थ अज्ञानके रचे हुए हैं तो वहाँ पिता आदिमें जो पुत्र आदिकी कारणता दीखती है, वह भी अज्ञान-द्वारा ही मिथ्या रची हुई है; उसी प्रकार जैसे सारे जाग्रत् संसारके पदार्थ और देशकाल, सब मायाके परिणाम हैं अर्थात् मायाके रचे हुए हैं वैसे देशकालमें जो कारणता दीखती है वह भी मायाका ही परिणाम है, अर्थात् मायाकी ही रची हुई है; क्योंकि ब्रह्म तो कारण इत्यादि धर्मोंसे रहित असंग है; उसमें कारणता होती तो यह कहना बन सकता था कि 'ब्रह्मकी कारणता देशकालमें प्रतीत होती है'; किन्तु वास्तवमें ब्रह्म में किसीकी कारणता नहीं है, अतः जो देशकालमें कारणता प्रतीत होती है वह केवल भ्रान्ति ही है अर्थात् जिस माया ने इस देशकाल आदि प्रपंचको अनिर्वचनीय उत्पन्न किया

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है, उसी माया द्वारा देशकालमें, यह कारणता भी अनिर्वचनीय उत्पन्न की हुई है। तो इसलिए **'बिना देशकालके उत्पन्न हुई वस्तु मिथ्या होती है,'** इस नियमसे यह सिद्ध होता है कि देशकाल आदि सामग्रीके बिना ही उत्पन्न हुआ यह जाग्रत् संसार भी स्वप्नकी तरह मिथ्या ही है।

शंका :— भगवन्! यदि जाग्रत् संसार भी बिल्कुल सपने की तरह मिथ्या (कल्पित) ही है, तो फिर सपना जैसे आँख खुलने व याद आनेपर हमें झूंठा प्रतीत होता है, वैसे ही इस संसारके झूँठेपनेका हमें अनुभव क्यों नहीं होता?

उत्तर :— हे शिष्य? जैसे सपनेका झूंठापन सपनेके टूटने से और जाग्रत् अवस्थाके आनेपर ही प्रतीत होता है, वैसे आग्रत्का झूँठापन भी जाग्रत्के टूटनेपर और सहज समाधि अवस्थाके अनुभव करनेपर, अर्थात् ज्ञानरूपी नेत्र खुलनेपर ही प्रतीत होता है। सो तुम्हें अब तक दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान नहीं हुआ है इसलिए ही संसारके झूंठेपनका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो रहा है।

और जैसे सपना भी याद करनेसे कल्पित (झूँठा) प्रतीत होता है, उसी प्रकार इस बीते हुए संसाररूपी सपनेको भी जब हम याद करते हैं तो यह भी बिल्कुल सपनेकी तरह कल्पना-मात्र ही प्रतीत होता है। जब हम कभी अपनी बीती हुई ज़िन्दगीको याद करते हैं कि हम इतने छोटे थे, माताकी गोद में तथा मिट्टीमें खेला करते थे, बड़े होनेपर स्कूलमें पढ़ते थे, कई परीक्षाऐं पास कीं, फिर विवाह किया, सन्तान उत्पन्न हुआ, पुत्र पौत्र हो गये, कई खेल किये; अब तो हम बूढ़े हो गये

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं किन्तु इतना सारा लम्बा समय ऐसे बीत गया जैसे केवल कोई कल्पना ही हो; तब उस समय इस संसारका बिल्कुल सपनेकी तरह प्रत्यक्ष अनुभव होता है ।

अतः जिस प्रकार सपना याद करनेसे कल्पित प्रतीत होता है; उसीप्रकार यह जाग्रत् संसार भी याद करनेसे कल्पित सपनेकी तरह ही प्रतीत होता है । जब बीता हुआ समय हमें सपना प्रतीत होता है, तो जो चल रहा है वह भी सपना ही है, और जो आएगा वह भी सपना ही है । ऐसा विचार करने से स्पष्ट अनुभव होता है कि यह जाग्रत् संसार भी सपनेकी तरह मिथ्या (कल्पित) ही है ।

शंका :— भगवन् ! आपका उपदेश सुननेसे अब मुझे कुछ कुछ अनुभव होने लगा है कि वास्तवमें यह संसार सपने की तरह मिथ्या ही है । किन्तु एक शंका और उठ रहीं है, कृपा करके उसका भी समाधान कर दीजिए । वह यह है कि जब हम सपनेसे जाग्रत्में आते हैं, तो सपनेके पदार्थ बिल्कुल रहते ही नहीं हैं, किन्तु जब हम जाग्रत्मेंसे स्वप्नमें जाते हैं तो फिर भी जाग्रत्के पदार्थ तो अपनी जगह रहते ही हैं; क्योंकि जब हम सोकर उठते हैं, तब हमें वोके वो हज़ारों वर्ष पहिलेके जाग्रत्के पदार्थ दिखलाई देते हैं । यदि यह जाग्रत् वास्तवमें स्वप्न ही होता, तो इतने वर्षोंके पुराने वोके वो पदार्थ अर्थात् **स्थायी पदार्थ** कैसे दीखते ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह शंका तुम्हें वेदान्तके सिद्धान्त को न जाननेसे ही हो रही है; क्योंकि सिद्धान्त तो यह

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है कि सारा संसार चेतनका विवर्त और अविद्या (अज्ञान) का परिणाम है। [जैसे रस्सीमें कल्पित साँप व उसका ज्ञान साक्षी चेतनका विवर्त है और उस अधिष्ठान चेतनके आश्रित अविद्या (अज्ञान) का परिणाम है] वह अज्ञानका परिणाम :— **विषय और विषयके ज्ञानरूपसे** [जैसे सर्प और सर्पके ज्ञानरूपसे] दो प्रकारका होता है। उस अज्ञान (माया) में तीन गुण हैं अतः (१) विषयरूप परिणाम, अज्ञानके **तमोगुण अंशका** होता है और (२) विषयका ज्ञानरूप (वृत्ति-ज्ञानरूप) परिणाम अज्ञानके **सत्त्वगुण अंशका** होता है।

इस सिद्धान्तसे सारे संसारके पदार्थ और उनका ज्ञान, ये दोनों ईश्वर-साक्षीके आश्रित अज्ञान (माया) के परिणाम हैं। पदार्थ तो मायाके तमोगुणके परिणाम हैं व उनका ज्ञान, मायाके सत्त्वगुणका परिणाम है; और ये दोनों परिणाम (विषय और विषयका ज्ञान) साथ साथ उत्पन्न होते हैं, और साथ ही नष्ट होते हैं। जैसे रस्सीमें सर्प और सर्पका ज्ञान, ये दोनों साथ साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ साथ ही नष्ट होते हैं अथवा जैसे स्वप्नके पदार्थ और उनका ज्ञान, ये दोनों भी साथ ही उत्पन्न होते हैं तथा साथ ही नष्ट होते हैं; ठीक इसी प्रकार जाग्रत् संसारके पदार्थ और उनका ज्ञान ये दोनों भी साथ साथ उत्पन्न होते हैं और साथ साथ ही नष्ट होते हैं। परन्तु हे शिष्य ! जाग्रत् व स्वप्नमें केवल इतना अन्तर है कि स्वप्न तो हम व्यष्टि जीवोंके अपने अपने संकल्पसे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रचा हुआ संसार है और जाग्रत् ब्रह्माण्ड समष्टि जीवोंके कर्मानुसार ईश्वरके संकल्पसे रचा हुआ संसार है। अतः जैसे यज्ञदत्तके सपनेके अन्तर्गत कल्पित देवदत्तको वहाँके स्वप्नके पदार्थ **स्थायी** नज़र आते हैं परन्तु हैं मिथ्या, उसी प्रकार इस ईश्वरीय स्वप्नके अन्तर्गत कल्पित हम लोगों को ये जाग्रत्के पदार्थ **सत्य व स्थायी** प्रतीत होते हैं परन्तु हैं मिथ्या; क्योंकि जो पदार्थ अविद्याके परिणाम होते हैं, चाहे व्यष्टि अविद्याके हों चाहे समष्टि अविद्याके, और जो पदार्थ संकल्पसे रचे हुए होते हैं, चाहे हमारे संकल्पसे जैसे सपना, चाहे ईश्वरके संकल्पसे जैसे यह जाग्रत्; वे दोनों मिथ्या ही होते हैं। और चूँकि हम लोग इस ईश्वरीय स्वप्नके अन्तर्गत हैं इसलिए इन जाग्रत्-पदार्थोंका हम लोगों को स्थायी प्रतीत होना स्वाभाविक ही है।

शंका :— गुरुजी ! अब यह समझमें आरहा है कि जैसे सपनेके पदार्थ कल्पित हैं वैसे इस जाग्रत् ब्रह्माण्डके पदार्थ भी कल्पित ही हैं। अब भगवन् ! मुझे केवल यह बात समझमें नहीं आरही है कि यह आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वी आदि सभी पदार्थ यदि सपनेकी तरह एक साथ कल्पित उत्पन्न होते हैं और एक दूसरेके कार्य-कारण भी नहीं हैं तो फिर इनका क्रमसे उत्पन्न होना, और एक दूसरेका कार्य-कारण-भाव श्रुति (वेद) ने क्यों बताया है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जैसे घड़ा, सुराही, ढक्कन इत्यादि सब मिट्टीके बने हुए पदार्थोंमें किसी बच्चेको मिट्टीका दर्शन करवानेके लिए और उन सब मिट्टीके बर्तनोंमें वस्तुतः

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

केवल मिट्टीके सिवाय और कुछ है ही नहीं; इस बातको समझानेके लिए हम उसे घड़े इत्यादि पदार्थोंकी उत्पत्तिका क्रम बतलाते हैं, कि पहिले केवल चिकनी मिट्टी (किसी भी दोषसे रहित साफ़ मिट्टी) थी। उसको पानीसे गीली करके गूँदा गया। फिर एक बड़ा ढेला बनाकर चक्रके बीचमें रखकर जैसा पदार्थ उस मिट्टीसे बनाना था उसके अनुसार दण्डसे चक्रको घुमाकर हाथोंसे उसका रूप बनाया गया और फिर अग्निसे पकाकर मिट्टीके वर्तन बनाये गये। यों इस क्रमको सुनकर बच्चेको यह समझमें आजाता है कि घड़े इत्यादि पदार्थोंमें किस प्रकार मिट्टी व्यापक है और किस प्रकार वह मिट्टी अद्वितीय अर्थात् द्वैतसे रहित (अकेली) है; ठीक इसी प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी इत्यादि ब्रह्मरूपी कारणसे उत्पन्न हुए सभी जगत् के पदार्थोंमें, अज्ञानीरूपी बच्चोंको ब्रह्मका दर्शन करवानेके लिए अर्थात् ब्रह्मकी व्यापकताको बतलानेके लिए और इन सब संसारके पदार्थोंमें वास्तवमें केवल ब्रह्मके सिवाय और कुछ है ही नहीं अर्थात् ब्रह्म अद्वितीय है इस बातको समझानेके लिए ही श्रुति (वेद) ने आकाश इत्यादि संसार के पदार्थोंकी उत्पत्तिका क्रम बतलाया है, कि पहिले केवल एक शुद्ध ब्रह्म ही था। फिर उसका अनादि कल्पित (अनिर्वचनीय) मायासे संबन्ध होनेपर अर्थात् उस मायामें जो जीवोंके अनेक संस्कार रहते थे वे जब अपना फल देनेके लिए तैयार हुए तब उस माया-विशिष्ट-चेतनमें संसार को उत्पन्न करनेका संकल्प हुआ। संकल्प होते ही माया

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

से आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न होकर यह सारा ब्रह्माण्ड बना। अब इस प्रकार सृष्टिके क्रमको सुनकर अज्ञानीरूपी बच्चोंको यह समझमें आजाता है कि जैसे मिट्टीके सब बर्तन मिट्टीसे उत्पन्न होते हैं, मिट्टीमें स्थित हैं और मिट्टीमें ही लीन हो जाते हैं; इसलिए सभी मिट्टी-स्वरूप हैं और मिट्टी के सिवाय कुछ है ही नहीं; ठीक इसी प्रकार ये सब जाग्रत् के पदार्थ ब्रह्मसे ही उत्पन्न होते हैं, ब्रह्ममें स्थित हैं और ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं; इसलिए ये सब ब्रह्म-स्वरूप हैं, अर्थात् सबमें ब्रह्म ही व्यापक है और ब्रह्मके सिवाय कुछ है ही नहीं, अर्थात् वह ब्रह्म अद्वितीय (केवल एक ही) है। मायाके साथ भी उसका द्वैत सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि माया कल्पित है और ब्रह्म वास्तविक (सत्य) है। कल्पित और सत्यका आपसमें द्वैत नहीं हो सकता; क्योंकि द्वैत सर्वदा समान सत्तावालोंमें ही होता है। जैसे रस्सी और रस्सीमें कल्पित सर्प ये दो नहीं माने जाते किन्तु वास्तवमें एक रस्सी ही होती है, इसी प्रकार ब्रह्म और कल्पित माया, ये दो नहीं माने जाते, किन्तु वास्तवमें एक ब्रह्म ही है। और शक्तिकी सत्ता शक्तिमान्की सत्तासे अलग नहीं होती है, इस नियमके अनुसार भी ब्रह्मकी शक्ति मायाकी सत्ता ब्रह्मकी सत्तासे अलग नहीं है। अतः वास्तवमें सत्ता एक ब्रह्मकी होनेसे द्वैत नहीं किन्तु अद्वैत ही है। इस प्रकार ब्रह्मका अद्वैतज्ञान करानेके लिए और लय-चिन्तनकी विधि (तरीके) से ब्रह्मके दर्शन करवानेके लिए

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ही वेदने संसारकी उत्पत्तिका क्रम बतलाया है; किन्तु वस्तुतः जैसे सपनेकी सृष्टिका कोई क्रम विशेष नहीं, केवल एक साथ ही हो जाती है; इसी प्रकार इस जाग्रत् सृष्टिका भी कोई क्रम नहीं है; यह जाग्रत् सृष्टि और इसका ज्ञान भी एक साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही नष्ट होते हैं। इसीको **'दृष्टि-सृष्टि-वाद'** कहते हैं। यह 'दृष्टि-सृष्टि-वाद' वेदान्तका सर्वोच्च सिद्धान्त है।

शंका :— स्वामीजी ! ❀ इस 'दृष्टि-सृष्टि-वाद'का कुछ स्पष्टीकरण करनेकी कृपा करें ?

उत्तर :— हे शिष्य ! इस वादके अनुसार जैसे रस्सीमें सर्प अथवा सपनेके सारे पदार्थ अज्ञानके कार्य हैं उसी प्रकार जाग्रत् संसारके भी सभी पदार्थ अज्ञान (माया) के ही कार्य हैं। और उन सबका प्रकाश, अज्ञानकी वृत्तिसे उपहित चेतन जीव-साक्षी तथा मायाकी वृत्तिसे उपहित चेतन ईश्वर-साक्षी द्वारा ही होता है, इसलिए सपनेके अथवा जाग्रत्के सब पदार्थ **साक्षि-भास्य** कहलाते हैं।

इस प्रकार सपने और जाग्रत्के पदार्थोंमें कोई अन्तर (भेद) न होनेके कारण दोनोंकी एक प्रातिभासिक सत्ता ही मानी जाती है। यों तीन सत्ताओंकी जगह दो सत्ताएँ ही मुख्यरूपसे मानी जाती हैं :—

(१) चेतनकी परमार्थ सत्ता और (२) चेतनसे भिन्न सभी अनात्म-पदार्थोंकी प्रातिभासिक सत्ता।

शंका :— भगवन् ! इस वादका नाम 'दृष्टि-सृष्टि-वाद क्यों रखा गया है ?

❀ इस दृष्टि-सृष्टि-वादका स्पष्ट व विस्तृत वर्णन, इस ग्रन्थके पीछे छपे हुए 'दृष्टि-सृष्टि-वाद' नामक छोटी पुस्तकमें किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— पहिले मैंने तुम्हें यह बताया था कि अज्ञानका परिणाम (परिवर्तन) दो प्रकारसे एक ही समयमें होता है। एक विषयरूपसे व दूसरा विषयके ज्ञानरूपसे।

जब वह चेतनके आश्रित **अज्ञान** विषयके ज्ञानरूपसे परिणामको प्राप्त होता (पलटता) है तब उस विषयके ज्ञान को अज्ञानकी वृत्ति अथवा **दृष्टि** कहते हैं। और उसी समय वह अज्ञान जिस विषय (ज्ञेय) रूपसे पलटता है उस विषय को **सृष्टि** कहते हैं। ये दृष्टि और सृष्टि [विषय और उसका ज्ञान (जैसे कल्पित सर्प है सृष्टि व उसका ज्ञान है दृष्टि उसी प्रकार यह संसार है सृष्टि और उसका ज्ञान है दृष्टि)] दोनों साथ साथ उत्पन्न होते हैं और साथ साथ ही नष्ट होते हैं तथा दोनोंका आकार भी एक ही प्रकारका होता है अर्थात् पदार्थ हो एक और ज्ञान हो दूसरे प्रकारका ऐसा नहीं होता। हे शिष्य ! जब इस प्रकारसे स्वप्न व जाग्रत्की वास्तविकता (असलियत) बतलाई जाती है तब इस बतानेके प्रकार (तरीके) को कहते हैं **दृष्टि-सृष्टि-वाद**। इस दृष्टि-सृष्टि-वादको **अजात-वाद** भी कहते हैं; क्योंकि दृष्टि और सृष्टि (ज्ञान और ज्ञेय) ये दोनों अज्ञानके परिणाम हैं; और वह अज्ञान कल्पित है और कल्पितका अधिष्ठानमें वस्तुतः अभाव होता है। जैसे कल्पित सर्पका वस्तुतः रस्सीमें अभाव है अर्थात् है ही नहीं; उसी प्रकार कल्पित अज्ञान और उसीके परिणाम संसारका भी वस्तुतः अधिष्ठान ब्रह्ममें अभाव ही है अर्थात् ब्रह्ममें अज्ञान और संसार तीनों कालोंमें है ही नहीं। इस प्रकार दृष्टि-सृष्टि-वादसे यह जाना जाता है कि वास्तवमें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यह संसार ब्रह्ममें अजात है अर्थात् उत्पन्न ही नहीं हुआ है। इसीलिए इस दृष्टि-सृष्टि-वादको **अजात-वाद** भी कहते हैं। इस दृष्टि-सृष्टि-वादके मुख्य तीन स्वरूप हैं :—

(१) जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ।

(२) जब तक दृष्टि तब तक सृष्टि ।

(३) जिसके लिए दृष्टि उसके लिए सृष्टि ।

अर्थात् जैसे जिसको जिस समय जैसा सपना दीखता है, उस समय वैसा सपना उसीके लिए ही है, दूसरेके लिये नहीं; ठीक इसी प्रकार ईश्वरको जिस समय जैसा जाग्रत् संसार भासता है उस समय वैसा जाग्रत् संसार ईश्वरकी दृष्टिसे है, दूसरेके लिए नहीं; दूसरे तो संपूर्ण ब्रह्माण्डको देख भी नहीं सकते ।

शंका :— भगवन् ! यदि यह संसार जो अनादि कालसे प्रतीत हो रहा है, जिसमें असंख्य व्यक्ति बन्धनमें फंसे हुए हैं, और ज्ञानी लोग मुक्त हो जाते हैं, ऐसा यह संसार यदि सपनेकी तरह मिथ्या ही है, तब तो सपनेकी भाँति क्षणभर, पन्द्रह बीस मिनट, आधा घण्टा, घण्टा अथवा अधिकसे अधिक प्रहरभर ही चलेगा। अतः जिस प्रकार सपना अपने आप टूट जाता है; उसी प्रकार जाग्रत्रूपी ईश्वरका सपना भी अपने आप ही थोड़ा समय चलकर टूट जायगा, फिर इससे छूटनेके लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेके लिए आत्म-ज्ञान और उसके साधन वेदान्तका श्रवण, मनन इत्यादि करनेकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जिस प्रकार तुम्हारा व्यष्टि स्वप्न,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

व्यष्टि स्वप्न-आरम्भक संस्कारोंके समाप्त होनेपर टूट जाता है उसी प्रकार इस समष्टि स्वप्न (जाग्रत्-संसार) का प्रलय भी तब होगा जब समष्टि ब्रह्माण्डके आरम्भक संस्कार अपना समष्टि फल देकर समाप्त होंगे, परन्तु व्यष्टि अथवा समष्टि स्वप्नका अत्यन्त-अभाव (मोक्ष) बिना ब्रह्म-ज्ञानके नहीं होगा। और पारमार्थिक दृष्टिसे हे शिष्य! जिस प्रकार अज्ञानसे सपनेमें अध्यापक, अध्ययन, वेद, शास्त्र, पुराण, और उनका पढ़नेवाला, कर्म और उसका फल, सुख और दुःख, इन सबको सत्य समझकर अर्थात् सपनेके संसार-रूपी बन्धनको सत्य समझकर उससे मोक्षको प्राप्त करनेके लिए अर्थात् उससे छूटनेके लिए सपनेके गुरुके पास जाना, और वहाँ वेदान्त सुनकर ज्ञान-द्वारा मोक्षको प्राप्त करना, इत्यादि सब मिथ्या ही है; क्योंकि वास्तवमें न तो सपनेका बन्धन है न मोक्ष।

ठीक इसी प्रकार यह संसार जो तुम्हें सत्य प्रतीत हो रहा है, और इस दुःख-रूप संसारको बन्धन समझकर, इससे जो तुम्हें छूटनेकी इच्छा हो रही है तथा इसलिए (संसारसे मोक्ष प्राप्त करनेके लिए) मुझे गुरु मानकर जो तुम वेदान्तका श्रवण, मनन व निदिध्यासन आदि कर रहे हो, इन सबको सत्य मानना भ्रान्ति-मात्र ही है; क्योंकि सपनेकी तरह यह जाग्रत् भी मिथ्या कल्पित (ईश्वरका संकल्प-मात्र) होनेके कारण, वास्तवमें पारमार्थिक दृष्टिसे न गुरु है, न शास्त्र और न बन्धन है न मोक्ष।

शंका :— भगवन्! जब यह सारा संसार कल्पित ही है

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तो फिर इससे छूटनेके लिए गुरुके उपदेशकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह तुम्हारा कहना सही है कि इस कल्पित संसारका बन्धन भी कल्पित है, फिर इससे छूटना क्या ? किन्तु जब तक कल्पितको कल्पित नहीं समझा जाता, तब तक वह कल्पित बन्धन भी सच्चा प्रतीत होकर दुःखदायी हो जाता है। जैसे रस्सीमें कल्पित सर्पको जब तक कल्पित नहीं समझा जाता, तब तक उससे भय होता ही रहता है। उस भयसे मोक्ष (छुटकारा) तब ही हो सकता है, जब हम उस कल्पित सर्पको कल्पित ही समझ लें। ठीक इसी प्रकार जब तक संसार कल्पित समझमें नहीं आता तब तक ही भय, हर्ष, शोक, जन्म-मरण इत्यादि दुःख प्रतीत होते हैं। इन दुःखोंसे मोक्ष तब ही हो सकता है, जब हम इस कल्पित संसारको कल्पित ही समझ लें। यद्यपि यह दुःखरूप बन्धन कल्पित है और इससे मोक्षको प्राप्त करना भी कल्पित ही है, तथापि जैसे सपनेके कल्पित शेरकी निवृत्तिके लिए कल्पित बन्दूककी ही आवश्यकता होती है, इसी प्रकार इस कल्पित संसारकी निवृत्तिके लिए (कल्पित संसारको कल्पित समझनेके लिए) भी कल्पित गुरुके कल्पित उपदेशकी ही आवश्यकता है।

इस बातको समझानेके लिए मैं तुम्हें एक अगृधदेवकी कथा सुनाता हूँ। जिस प्रकार तुम्हें इस जाग्रत्‌रूप सपनेमें सब पदार्थ सच्चे प्रतीत हो रहे हैं और मैं जीव हूँ, मैं कर्त्ता भोक्ता हूँ, मैं दुःखी हूँ, ऐसा मानकर दुःखी हो रहे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हो और इस दुःखसे छूटनेके लिए गुरुको खोजते खोजते मेरे पास पहुंचे हो, इसी प्रकार वह अगृधदेव भी सपनेमें सपनेके संसारको सच्चा समझकर और अपने आपको एक जलते हुए बनमें भटकता हुआ देखकर, व अपने को चाँडाल समझ करके दुःखी होकर सोचने लगा कि "किस प्रकार मैं इस जलते हुए बनसे बाहर निकलूं, अथवा कमसे कम इस चाँडालपनेसे छूटकर देवतारूपमें अगृध-(इच्छा-रहित) देव होकर रहूँ।

ऐसा सोचते २ उसको किसी सज्जनने कहा कि "ब्रह्मज्ञानका उपदेश करनेवाले आचार्य अपने शिष्योंका उद्धार करते हैं अर्थात् अपने शिष्योंको इस जलते हुए बनसे बाहर निकाल देते हैं।" ऐसा सुनकर वह ब्रह्मनिष्ठ व ब्रह्मश्रोत्रिय गुरुकी खोजमें निकला। खोजते खोजते उसको सपनेमें ब्रह्मज्ञानी गुरु मिल गया। गुरुको नमस्कार करके तथा विधि-पूर्वक आज्ञा लेकर उस अगृधदेवने तीन प्रश्न किये—

(१) मैं कौन हूँ ?

(२) संसारका कर्त्ता कौन है ?

(३) मुक्तिका हेतु (साधन) ज्ञान है अथवा कर्म है वा उपासना है, अथवा इनमेंसे कोई दो हैं या तीनों ही हैं ?

पहले प्रश्नका अभिप्राय यह है— कि हे भगवन् ! मैं कौन हूँ ? मैं शरीर हूँ अथवा शरीरसे भिन्न हूँ ? यह संशय मुझे इसलिए हो रहा है कि मुझे, 'मैं मनुष्य हूँ और मेरा मनुष्यका शरीर है,' इस प्रकारकी दो प्रतीतियाँ (ज्ञान) हो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रही हैं। यदि आप कहो कि मैं शरीर से भिन्न हूँ, तो मैं कर्त्ता-भोक्ता हूँ अथवा अक्रिय (क्रिया-रहित) हूँ। यदि अक्रिय कहो तो भी मैं सभी शरीरोंमें एक ही हूँ अथवा नाना (अनेक) हूँ। इस पहिले प्रश्नके अभिप्रायको समझ कर वे सपनेवाले कल्पित गुरु, उस कल्पित चाँडाल शिष्य को, यह उपदेश देने लगे कि :—

"सत् चित् आनंद एक तू, ब्रह्म अजन्म असंग"

अर्थात् हे शिष्य ! तू तो सत् चित् आनन्द स्वरूप और शरीर असत्, जड़ व दुःखरूप है। इसलिए तू शरीरसे भिन्न है, और पुण्य पाप कर्मोंका भोक्ता भी यही स्थूल-सूक्ष्म-संघात (स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरका संयुक्त स्वरूप) हैं, तू नहीं। तू तो इन दोनोंका साक्षी है। वह साक्षि-रूप आत्मा एक है, नाना नहीं। यदि आत्मा कर्त्ता-भोक्ता होता, तो वह अनेक होता; क्योंकि हम देखते हैं कि कोई दुःख भोगता है, कोई सुख भोगता है, अर्थात् दुःखसुखके भोगनेवाले अनेक दीखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पुण्य-पापके कर्त्ता भी अनेक हैं, किन्तु आत्मा नहीं कर्त्ता है न भोक्ता; अतः वह एक ही है।

शंका :— स्वामिन् ! जैसे आपने कहा कि आत्मा कर्त्ता-भोक्ता नहीं है, वैसे साँख्य-मतवाले भी आत्माको कर्त्ता-भोक्ता नहीं मानते, फिर आपमें और उनमें क्या अन्तर है ?

उत्तर :— यह ठीक है कि साँख्य-मतवाले भी आत्माको कर्त्ता-भोक्ता नहीं मानते; किन्तु अन्तर (भेद) यह है कि हम (वेदान्ती) तो आत्माको एक मानते हैं और साँख्य-मत-वादी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आत्माको अनेक मानते हैं।

शंका :— स्वामीजी ! मुझे साँख्य मतका पूरा ज्ञान नहीं है, कृपया जब प्रसंग छिड़ा है तो साँख्य-मतका भी थोड़ेमें वर्णन कीजिये।

उत्तर :— साँख्य मतमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी समान (बराबर) अवस्थाको **प्रधान** कहते हैं। वह प्रधान महत्तत्त्वका उपादान-कारण होनेके नाते **प्रकृति** कहलाती है और जब उसका कार्यरूपसे परिणाम (परिवर्तन) होता है, तब उस कार्यको **विकृति** कहते हैं।

(१) इस मतमें २५ तत्त्व माने जाते हैं, जिनको **पदार्थ** भी कहते हैं। वे ये हैं :—

महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्रा, पाँच महाभूत, दश इन्द्रियाँ, मन, प्रकृति और पुरुष। (२) साँख्यवादी ईश्वरको नहीं मानते (३) प्रकृति स्वतंत्ररूपसे (बिना चेतनकी सहायताके ही) जगत्का कारण है (४) पुरुषके भोग और मोक्षके निमित्त प्रकृति ही प्रवृत्त होती है, न कि पुरुष। (५) प्रकृतिका जो विषयरूपसे परिणाम (परिवर्तन) होता है, उससे पुरुषको भोग-प्राप्ति होती है। (६) बुद्धि-द्वारा जो प्रकृतिका विवेक रूपसे परिणाम होता है, उससे मोक्ष होता है अर्थात् जब प्रकृति और पुरुषका विवेक (विवेचन) होता है, तभी मोक्ष होता है। (७) यद्यपि पुरुष असंग है, उसमें भोग (बन्धन) और मोक्ष नहीं बन सकता तो भी जिस बुद्धिके ज्ञान, सुख, दुःख राग व द्वेष इत्यादि रूपसे कई परिणाम होते हैं, उस बुद्धिका आत्मासे अविवेक है अर्थात् उस बुद्धिको और आत्माको अलग

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं समझते। इसीलिए ही आत्मामें कल्पित बन्धन और मोक्ष बनता है किन्तु वास्तवमें नहीं है। (८) अविवेकसे आत्मामें भोग प्रतीत होनेके कारण ही आत्माको साँख्य-मतमें भोक्ता माना जाता है। (९) वस्तुतः आत्मा भोक्ता नहीं, किन्तु बुद्धि ही भोक्ता है। (१०) बुद्धि आत्मासे भिन्न है। (११) इस प्रकारके ज्ञानको विवेक कहते हैं। (१२) इस प्रकारके ज्ञानके अभावको (नहीं होनेको) अविवेक कहते हैं। (१३) इस रीतिसे साँख्य-मतमें आत्मा असंग है। (१४) सुख दुःख आदि बुद्धिके परिणाम (परिवर्तित-रूप) होनेके कारण बुद्धिके ही धर्म हैं और (१५) आत्मा नाना (अनेक) हैं।

हे शिष्य ! यह जो तुमने साँख्य-मत सुना, इस मतमें प्रकृतिको जड़ कह कर फिर यह कहना कि प्रकृति स्वतन्त्र-रूपसे अर्थात् विना चेतनकी सहायताके ही जगत्को उत्पन्न करती है अर्थात् जगत्के रूपमें परिणत होती है (बदलती है), यह ठीक नहीं; क्योंकि बिना चेतनके सम्बन्धके, केवल जड़से कभी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। अतः साँख्य-मतवालोंको ऐसा मानना चाहिए कि प्रकृति-(माया)-विशिष्ट-(सहित)-चेतन, जो ईश्वर है, वही संसारका कर्त्ता है। यों ईश्वरको अंगीकार करलेनेसे साँख्य-मतमें दोष नहीं आएगा। और आत्माको अनेक मानना भी निष्फल व युक्ति-हीन (बेदलील) है; क्योंकि वे सुख-दुःख व बन्धन-मोक्ष आदिको, यदि आत्मा के धर्म मानते होते, तब तो यह उनका दलील ठीक हो सकता था कि "यदि आत्मा एक होता, तो एकके सुखी, दुःखी, बद्ध (बन्धा हुआ), अथवा मुक्त होनेसे सभी सुखी, दुःखी, बद्ध

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अथवा मुक्त हो जाते; परन्तु ऐसा होता नहीं; अतः आत्मा एक नहीं परन्तु अनेक हैं।" किन्तु यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि उनके मतमें (साँख्य-मतमें) भी ये सुख, दुःख, बन्धन व मोक्ष इत्यादि सब धर्म बुद्धिके ही माने जाते हैं न कि आत्माके। यदि वे सुख-दुःख आत्माके धर्म मानते तब तो आत्मामें अनेकपना सिद्ध कर सकते; अतः ये सुख-दुःख इत्यादि धर्म, बुद्धिके मानकर बुद्धिको ही अनेक मानना ठीक है, न कि आत्माको। आत्माको अनेक मानना युक्ति-हीन होनेके कारण, एक ही मानना उचित है।

और साँख्य-मतमें आत्माको अनेक माननेसे एक आत्माका दूसरी आत्माओंसे **सजातीय-सम्बन्ध** तथा प्रकृतिको नित्य माननेसे आत्माका प्रकृतिके साथ **विजातीय-सम्बन्ध** (संग) हो जानेसे आत्मा असङ्ग कैसे सिद्ध हो सकेगा ? और इस प्रकार आत्मामें संग सिद्ध हो जानेके बाद फिर आत्माको असङ्ग कहना, साँख्य-मतमें **व्याघात दोष** अर्थात् उल्टा कथन है; जैसे कोई कहे कि मेरा पिता बाल-ब्रह्मचारी है। अतः साँख्य मतमें आत्माको असंग मानना तभी सही हो सकता है, जब आत्माको अनेक न मानकर **एक** ही माना जाय तथा प्रकृतिको नित्य न मानकर असत् (मिथ्या) ही माना जाय।

शंका :— स्वामीजी ! जिस प्रकार साँख्य मतमें आत्माको अनेक मानना आपने असंगत (युक्ति-रहित) कहा; क्या इस प्रकार न्याय मतमें जो आत्माको अनेक मानते हैं, वह भी असंगत ही है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह तुम निश्चय करलो कि आत्मा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

को अनेक माननेवाले सभी मत असंगत हैं; क्योंकि आत्मा को अनेक मानना वेदके विरुद्ध व युक्ति-रहित (बेदलील) है।

शंका :— भगवन् ! जिस प्रकार आपने साँख्य-मतका थोड़ा परिचय दिया, उसी प्रकार कृपा करके न्याय मतका भी आत्म-सम्बन्धी थोड़ा परिचय करा दीजिये।

उत्तर :— न्याय-मतमें (१) ज्ञान (२) इच्छा (३) प्रयत्न (४) संख्या (५) परिणाम (६) पृथक्ता (अलगपना) (७) संयोग (८) विभाग (९) सुख (१०) दुःख (११) धर्म (१२) अधर्म (१३) द्वेष और (१४) ज्ञानके संस्कार; ये चौदह गुण जीवरूप आत्माके (जीवात्माके) हैं। और इनमेंसे पहिलेवाले आठ गुण ईश्वरमें भी हैं। इनमेंसे पहिले तीन गुण (ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न) ईश्वरमें नित्य हैं, और जीवमें अनित्य हैं। इस मतमें ईश्वर और जीवको व्यापक और नित्य मानते हुए भी जीवको अनेक मानते हैं। और इस मतमें केवल जीव व ईश्वरको ही नित्य नहीं मानते, किन्तु आकाश, काल, दिशा और मन भी नित्य हैं, तथा पृथ्वी, जल, तेज और वायुके परमाणु भी नित्य ही हैं। इनके सिवाय और भी जाति इत्यादि कई पदार्थ न्याय-मतमें नित्य माने जाते हैं।

इस मतमें इक्कीस प्रकारके दुःखोंके नाशको **मोक्ष** कहते हैं, वे इक्कीस प्रकारके दुःख ये हैं :— एक शरीर, और कान, त्वचा (चमड़ी), आँख, रसना, नाक, व मन; ये छः इन्द्रियाँ तथा इन छः इन्द्रियोंके विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और संकल्प-विकल्प-रूप चिन्तन) और इन छः विषयोंके ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तथा सुख और दुःख।

इन इक्कीस प्रकारके दुःखोंसे छूटना (मोक्ष) तभी होगा जब भ्रान्ति टूटे। और वह भ्रान्ति टूटेगी तत्त्वज्ञानसे; इनके मतमें शरीरको आत्मा समझना ही **भ्रान्ति** है। और शरीर आदि सब पदार्थोंसे आत्माको भिन्न समझना ही **तत्त्व-ज्ञान** कहलाता है। और इसी तत्त्वज्ञानसे मोक्ष को प्राप्त करनेकी परम्परा (सिलसिला) यह है :— तत्त्वज्ञान से "मैं ब्राह्मण हूँ, मैं मनुष्य हूँ," इस प्रकारकी जो शरीर में आत्म-भ्रान्ति होती है, वह नष्ट होगी। आत्म-भ्रान्ति के नष्ट होनेपर राग-द्वेषका नाश होगा। राग-द्वेषके न रहनेपर धर्म और अधर्ममें प्रवृत्ति नहीं होगी। धर्म और अधर्ममें प्रवृत्ति न होनेसे दूसरा जन्म नहीं मिलेगा और प्रारब्धका भोगसे नाश हो जायगा। जन्मके न मिलनेसे इक्कीस दुःखोंका नाश हो जायगा। और वह इक्कीस दुःखों का नाश ही **मोक्ष** है।

इस प्रकार न्याय-मतवाले तत्त्वज्ञानसे मोक्षको मानते हुए भी सुख-दुःख और बन्ध-मोक्षको आत्मामें मानते हैं; और इसी कारण उन्हें आत्माको व्यापक मानते हुए भी नाना (अनेक) मानना पड़ता है। जैसे अपने (वेदान्त) मतमें सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे रहितको व्यापक मानते हैं, वैसे नैयायिक नहीं मानते। वे लोग उसको व्यापक कहते हैं जिसका सभी अल्प (परिच्छिन्न परिमाणवाले) पदार्थों [मूर्त=क्रियावान् द्रव्यों] से संयोग हो। किन्तु उनका यह मानना ठीक नहीं; क्योंकि यदि

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आत्माको व्यापक मान करके अर्थात् सभी शरीर इत्यादि पदार्थोंसे सम्बन्ध मान करके, और फिर नाना (अनेक) भी माना जायगा तो सब शरीरोंसे सभी आत्माओंका सम्बन्ध भी मानना पड़ेगा और ऐसा माननेसे कौनसा शरीर किस आत्माका है, यह निश्चय नहीं हो सकेगा; प्रत्युत प्रत्येक आत्माका प्रत्येक शरीर हो जायगा, अर्थात् सभी आत्माओंके सभी शरीर हो जायँगे।

यदि नैयायिक यह दलील दें कि जिस आत्माके कर्मों से जो शरीर उत्पन्न होता है, उस आत्माका वही शरीर है; तो उनकी यह दलील भी ठीक नहीं; क्योंकि न्याय मतमें जब सभी आत्माओंका सभी शरीरोंसे सम्बन्ध है, तब जिस शरीर-द्वारा पहिले कर्म किये थे, उस शरीरसे भी सभी आत्माओंका सम्बन्ध होगा, अतः उस शरीर-द्वारा किये हुए कर्म भी सभी आत्माओंके माने जायँगे। ऐसी दशामें किस आत्माके कर्मोंसे कौनसा शरीर उत्पन्न हुआ है, यह निश्चय कैसे होगा ? और जब यह निश्चय नहीं हो सकेगा, तब हम कैसे समझ सकेंगे कि किस आत्माका कौनसा शरीर है; अतः सभी आत्माओंके सभी शरीर हैं, ऐसा ही मानना पड़ेगा। और इस प्रकार जब सभी आत्माओंका सभी मनोंके साथ सम्बन्ध है, तब कौनसा मन किस आत्माका है, यह निश्चय भी नहीं होगा; किन्तु सभी आत्माओंके सभी मन हैं, ऐसा ही मानना पड़ेगा। इसी प्रकार सभी इन्द्रियाँ भी सब आत्माओंकी हो जायँगी, और सभी पदार्थ भी सभी आत्माओंके हो जायँगे। और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जब किसी एक शरीरमें एक आत्माको मैंपनकी बुद्धि होती है (जैसे मैं मनुष्य हूँ, मैं यज्ञदत्त हूँ, इस प्रकारकी शरीरमें मैंपनकी बुद्धि होती है) और उसी शरीरसे यदि सभी आत्माओंका सम्बन्ध है, तब उसी एक शरीरमें सभी आत्माओंको मैंपनकी बुद्धि होनी चाहिये। इस प्रकार जब सभी मनोंसे सभी आत्माओंका नैयायिक लोग सम्बन्ध मानते हैं, तब सभी मनों में जो सुख-दुःख होते हैं, उनका अनुभव भी सभी आत्माओंको होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता; इसलिए न्याय-मतमें आत्माको अनेक व्यापक (सभी अल्प पदार्थोंसे संयोगवाला) और जो कर्त्ता भोक्ता माना जाता है, वह वेदके विरुद्ध और युक्ति-हीन (बेदलील) होनेके कारण ठीक नहीं है।

इसलिए वेदान्त-सिद्धान्ताऽनुसार आत्माको व्यापक (सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे रहित) और एक ही माना जाता है। और उस आत्मामें यदि धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, बन्धन व मोक्ष आदि स्वीकार करेंगे, तो किसीको सुख, किसीको दुःख, किसीको बन्धन, किसीको मोक्ष, यह व्यवहार नहीं बन सकेगा। इसलिए धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, इत्यादि सब धर्म बुद्धिके ही माने जाते हैं, न कि आत्माके। यद्यपि बुद्धि आत्मामें कल्पित है, इसलिए जो बुद्धिके धर्म हैं, वे भी आत्मामें ही कल्पित हैं किन्तु जो वस्तु जिसमें कल्पित होती है, वह वस्तु उस अधिष्ठानमें परमार्थसे (वास्तवमें) नहीं होती। जैसे रस्सीमें कल्पित सर्प वास्तवमें रस्सीमें नहीं होता, उसी प्रकार राग-द्वेष, धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, बन्धन-मोक्ष ये सब वास्तवमें आत्मामें नहीं हैं। इसलिए **आत्मा इन सब धर्मोंसे रहित,**

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

व्यापक और एक है।

जैसे हम देखते हैं कि संसारमें उसी वस्तुका नाश होता है, जो परिच्छिन्न (महदूद) होती है किन्तु आत्मा व्यापक है (परिच्छिन्न नहीं किन्तु बेहद है); इसलिए आत्माका कभी नाश नहीं होता। और जिसका कभी (तीनों-कालोंमें) नाश नहीं होता, उसको सत् कहते हैं। इसलिए आत्मा **सत्** है।

यदि कोई कहे कि मैंने आत्माके नाशका अनुभव किया है (आत्माके नाशको जाना है) तो हम कहेंगे कि जानने वाला तो फिर भी रह गया, और वही आत्मा है। और उसका (उस साक्षीका) तो नाश हुआ ही नहीं; इसलिए वह साक्षीरूप आत्मा सत् है।

वह आत्मा चित् (चैतन्य) है; क्योंकि चित् कहते हैं प्रकाशरूप ज्ञानको। अन्तःकरण और इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, उनसे किसी वस्तुका प्रकाश (ज्ञान) हो ही नहीं सकता। इसलिए आत्मा सबका प्रकाश होनेके कारण **प्रकाशरूप** (चित् अथवा ज्ञान-स्वरूप) ही सिद्ध होता है।

यदि कोई कहे कि आत्मा जड़ है, और ज्ञान केवल उसका गुण है, न कि स्वरूप। तो हम उनसे पूछते हैं कि आप जिस ज्ञानको आत्माका गुण मानते हो, वह नित्य है या अनित्य। यदि नित्य कहोगे तो आत्माका स्वरूप ही मानना पड़ेगा, क्योंकि आत्मासे भिन्न सब वस्तु अनित्य हैं। और यदि ज्ञानको आत्मासे भिन्न मानोगे, तो अनित्य

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मानना पड़ेगा । इसलिए यह कहना चाहिए कि ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं, किन्तु आत्माका ही स्वरूप है। और आत्माको ज्ञान-स्वरूप मान करके फिर जड़ कह देना अपनी बुद्धिकी मन्दताको प्रकट करना ही है ।

यदि कोई कहे कि ज्ञान आत्माका गुण तो है, किन्तु नित्य नहीं, अनित्य है तो यह कहना भी ठीक नहीं; क्योंकि हम देखते हैं कि जो वस्तुएं अनित्य होती हैं, वे सब जड़ ही होती हैं, जैसे घड़ा इत्यादि। और यदि ज्ञानको अनित्य मानकर जड़ स्वीकार कर लोगे, तो जो वस्तु स्वयं जड़ है, वह दूसरे को कैसे जनवा सकती है ? इसलिए ज्ञानको अनित्य न मान कर नित्य ही मानना चाहिए ।

इतना समझाने पर भी यदि कोई हठ करे कि ज्ञान तो अनित्य ही है; तो फिर उसको यह कहना पड़ेगा कि "इन्द्रिय अथवा अन्तःकरणसे ज्ञान उत्पन्न होता है ।" किन्तु वह ठीक नहीं; क्योंकि यदि ऐसा होता तो सुषुप्ति (गहरी नींद) में इन्द्रिय अथवा अन्तःकरण आदिके न होनेपर भी जो सुखका ज्ञान होता है वह नहीं होना चाहिए ।

और अनित्य वस्तु तो कभी होती है और कभी नहीं होती, किन्तु ज्ञान तो जाग्रत्में जाग्रत्के पदार्थोंका, स्वप्नमें स्वप्नके पदार्थोंका और सुषुप्तिमें अ.नन्दका, इस प्रकार सदा रहता ही है। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान अनित्य नहीं किन्तु नित्य ही है। और वह नित्य ज्ञान आत्माका स्वरूप ही सिद्ध हो सकता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि **आत्मा ज्ञान-स्वरूप अर्थात् चित् (चैतन्य) है ।**

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसी भाँति आत्मा आनन्द-स्वरूप भी है; क्योंकि यदि आत्मा आनन्द-स्वरूप न होती तो सुषुप्तिमें अथवा समाधिमें जहाँ विषयोंका नाम भी नहीं है, वहाँ आनन्दका भान न होता। तथा विषय-सम्बन्धसे जो आनन्द प्रतीत होता है, वह भी उसी आत्मस्वरूप आनन्दका ही प्रतिबिम्ब है; क्योंकि यदि विषयोंमें आनन्द होता तो जिस विषयसे एक पुरुषको आनन्द आता है, उस विषयसे दूसरेको दुःख नहीं होना चाहिए। परन्तु हम देखते हैं कि एक पुरुषको देखकर उसके मित्रको तो आनन्द होता है किन्तु उसके शत्रुको दुःख होता है। यदि कोई कहे कि विषय ही आनन्दरूप हैं तो यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि यदि विषय ही आनन्दरूप होते तो जैसा आनन्द भोग के समय आता है, वैसा तृप्तिके बाद भी आना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता। हम देखते हैं कि किसी बच्चेको जब तक भूख रहती है, तब तक तो उसे मिठाईसे आनन्द आता रहता है किन्तु जब पेट भरकर तुम्बा हो जाता है, तब उसी मिठाई से उसको घृणा हो जाती है। यदि मिठाई आनन्द-स्वरूप होती तो जैसा आनन्द भूखके समय आता है, वैसा ही तृप्तिके बाद भी आना चाहिए, किन्तु नहीं आता। इसलिए यह मानना चाहिए कि विषय स्वयं आनन्द-स्वरूप नहीं हैं; और जो उनमें आनन्द आता है उसका कारण यह है कि जब हमारा मन विषयको भोगते समय विषयमें तल्लीन (एकाग्र) हो जाता है, तब उसी एकाग्र मनमें आनन्द-स्वरूप आत्माका प्रतिबिम्ब (अक्स) पड़ता है। और यह नियम है कि जैसा बिम्ब वैसा प्रतिबिम्ब। अतः आत्मा आनन्द-स्वरूप होनेके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कारण, उसका प्रतिबिम्ब भी आनन्दरूप ही पड़ता है। जिस समय मन विषयमें एकाग्र हो जाता है, उस समय हमें जिस आनन्दकी प्रतीति होती है, वह आनन्द तो वास्तवमें आत्माका ही प्रतिबिम्ब है अर्थात् प्रतिबिम्ब-रूपसे आत्मासे ही आता है; किन्तु अज्ञानी लोग समझते हैं कि यह आनन्द विषयसे ही आरहा है। यदि यह आत्मा, आनन्द-स्वरूप न होती तो इसका प्रतिबिम्ब भी **आनन्द-स्वरूप** न पड़ता। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा (अपना-आप) **आनन्द-स्वरूप** है।

यह भी देखा जाता है कि हम संसारमें उसीसे प्रेम करते हैं, जो सुखरूप हो; क्योंकि दुःखको तो कोई नहीं चाहता। इससे सिद्ध होता है कि जिसको सब चाहते हैं, उसका नाम **आनन्द** है। अब हमें देखना है कि हम सब किसको चाहते हैं? वास्तवमें हम सब चाहते हैं, अपने-आपको; क्योंकि स्त्रीको, धनको और पुत्र आदिको भी हम अपने लिए ही चाहते हैं, अधिक क्या कहें, हम संसारके सभी पदार्थोंको भी अपने लिए ही चाहते हैं; किन्तु अपने-आपको और किसीके लिए नहीं चाहते अर्थात् हमारा जो अपने आपमें प्रेम है वह दूसरेके लिए नहीं, किन्तु खुदके लिए ही है। इससे सिद्ध होता है कि हम सब अपने-आपको ही चाहते हैं। प्रथम हम बतला चुके हैं कि जिसको हम सब चाहते हैं, उसका नाम है आनन्द। इससे यह सिद्ध हुआ कि **अपना-आप** (**आत्मा**) ही **आनन्द-स्वरूप** है। किन्तु उस आत्माके आनन्दपनेका भान तभी होता है, जब वृत्ति अन्तर्मुख (एकाग्र) होकर उस आत्माके प्रतिबिम्बको ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करती है।

इस प्रकार आत्मा सत् चित् आनन्द-स्वरूप है, यह सिद्ध हुआ। और यह सत् चित् आनन्द परस्पर भिन्न नहीं, किन्तु एक ही है; क्योंकि यदि ये आत्माके गुण होते तो आपसमें भिन्न होते किन्तु ये तो आत्माके स्वरूप ही हैं, अतः भिन्न नहीं हैं। यह सत् चित् आनन्द-स्वरूप आत्मा ब्रह्म-स्वरूप ही है; क्योंकि वेद ब्रह्मको भी सत् चित् आनन्द-स्वरूप ही बताता है। अतः **आत्मा और ब्रह्मकी एकता ही वेदका परम सिद्धान्त है।**

यद्यपि जीव और ईश्वरकी एकता, वाच्य-अर्थकी दृष्टि से नहीं बन सकती; किन्तु जीव-साक्षी (आत्मा) और ईश्वर-साक्षी (ब्रह्म) इन दोनोंका तो आपसमें अभेद है ही। भेद तो केवल अविद्या और मायारूप उपाधिके भेदसे ही प्रतीत होता है। जैसे किसी कमरेमें रक्खे हुए घड़ेमें जो आकाश है, उसका उस कमरेवाले आकाशसे (घड़े और कमरेकी दृष्टिसे) यद्यपि भेद प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में वह घड़ेवाला आकाश, उस कमरेवाले आकाशसे भिन्न नहीं; ठीक इसी प्रकार आत्मा और ब्रह्मका भी उपाधि की दृष्टिसे भेद नज़र आता है, किन्तु वास्तवमें दोनों एक ही हैं।

श्रुति भी कहती है कि :—**"अयमात्मा ब्रह्म"** अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है। और **"तदेतत्सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्स्यमित्यों सत्यमात्मैव नृसिंहो देवो ब्रह्म भवति"**। अर्थात् "वही यह सत्य है। आत्मा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्म ही है और ब्रह्म आत्मा ही है। निश्चय ही इस विषय में कोई संशय नहीं करना चाहिए। हाँ, यह सत्य ही है कि आत्मा ही नृसिंह-देवरूप ब्रह्म है।"

वह ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा अर्थात् जन्मसे रहित है; क्योंकि यदि आत्माका जन्म मानेंगे तो अन्त भी मानना पड़ेगा। यह हम पहिले सिद्ध कर चुके हैं कि आत्मा अनित्य नहीं किन्तु नित्य है। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है कि :—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥

(गीता २-१२)

अर्थात् मैं (तत्पदार्थ परमात्मा) किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं; किन्तु सदा मैं था ही। वैसे तुम और ये सब राजा नहीं थे, ऐसा नहीं है; किन्तु थे ही। और भविष्य में भी हम सब नहीं होंगे, ऐसा नहीं है; किन्तु होंगे ही अर्थात् हम सब पहिले भी थे, अब भी हैं, और बादमें भी रहेंगे।

भगवान्‌ने जो सबको नित्य बतलाया है, वह शरीरकी दृष्टिसे नहीं, किन्तु आत्माकी ही दृष्टिसे। जब आत्माका आभास (प्रतिबिम्ब) जो सूक्ष्म शरीरमें पड़ता है, जिसको **चिदाभास** कहते हैं, वह भी विदेह-मोक्ष तक नित्य रहता है, तब आत्माके नित्यपनेको सिद्ध करनेके लिए और दलील की तो आवश्यकता ही क्या है। यदि सूक्ष्म शरीरमें आए हुए चिदाभासको विदेह-मोक्षसे पहिले ही अनित्य मान लेंगे, तो ऐसा मानना पड़ेगा कि प्रत्येक जन्ममें वह सूक्ष्म शरीर

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और चिदाभास नया ही उत्पन्न होता है। किन्तु यह ठीक नहीं; क्योंकि यह सिद्धान्त है कि पुण्य पापका कर्त्ता और सुख-दुःख फलका भोक्ता, चिदाभास ही है। जैसे अभी कोई दो लड़के उत्पन्न हुए हैं और वे दोनों ही जन्मसे सुखी और दुःखी हैं। यह तो सभी मानते हैं कि सुख और दुःख, पुण्य पाप कर्मोंका फल है; किन्तु इन अभी उत्पन्न होनेवाले बच्चोंने तो कोई पुण्य पाप कर्म किये ही नहीं हैं, फिर इनको सुख-दुःखरूपी फल कैसे मिल रहा है। यदि तुम कहो कि पहिले जन्मोंके कर्मोंका फल है तो इसपर हम कहेंगे कि तुम तो आत्मा तथा सूक्ष्म शरीर में पड़े हुए चिदाभासको भी अन्तवाला मानते हो, इसलिए तुम्हारे मतमें पहिले जन्ममें कर्म करनेवाला जीवात्मा (चिदाभास अंश) तो मर चुका था, अब यह दूसरा नया उत्पन्न हुआ है। ऐसी दशामें यह सिद्ध होता है कि कर्म तो किया किसी एकने और उसका फल मिल रहा है किसी दूसरेको; जो कि वास्तवमें अन्याय है। इस अन्यायको हटानेके लिए यदि तुम यह कहो कि जो चिदाभास पहिले जन्ममें था, वही इस जन्ममें भी है, और वही अगले जन्म में भी अपना फल भोगता रहेगा; तो इस कथनसे यह प्रतीत होता है कि तुमने चिदाभास (चेतनके आभास) को नित्य मान लिया। और जब चिदाभास नित्य है तो फिर जिस चेतनका आभास पड़ता है उस चेतन आत्माको तो नित्य मानना ही पड़ेगा।

और यदि तुम हठ करो कि नहीं; आत्माका जन्म

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होता है तो फिर आत्माकी उत्पत्तिका कारण बताओ; क्योंकि किसी भी वस्तुके जन्ममें कोई न कोई कारण अवश्य होता है। आत्माकी उत्पत्तिमें स्वयं आत्माको तो कारण मान ही नहीं सकते; क्योंकि कोई भी वस्तु स्वयं अपने आप अपना कारण नहीं बन सकती। जैसे कोई भी पुरुष अपने आप अपना पिता नहीं बन सकता; अतः तुम्हें आत्मासे भिन्न अनात्मा (कल्पित नामरूप) को आत्माका कारण मानना पड़ेगा। किन्तु यह भी ठीक नहीं; क्योंकि कल्पित वस्तु अधिष्ठानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं बन सकती। जैसे रस्सीमें कल्पित साँप रस्सीको उत्पन्न नहीं कर सकता; ठीक इसी प्रकार आत्मामें कल्पित नामरूप अनात्मा, कभी आत्माके जन्म (उत्पत्ति) में कारण नहीं बन सकता। इस प्रकार जब आत्माकी उत्पत्तिमें कोई भी कारण सिद्ध नहीं हो सकता, तो इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा अजन्मा (जन्मसे रहित अर्थात् उत्पत्तिसे रहित) नित्य है। इसी कारण आत्माको जन्मादिक छः विकारोंसे रहित मानते हैं; क्योंकि जिसका **जन्म नहीं होता,** उसका **प्रकट होना, बढ़ना, बदलना, घटना** और **नष्ट होना** भी नहीं होता। वह सब विकारोंसे रहित निर्विकार आत्मा ही ब्रह्म अर्थात् सर्वत्र व्यापक है।

शंका :— भगवन् ! यदि वह आत्मा सर्वत्र व्यापक है तो दिखता क्यों नहीं है ?

उत्तर :— हे तात (प्रिय) ! वह आत्मा इन चर्म-चक्षुसे नहीं दीखता, किन्तु ज्ञान-चक्षुके प्रदान करनेसे अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

समझानेसे ही दीखता है (समझमें आता है)।

देखिये इस संसारमें जितनी वस्तुएँ नज़र आती हैं, उन सबके पाँच अंश हैं। (१) नाम (वाचक-शब्द= बतलानेवाला शब्द जैसे घड़ा, पुस्तक इत्यादि) (२) रूप (आकार=स्वरूप) (३) अस्ति (हैपन) (४) भाति (प्रतीत अथवा ज्ञान) (५) प्रिय (जो प्यारा लगे)। जैसे यह पुस्तक ही तुम्हारे सामने है। इसमें भी पाँचों अंश मौजूद हैं; जैसे इसका 'पुस्तक' यह **नाम** भी है। जो सामने दीख रहा है यह इसका **आकार** (स्वरूप) भी है। और "पुस्तक है" इस प्रकार इसका **हैपन** भी मौजूद है और इसका **ज्ञान** भी हो रहा है तथा यह किसी न किसीको **प्रिय** भी है। इनमें पहिलेवाले जो दो अंश **नाम** और **रूप** हैं, वे तो बदलते रहते हैं, इसलिए नाम और रूपका दर्शन मायाका दर्शन कहलाता है और इस पुस्तकमें जो अस्ति (हैपन) भाति (ज्ञान) व प्रिय अर्थात् प्रियता नज़र आरही है, यही आत्मा का दर्शन है। नाम, रूप यद्यपि सबके भिन्न भिन्न हैं, किन्तु अस्ति, भाति और प्रिय ये तीनों सभीमें एक ही रूपसे व्यापक हैं। इसीलिए हे शिष्य! अस्ति-भाति-प्रिय-रूप आत्मा (सत् चित् आनन्दरूप आत्मा) को **सर्वत्र व्यापक** माना जाता है।

उस आत्माका किसीके साथ कोई संग (सम्बन्ध) न होनेके कारण, उसे असंग भी कहते हैं। क्योंकि सम्बन्ध तीन प्रकारके होते हैं; (१) **सजातीय**— जैसे एक शरीरका दूसरे शरीरसे (२) **विजातीय**— जैसे शरीरका घड़ेसे। (३)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्वगत—जैसे शरीरका अपने अवयवों (अंगों) से।

आत्मामें सजातीय सम्बन्ध तो तब होता, जब आत्मा एकसे अधिक होते और विजातीय सम्बन्ध तब बन सकता जब आत्मासे विजातीय अनात्मा कोई सच्चा होता किन्तु अनात्मा तो कल्पित है। उस कल्पित अनात्माका आत्मासे विजातीय सम्बन्ध भी नहीं बन सकता। और स्वगत सम्बन्ध भी तभी सिद्ध हो सकता, जब आत्माके कोई अवयव होते किन्तु आत्मा तो निरवयव है, अतः स्वगत सम्बन्ध भी नहीं बन सकता। इस प्रकार जब आत्माका किसीके साथ कोई सम्बन्ध (संग) ही नहीं बन सकता तो इससे सिद्ध होता है कि आत्मा **असंग** है।

इस प्रकार हे शिष्य! श्रुति-सम्मत युक्तियोंसे सिद्ध किया हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप, जन्मादि छः विकारोंसे रहित और असंग जो आत्मा है, वही तू है अर्थात् वही तेरा असली-स्वरूप है। यहाँ अगृधदेवके "मैं कौन हूँ" इस पहिले प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ।

अगृधदेवके दूसरे प्रश्नका यह अभिप्राय था कि हे भगवन्! हम देखते हैं कि जितने भी इस संसारमें पदार्थ हैं, उनका कोई न कोई कर्त्ता (बनानेवाला) होता ही है, जैसे घड़ेका कुम्हार। इसी भाँति इस संसारका भी तो कोई न कोई कर्त्ता होना ही चाहिए। अतः कृपा करके बताइये कि संसारका कर्त्ता कौन है?

इस प्रश्नको सुनकर स्वप्नवाले गुरुजी उसी स्वप्न अवस्थामें अगृधदेवको कहने लगे कि हे शिष्य! माया-विशिष्ट-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चेतन [एक माया, दूसरा शुद्ध चेतन, तीसरा उस चेतनका आया हुआ मायामें प्रतिबिम्ब (अक्स) ये तीनों] जिसे ईश्वर कहते हैं, वे ही इस जगत्के कर्त्ता हैं अर्थात् वे ही इस संसारकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं। और वे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र और व्यापक हैं। यद्यपि वैसे तो जीवका लक्ष्य-अर्थ अर्थात् असली स्वरूप शुद्ध चेतन, साक्षी आत्मा भी व्यापक ही है और जीवके लक्ष्य-अर्थका ईश्वरके लक्ष्य-अर्थसे अभेद (एकता) है ; किन्तु अविद्या-विशिष्ट-चेतन (एक अविद्या, दूसरा शुद्ध चेतन और तीसरा उस चेतनका अविद्यामें आया हुआ प्रतिबिम्ब ये तीनों) जो जीवका वाच्य-अर्थ है, वह तो अल्पज्ञ, अल्प-शक्तिमान्, पराधीन और एकदेशी (परिच्छिन्न अर्थात् हद वाला) है।

शंका :— भगवन् ! जैसे जीव एकदेशी है, वैसे ईश्वर भी एकदेशी अर्थात् हदवाला क्यों नहीं माना जाता ?

उत्तर :— हे शिष्य ! हम देखते हैं कि जो पदार्थ हद वाले होते हैं, उनका नाश भी होता है और जिनका नाश होता है, उनको उत्पन्न करनेवाला भी कोई न कोई अवश्य होता ही है। अतः यदि ईश्वरको भी हदवाला और नाश वाला मानकर, उत्पन्न होनेवाला मानोगे तो फिर ईश्वरको उत्पन्न करनेवाला कौन है ; यह प्रश्न खड़ा होगा। यदि यह कहा जाय कि ईश्वर अपने आप ही अपना कर्त्ता (उत्पन्न करनेवाला) है, तो **आत्माश्रय दोष** आजायगा; क्योंकि कोई अपने आप ही अपना पिता (उत्पन्न करनेवाला)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं बन सकता।

यदि कहो कि नहीं, इस ईश्वरका कोई दूसरा ईश्वर कर्त्ता (जनक) है। तो फिर उस दूसरे ईश्वरका भी कोई तीसरा ईश्वर कर्त्ता मानना पड़ेगा। यदि कहो कि नहीं, पहिलेवाले ईश्वरका दूसरा ईश्वर कर्त्ता है और दूसरे ईश्वरका पहिला ईश्वर कर्त्ता है। तो **अन्योन्याश्रय दोष** आजायगा; क्योंकि कोई दो मनुष्य आपसमें एक दूसरेके पिता नहीं बन सकते।

फिर यदि कहो कि दूसरे ईश्वरका कर्त्ता कोई तीसरा ईश्वर है। तो फिर हम पूछेंगे कि उस तीसरे ईश्वरका कर्त्ता कौनसा ईश्वर है। यदि कहो कि तीसरेका तो पहिलेवाला ईश्वर ही कर्त्ता है, तो **चक्रिका दोष** आजायगा; क्योंकि पहिले ईश्वरका कर्त्ता दूसरा ईश्वर, और दूसरेका तीसरा, फिर तीसरेका पहिला, इस तरह तो चक्र घूमता रहेगा। यदि इस दोषको हटानेके लिए यह कहो कि तीसरे ईश्वर का कर्त्ता चौथा ईश्वर है। तब यों तुम दूसरा दूसरा ईश्वर कर्त्ता बताते जाओगे और हम पूछते जायँगे। इस तरह तो **अनवस्था दोष** हो जायगा।

यदि कहो कि अनवस्था हो जाय तो इससे क्या हानि है; क्योंकि हम तो उन सब ईश्वरोंमेंसे किसी एकको ईश्वर मान लेंगे तो यह ठीक नहीं; क्योंकि बिना किसी युक्ति व प्रमाणके किसी चीज़को मान लेना भी एक **विनिगमन-विरह** नामका दोष कहलाता है। तुम यदि अपना हठ न छोड़ते हुए फिर भी यह कहो कि जो ईश्वरोंकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अनवस्था अर्थात् एक धारा चली थी, उसको हम कहीं समाप्त करके अन्तवालेको जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेंगे ; तो यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पहिलेवाले सभी कर्त्ता ईश्वर वृथा सिद्ध हो जायेंगे ; अर्थात् जिस अन्तवालेको ईश्वर माना उससे पहिलेवाले ईश्वर, ईश्वर नहीं रहेंगे अर्थात् उनके ईश्वरत्वका ही लोप (अभाव) हो जायगा । अतः ऐसा कहना **प्राग्लोप** नामक दोष कहलाता है; क्योंकि पहिले धारा चलाकर फिर एकको मानकर और बाकीका लोप करना निरर्थक ही है ।

इस प्रकार ईश्वरका कर्त्ता माननेसे जब दोष ही आते हैं तो इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वरकी उत्पत्ति नहीं होती । और जब उत्पत्ति ही नहीं होती तो उसका नाश भी नहीं हो सकता । और जब नाश-रहित ही मानते हैं तो फिर एकदेशी अर्थात् हदवाला न मानकर व्यापक ही मानना पड़ेगा; क्योंकि जो हदवाला होता है उसका तो नाश हो ही जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर व्यापक और नित्य है । यह दूसरे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ ।

अगृधदेवका तीसरा प्रश्न :— स्वामिन् ! मोक्षका साधन ज्ञान है अथवा कर्म है, उपासना (भक्ति) है वा इनमें से कोई दो हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! मोक्षका साधन केवल एक ज्ञान ही है ; न कर्म, न उपासना और न कर्म उपासना दोनों हैं ; क्योंकि यह संसारका बन्धन कल्पित है और कल्पित

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वस्तुकी निवृत्ति तो केवल अधिष्ठानके ज्ञानसे ही हुआ करती है, न कि कर्म और उपासनासे। जैसे रस्सीमें कल्पित साँप किसी भी नमस्कार इत्यादि कर्मसे अथवा भक्तिसे निवृत्त नहीं हो सकता, किन्तु उसके अधिष्ठान रस्सीके ज्ञान से ही केवल निवृत्त हो सकता है; उसी प्रकार यह मिथ्या (कल्पित) संसार भी इसके अधिष्ठान ब्रह्मरूप आत्माके ज्ञान से ही निवृत्त हो सकता है, न कि किसी कर्म और उपासनासे। वेद भी कहता है कि **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** अर्थात् 'बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं हो सकती।' **'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्'** अर्थात् 'कैवल्य-मोक्ष तो ज्ञानसे ही हो सकता है।' **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** अर्थात् 'उस मोक्षरूप अयन (घर) को प्राप्त करनेके लिए दूसरा मार्ग (रास्ता) है ही नहीं।' इत्यादि कई जगह वेदने डण्डेकी चोटपर घोषणा करके कहा है कि मोक्ष केवल ज्ञानसे ही हो सकता है, न कि कर्म और उपासनासे।

और यदि मोक्ष कर्मका फल होता तो अनित्य होता, बल्कि यदि उपासनाका भी फल होता तो भी अनित्य ही मानना पड़ता; क्योंकि स्वर्ग इत्यादि जितने भी कर्मों के फल हैं, वे सभी अनित्य हैं। उपासना भी एक प्रकार का मानसिक कर्म है। इसलिए उसके भी जितने फल हैं वे सभी अनित्य होते हैं। मोक्ष तो नित्य है। वेद भी कहता है कि **"न स पुनरावर्त्तते"** अर्थात् उस आत्म-ज्ञानी का (मोक्ष प्राप्तिके बाद) फिर जन्म-मरण नहीं होता अर्थात् वह मोक्ष नित्य ही प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

थोड़ा विचार करके देखें तो कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति तो हो ही नहीं सकती; क्योंकि कर्म सदा पाँच प्रकारके फलों के लिए ही किया जाता है। जैसे:— किसी पदार्थको उत्पन्न करना हो, अथवा किसी पदार्थका नाश करना हो अथवा किसी पदार्थको प्राप्त करना हो, अथवा किसी पदार्थका रूप बदलना हो, अथवा किसी पदार्थका संस्कार करना हो अर्थात् किसी पदार्थमेंसे मलको हटाना व उसमें गुणको लाना हो; किन्तु मोक्षमें तो न किसीकी उत्पत्ति करनी है, न नाश करना है, न प्राप्ति करनी है, न किसीको बदलना है और न किसीका कोई संस्कार ही करना है। क्योंकि मोक्ष कहते हैं संसारके जन्म-मरणरूपी दुःखकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्तिको; और ये दोनों फल आत्मामें तो पहिलेसे ही मौजूद हैं। वेदान्तका श्रवण तो केवल संसारकी भ्रान्तिको हटानेके लिए तथा आत्मा (मेरा असली स्वरूप साक्षी) नित्य मुक्त है और इसके मोक्षके लिए किसी कर्मकी आवश्यकता नहीं है; इस बातको समझानेके लिए ही किया जाता है।

यदि सम-समुच्चयवादके अनुसार कोई कहे कि— मोक्षका हेतु (साधन) ज्ञान तभी हो सकता है, जब ज्ञानके साथ साथ कर्म और उपासना भी किये जायँ; अथवा ज्ञानकी रक्षाके लिए तो कर्म और उपासना अवश्य करने ही चाहियें, तो यह उसका कहना ठीक नहीं; क्योंकि कर्म करनेवाला और उपासक (भक्त) ये दोनों यद्यपि अपने आपको स्थूल शरीर तो नहीं समझते, किन्तु 'मैं कर्त्ता भोक्ता हूँ' इस प्रकार आत्माको

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कर्त्ता भोक्ता तो मानते ही हैं। यह कर्त्ता भोक्ताकी भ्रान्ति विद्वान् (आत्मज्ञानी) को तो होती ही नहीं है। तथा जाति, आश्रम, व अवस्था आदिकोंकी भावनाएँ भी कर्ममें हेतु (कारण) पड़ा करती हैं। और ये सब भावनाएँ शरीर में ही हुआ करती हैं, न कि आत्मामें।

ज्ञानी तो अपनेको जब शरीर ही नहीं समझता, तो उसमें जाति, आश्रम, अवस्था आदिकोंकी भावनाएँ कैसे हो सकती हैं। इससे सिद्ध हुआ कि कर्त्ता-भोक्तापनकी भ्रान्ति से रहित तथा जाति इत्यादिकी भावनाओंसे रहित ज्ञानी का कर्मोंमें (यज्ञ इत्यादि कर्मोंमें) अधिकार नहीं है अर्थात् यज्ञ इत्यादि कर्म उनके लिए कर्त्तव्य नहीं हैं।

उपासना भी इस बुद्धिसे होती है कि 'मैं उपासक (उपासना करने वाला) हूँ और देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि) उपास्य (उपासना करने योग्य) हैं।' इस प्रकार की द्वैत-बुद्धि ज्ञानीको तो होती ही नहीं ; वह तो समझता है कि 'शरीर इत्यादि मेरे अथवा देवताके सभी सपनेकी तरह कल्पित ही हैं और चेतन सबमें एक ही है।' इसलिए आत्मज्ञानीसे द्वैतमूलक (द्वैत-भावनासे होनेवाली) उपासना (भक्ति) नहीं हो सकती ; क्योंकि अद्वैत-ज्ञान और द्वैत-उपासनाका प्रकाश और अंधकारकी तरह आपसमें विरोध है।

ब्रह्मज्ञानका फल जो मोक्ष है ; वह स्वर्ग इत्यादिकी तरह अदृष्ट नहीं है, किन्तु नित्य प्राप्त है। यह बन्धन तो केवल भ्रान्तिसे ही प्रतीत हो रहा है ; जिसकी निवृत्ति

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मज्ञानका दृष्ट फल अर्थात् प्रत्यक्ष फल है।

शंका :— स्वामीजी ! जब मोक्ष केवल ज्ञानसे ही होता है तो फिर वेदने कर्म और उपासनाका वर्णन क्यों किया है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जिस प्रकार अन्नको उत्पन्न करनेसे पहिले भूमिको ठीक करनेके लिए हल इत्यादि चलानेकी आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार ज्ञानसे पहिले चित्तको शुद्ध करनेके लिए कर्म और उपासनाकी आवश्यकता पड़ती है ; किन्तु वह आवश्यकता केवल ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये ही है, न कि मोक्षके लिए ; क्योंकि ज्ञानकी उत्पत्तिसे पहिले जिस अन्तःकरणमें अर्थात् बुद्धिमें ज्ञान होता है, उसको शुद्ध करनेके लिए कर्म और निश्चल (एकाग्र) करनेके लिए उपासनाकी आवश्यकता है ; किन्तु जिसका अन्तःकरण पहिले जन्ममें किये हुए कर्म और उपासनासे ही शुद्ध है तो उसको फिर कर्म और उपासनाकी आवश्यकता नहीं है।

शंका :— भगवन् ! यद्यपि मोक्षके लिए कर्म और उपासनाकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होनेके बाद उसकी रक्षाके लिए तो कर्म उपासना करने चाहियें कि नहीं ?

उत्तर :— नहीं ; क्योंकि कर्म और उपासनासे ब्रह्मज्ञानकी रक्षा तो नहीं होती, उल्टा उनका आपसमें विरोध होनेके कारण, कर्म और उपासनासे ब्रह्माकार वृत्ति टूटती है और आत्म-चिन्तनकी जगह अनात्म-चिन्तन होता है।

शंका :— भगवन् ! यदि ज्ञानवान् कर्म नहीं करेगा तो उसे पाप तो नहीं लगेगा ?

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— नहीं ; क्योंकि किसी कर्मको न करनेसे पाप नहीं लगता, किन्तु निषिद्ध कर्मों (पाप कर्मों) को करनेसे ही पाप लगता है। यह बात भगवान् भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्यजी महाराजने कई प्रकारोंसे बतलाई है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि कर्म न करनेसे पाप नहीं लगता।

वास्तवमें ज्ञानीको पाप व पुण्य कर्मों-द्वारा बन्धन (जन्म-मरणरूप संसारकी प्राप्ति) तो हो ही नहीं सकता ; क्योंकि उससे निषिद्ध कर्म (पाप कर्म) तो कभी होते ही नहीं हैं। इसका कारण यह है कि ज्ञानी, जिज्ञासु-अवस्थामें पाप कर्मोंको न करनेका, तथा निष्काम शुभ कर्मोंको करनेका अभ्यास करता ही रहता है और वही अभ्यास परिपक्व होकर ज्ञान होनेके बाद स्वभावमें परिणत हो जाता है। अतः ज्ञान होनेके बाद ज्ञानीकी प्रवृत्ति किसी भी प्रकारके पाप कर्मोंमें तो हो ही नहीं सकती। जब उसकी पाप कर्मोंमें प्रवृत्ति ही नहीं होती, तो पाप लगनेकी तो शंका ही कहाँ है। और शुभ कर्म भी उससे बिना इच्छाके प्रारब्ध-वशात् वा स्वभावसे ही होते रहते हैं, अतः उनका भी लेप (बन्धन) ज्ञानीको नहीं लग सकता।

जब ज्ञान होनेपर ज्ञानीका अज्ञान ही नष्ट हो जाता है, तो फिर अज्ञानका कार्य 'संसार और कर्म इत्यादि' उसको बन्धनमें डाल ही कैसे सकते हैं।

शंका :— स्वामीजी ! अन्य कर्म तो चाहे ज्ञानी न करे, किन्तु वेदान्तका पढ़ना-पढ़ाना और उसका चिन्तन करना भी तो एक कर्म है ; उसका करना आवश्यक है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— हे शिष्य ! वस्तुतः यह कर्म, कर्म नहीं है ; क्योंकि जिस कर्मसे साक्षत् अकर्मकी (मोक्षकी) प्राप्ति होती है, वह कर्म भी अकर्म-रूप ही है। और यदि इसको चिन्तनरूप कर्म माना भी जाय तो भी कोई हानि नहीं है। किन्तु इसका करना अथवा न करना ज्ञानीकी इच्छा पर है, उसके लिये कोई कर्त्तव्य नहीं। परन्तु जो मन्द ज्ञानी है, अर्थात् जिसका ज्ञान अब तक दृढ़ नहीं हुआ है और संशय अभी रहे हुये हैं, उसके लिए तो आत्म-चिन्तन कर्त्तव्य है। जिस वेदान्तका उसने पहले श्रवण किया है, उसका ही केवल वह मनन तथा निदिध्यासन करता रहे। उसे भी कर्म उपासना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

शंका :— भगवन् ! जिसके मल (पाप कर्म) और विक्षेप (चंचलता) अब तक नष्ट नहीं हुए हैं, किन्तु वेदान्त-श्रवणमें लग चुका है उसे तो फिर विक्षेपको हटानेके लिए कर्म उपासना करने चाहियें कि नहीं।

उत्तर :— नहीं ; उसको वेदान्त-श्रवण करनेके बाद मनन और निदिध्यासनको छोड़कर, फिर पीछे हटनेकी अर्थात् कर्म और उपासना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो श्रवण किये हुए वेदान्तका मनन और निदिध्यासन करता हुआ ही आगे बढ़ता रहे; क्योंकि मनन और निदिध्यासन ही उसके मल और विक्षेपको हटाकर उसमें दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान उत्पन्न कर लेंगे।

शंका :—स्वामीजी ! ज्ञान होनेके बाद भी कई ज्ञानी पुरुष कर्म करते हुए दीखते हैं ; यदि ज्ञानके बाद कर्मकी आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं है, तो फिर वे ऐसा क्यों करते हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! यह तो मैंने तुम्हें पहिले ही बतलाया था कि जिज्ञासु अवस्थामें शुभ कर्म करनेका जो स्वभाव पड़ जाता है, उसी स्वभाव-वश ज्ञानी कर्म करते हैं, न कि कर्त्तव्य बुद्धिसे। दूसरी बात यह है कि कर्म (परतंत्र कर्म = प्रारब्धाधीन सुख-दुःख भोगनेमें निमित्त-मात्र कर्म) का सम्बन्ध प्रारब्ध से भी है। जिन ज्ञानियोंकी प्रारब्ध प्रवृत्ति-प्रधान होती है, वे तो लौकिक कर्म करते ही रहते हैं और जिनकी प्रारब्ध निवृत्ति-प्रधान होती है, वे उन लौकिक कर्मोंसे उपराम (हटे हुए) हो जाते हैं।

किन्तु ज्ञानीकी प्रारब्ध चाहे भोग-प्रधान [प्रवृत्ति-प्रधान (जैसे गृहस्थ जनकादिकोंकी)] हो चाहे निवृत्ति-प्रधान [जैसे त्यागी शुकदेव, वामदेव आदिकोंकी] हो उसके ज्ञानमें कोई हानि व मोक्षमें कोई बाधा (रुकावट) नहीं हो सकती।

शंका :— भगवन् ! अब तो मेरी समझमें आगया कि कर्म और उपासनासे तो केवल मल और विक्षेप ही नष्ट होते हैं, किन्तु अज्ञान रह जाता है। और वह अज्ञान केवल ज्ञानसे ही नष्ट हो सकता है। अब भगवन् ! जिस ज्ञानसे अज्ञान नष्ट होता है उसका कृपा करके थोड़ेमें वर्णन कीजिये।

उत्तर :— हे शिष्य ! वह ज्ञान तो मैंने तुम्हें पहिले ही बतला दिया है कि "जगत्‌का कर्त्ता जो ईश्वर है, वह वास्तव में (असली स्वरूपकी दृष्टिसे) तुझसे भिन्न नहीं है; क्योंकि तेरा असली-स्वरूप भी सत् चित् आनन्द-स्वरूप ब्रह्म है और ईश्वरका असली स्वरूप भी सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म ही है;

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् तू ही शुद्ध ब्रह्म है, तू ही मायाकी उपाधिसे ईश्वर जगत् और जीवरूपमें दिखाई दे रहा है। तू ही मायाकी उपाधिसे जगत्का कर्त्ता होकर इस दृश्यरूप जगत्को रचता है, तू ही इसका पालन करता है और तू ही इसका संहार करता है; किन्तु तू स्वयं संहारसे अर्थात् नाशसे रहित है।

इस अर्थको श्रीनिश्चलदासजी महाराजने कवितामें इस प्रकार लिखा है कि :—

दीनताकूँ त्यागि नर, अपनो स्वरूप देखि।
तूं तौ सुद्धब्रह्म अज, दृश्यको प्रकासी है॥
आपनै अज्ञानतैं जगत सब तूंहीं रचै।
सर्वको संहार करै, आप अविनासी है॥
मिथ्या परपंच देखि, दुःख जिन आनि जिय।
देवनको देव तूं तौ, सब सुखरासी है॥
जीव जग ईस होय, मायासैं प्रभासैं तूंहि।
जैसैं रज्जु साप सीप, रूप ह्वै प्रभासो है॥

शंका :— भगवन् ! मुझमें और ईश्वरमें जो भेद दिखाई देता है वह यदि केवल भ्रान्ति ही है, अर्थात् मुझमें और ईश्वर में यदि कोई वास्तवमें अन्तर है ही नहीं तो फिर जीव (मैं) अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् इत्यादि धर्मोंवाला और ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् इत्यादि धर्मोंवाला क्यों गिना जाता है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! ईश्वर और जीवकी जो एकता की जाती है वह वाच्य-अर्थको लेकर नहीं अपितु लक्ष्य-अर्थको ही लेकर की जाती है। और यह जो तुम्हें भेद प्रतीत हो रहा है, वह सारा वाच्य-अर्थमें ही है। अतः भाग-त्याग-लक्षणासे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वाच्य-अर्थके विरोधी भाग (हिस्से) अविद्या और मायाको त्यागकर (बुद्धिसे मिथ्या समझ करके) उसके अविरोधी भाग की (जीव-साक्षी और ईश्वर-साक्षीकी अर्थात् शुद्ध चेतनकी) ही आपसमें एकता की जाती है। इस प्रकार लक्ष्य-अर्थकी आपसमें एकता करनेसे तुम्हें यह शंका नहीं रहेगी; क्योंकि ये सर्वज्ञ और अल्पज्ञ इत्यादि जो धर्म हैं वे सब अविद्या और मायाकी उपाधिसे ही प्रतीत होते हैं। इन उपाधियोंके हटते ही वे विरुद्ध धर्म भी प्रतीत नहीं होंगे और फिर शुद्ध चेतनकी आपसमें एकता अनायास (आसानीसे) ही समझमें आ जायगी।

शंका :— गुरुजी ! आपने जो भाग-त्याग-लक्षणाका नाम लिया है; वह पूरा समझमें नहीं आया। अतः लक्षणा किसको कहते हैं, तथा भाग-त्याग-लक्षणाका क्या अर्थ है, यह कृपा करके संक्षेप (थोड़े) में समझाइये।

उत्तर :— हे शिष्य ! लक्षणा एक प्रकारकी वृत्ति है। इस लक्षणा वृत्तिको समझनेके लिए पहिले तुम्हें यह समझना चाहिये कि वृत्ति किसको कहते हैं।

शब्दका जो अर्थसे सम्बन्ध है, उस सम्बन्धको कहते हैं वृत्ति। वह वृत्ति दो प्रकारकी होती है। (१) शक्ति-वृत्ति (२) लक्षणा वृत्ति।

(१) **शक्ति-वृत्ति :—** पहिले तुम्हें मैं शक्ति-वृत्तिके बारे में कुछ मत बताता हूँ। न्याय-मतवाले कहते हैं कि "इस शब्द को सुननेसे इसी अर्थकी प्रतीति हो, जैसे अग्नि शब्दको सुननेसे जलती हुई आगका ही ज्ञान हो; इस प्रकारकी जो ईश्वरकी इच्छा है वही **शक्ति** है।" किन्तु सिद्धान्त (वेदान्त)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तो यह कहता है कि शब्दमें जो अर्थके ज्ञान करवानेका सामर्थ्य (ताकत) है, वही शब्दकी **शक्ति-वृत्ति** है यह शक्ति केवल शब्दोंमें ही नहीं होती, किन्तु सभी पदार्थोंमें निहित (मौजूद) है; जैसे अग्निमें जलानेकी शक्ति।

शक्ति, शक्तिमान्से जुदा नहीं हुआ करती; अतः न्याय मतमें ईश्वरकी इच्छाको जो पदकी शक्ति कहते हैं, वह ठीक नहीं; क्योंकि ईश्वरकी इच्छा तो ईश्वरका धर्म है। इसलिए वह ईश्वरकी शक्ति हो सकती है, न कि शब्दकी; क्योंकि धर्म हो ईश्वरका और शक्ति मानें शब्दकी, यह असंगत (अनुचित) है।

व्याकरणवाले कहते हैं कि शब्दमें जो अर्थको बतलानेकी **योग्यता** होती है, वही शब्दकी **शक्ति** है, न कि सामर्थ्य। उनका यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि बिना सामर्थ्यके कभी किसी प्रकारकी योग्यता नहीं हुआ करती। और यदि कहो कि असमर्थ शब्द भी अर्थको बतलानेके लिये योग्य हो सकता है तो हम कहेंगे कि इस वाक्यमें तो ऐसा विरोध दिखाई दे रहा है, जैसे कोई कहे कि असमर्थ (नपुंसक) भी अमोघ-वीर्य अर्थात् पुत्र को उत्पन्न करनेवाला बन सकता है; क्योंकि जैसे असमर्थ किसी कार्यको करनेके योग्य नहीं हो सकता, उसी प्रकार असमर्थ (सामर्थ्य-रहित) शब्द भी किसी अर्थको बतलानेके योग्य नहीं बन सकता। इसलिए शब्दमें सामर्थ्यको मानना ही पड़ेगा, और वह **'सामर्थ्य' ही शब्दकी शक्ति** है।

पूर्व-मीमांसाके वार्तिककार कुमारिल भट्टका मत यह है कि शब्द (पद) का अर्थके साथ जो **भेदाऽभेदरूप तादात्म्य**

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्बन्ध है, वही शब्दकी शक्ति है। वे भट्ट इस तादात्म्य संबंध को भेदाभेदरूपसे सिद्ध करनेके लिए यह दलील देते हैं कि शब्दका अर्थके साथ न केवल अत्यन्त भेद है और न केवल अत्यन्त अभेद ही है; किन्तु भेद भी है और अभेद भी है। इसीलिये शब्दका अर्थके साथ भेदाभेदरूप तादात्म्य सम्बन्ध माना जाता है। यदि हम शब्दका अर्थके साथ केवल अत्यन्त भेद ही मानेंगे तो जैसे अग्निके उच्चारण करनेसे उससे अत्यन्त भिन्न जलादिकी प्रतीति नहीं होती, उसी प्रकार अंगाररूप अग्निकी भी प्रतीति नहीं होनी चाहिये, किन्तु अग्नि शब्दसे अंगाररूप अग्निकी प्रतीति होती है, इसलिए शब्दका अर्थके साथ केवल भेद नहीं, किन्तु कोई अभेद भी है।

और यदि शब्दका अर्थके साथ केवल अत्यन्त अभेद ही मानेंगे। तो जैसे अग्नि शब्दका अर्थ अंगाररूप अग्नि मुखको जला देती है तो उससे अभिन्न अग्नि शब्द भी मुखको जला देता किन्तु ऐसा होता नहीं; इसलिए अग्नि शब्दका अंगाररूप अर्थसे न तो अत्यन्त भेद है और न अत्यन्त अभेद ही है; किन्तु भेद और अभेद दोनों हैं।

इसी अभिप्रायसे भट्ट, शब्दका अर्थके साथ भेदाभेदरूप तादात्म्य-सम्बन्ध मानते हैं। वे इसमें प्रमाण भी देते हैं कि जैसे ॐ अक्षरके साथ उसके अर्थरूप ब्रह्मका भेदाभेदरूप तादात्म्य सम्बन्ध है; क्योंकि वेद कहता है कि ॐ अक्षर ब्रह्म है, इससे सिद्ध होता है कि ॐ अक्षरका और ब्रह्मका आपसमें अभेद है। और लोकमें तो भेद सिद्ध ही है; क्योंकि ॐ अक्षर तो केवल वाणीमें है, और ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ॐ और ब्रह्मका आपसमें भेद भी है और अभेद भी है। इसी प्रकार गुण और गुणीका, जाति और व्यक्तिका, क्रिया और क्रियावान्‌का तथा उपादान-कारण (जैसे मिट्टी) और कार्य (जैसे घड़ा) इन सबका आपसमें तादात्म्य-सम्बन्ध अर्थात् भेदाभेद सम्बन्ध (भेद-सहित अभेद) है।

यह भट्टका मत भी गलत है, क्योंकि भेद और अभेद ये आपसमें विरोधी हैं। हम देखते हैं कि जिस वस्तुका किसी वस्तुके साथ यदि अभेद है, तो उस वस्तुका उसी वस्तुके साथ किसी भी प्रकारसे भेद सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे घड़ेका अपने आपसे अभेद है और दूसरेसे भेद है। किन्तु जिससे भेद है, उससे कभी अभेद नहीं हो सकता और जिस अपने आपसे अभेद है, उस अपने आपसे कभी भेद नहीं हो सकता। अतः यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि एक वस्तुका भेद और अभेद एकमें नहीं हो सकते।

इसलिए वाचक (शब्द) और वाच्य (अर्थ), गुण और गुणी, जाति और व्यक्ति, क्रिया और क्रियावान्, कारण और कार्यमें भी भेदाभेदरूप तादात्म्य सम्बन्ध मानना ठीक नहीं है; किन्तु भेदाभेदसे विलक्षण **अनिर्वचनीय तादात्म्य सम्बन्ध** ही मानना चाहिये।

शब्दका अर्थके साथ अनिर्वचनीय सम्बन्ध इसलिये मानते हैं कि उस सम्बन्धको न केवल भेदरूप कह सकते हैं, न केवल अभेदरूप कह सकते हैं और न भेदाभेदरूप ही कह सकते हैं; क्योंकि पहिले बताए अनुसार यदि शब्दका अर्थके साथ भेद मानें तो जैसे अग्नि शब्दके उच्चारणसे उससे भिन्न जलका

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ज्ञान नहीं होता, वैसे अंगाररूप अग्निका भी ज्ञान नहीं होना चाहिये। यदि केवल अभेद मानें तो अग्नि शब्दके उच्चारणसे मुख जल जाना चाहिये और यदि भेद-अभेद दोनों मानें तो ये आपसमें विरोधी होनेके कारण एक जगह बन नहीं सकते; क्योंकि जहाँ भेद है वहाँ अभेद नहीं और जहाँ अभेद है वहाँ भेद नहीं।

इसलिए इन तीनों सम्बन्धोंसे विलक्षण (न्यारा) अनिर्वचनीय तादात्म्य सम्बन्ध माना जाता है। विलक्षण कहनेका तात्पर्य यह है :—भेदसे विलक्षण है, इस प्रकार कहनेसे वास्तव भेदसे रहित और कल्पित भेद-सहित बताया गया और अभेदसे विलक्षण कहनेसे कल्पित अभेदसे रहित और वास्तव अभेद सहित बताया गया अर्थात् जो हमें शब्द और अर्थका भेद नजर आता है वह कल्पित है, और जो अभेद नजर आता है वह वास्तविक है। इस प्रकार वेदान्त सिद्धान्तमें कल्पित भेद-सहित वास्तविक अभेद, **तादात्म्य-सम्बन्ध** कहलाता है और इसीको दूसरे शब्दोंमें **अनिर्वचनीय तादात्म्य-सम्बन्ध** कहते हैं।

शंका :— स्वामीजी ! यदि अक्षरका अर्थके साथ अभेद नहीं है तो फिर "प्रणव अर्थात् ॐ अक्षर ब्रह्म है" यह वेदने क्यों कहा है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! इस वेदके वचनका जो असली तात्पर्य है वह भट्टके ध्यानमें नहीं आया; क्योंकि वहाँ वेदकी यह आज्ञा है कि ॐ अक्षरको ब्रह्मरूप समझ करके उपासना करो। और उपासनामें यह नियम नहीं है कि जैसी वस्तु हो उसकी उसी रूपसे ही उपासना की जाय; क्योंकि शालिग्रामरूपी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पत्थरकी विष्णुरूपसे और नर्मदेश्वर (शिव लिंग) की शिवरूप से उपासना की जाती है। इसलिए ॐ अक्षर यद्यपि ब्रह्मरूप नहीं है, तो भी उसकी ब्रह्मरूपसे उपासना की जा सकती है। अथवा यों भी मान सकते हैं कि ॐ अक्षर ब्रह्ममें कल्पित है, और कल्पित वस्तु वास्तवमें अधिष्ठानसे भिन्न नहीं हुआ करती, इस दृष्टिसे कल्पित ॐ, अधिष्ठान ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, किन्तु ब्रह्म-स्वरूप ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पद (शब्द) को सुननेसे ही जो उसमें अर्थको जनवानेका अनिर्वचनीय-तादात्म्य-सम्बन्धरूप सामर्थ्य प्रतीत होता है, वही पदकी **शक्ति** है।

वह शब्दकी शक्ति-वृत्ति जिस अर्थको जनवाती है उस अर्थको **शक्य-अर्थ** अथवा **मुख्य-अर्थ** भी कहते हैं; जैसे अग्नि शब्दमें रहनेवाली शक्ति-वृत्ति (सामर्थ्य) अंगाररूप अग्नि को जनवाती है अर्थात् अग्नि शब्दका उच्चारण करते ही हमें जिस जलती हुई आगका ज्ञान होता है वह आग, अग्नि शब्दका शक्य-अर्थ है, उसको **वाच्य-अर्थ** भी कहते हैं। [इस शक्य-अर्थको शब्दका सीधा-सीधा अर्थ भी कहते हैं।]

जिस अर्थका ज्ञान शब्दकी शक्ति-वृत्तिसे न हो सके, किन्तु शब्दकी शक्ति-वृत्तिके द्वारा जाने हुए शक्य-अर्थके सम्बन्धसे ही हो सके तो उस अर्थको कहते हैं **लक्ष्य-अर्थ**। जैसे :— किसीने पूछा कि सत्संग कहाँ होता है? इसपर उत्तर मिला कि बारहदरी पर। फिर पूछा गया कि वह बारहदरी कहाँ है? कहा गया कि आना-सागरपर। अब यदि 'आनासागर' शब्दका शक्ति-वृत्ति

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

द्वारा शक्य-अर्थ (आनासागरका जल) लिया जायगा तो अर्थ ठीक नहीं निकल सकता; क्योंकि जलपर तो बारहदरी हो ही नहीं सकती; किन्तु यदि उसके शक्य-अर्थ (जल) के सम्बन्धी किनारेको लेलेंगे तब तो अर्थ ठीक बैठ सकता है; क्योंकि जलके किनारेपर बारहदरी बनी हुई है ही। इस प्रकार अर्थको सही करनेके लिए जो हमने 'आनासागर' शब्दके शक्य-अर्थका सम्बन्धी किनारा लिया है, वह किनारा 'आनासागर' शब्दका **लक्ष्य-अर्थ** है।

उस शक्य-अर्थका जो लक्ष्य-अर्थसे सम्बन्ध है, उसे **लक्षणा-सम्बन्ध** अर्थात् **लक्षणा-वृत्ति** कहते हैं।

लक्षणा-वृत्तिका तात्पर्य यह है कि जब कोई शब्द अपने लक्ष्य-अर्थको अपनी शक्ति-वृत्ति-द्वारा (साक्षात् सम्बन्ध द्वारा अर्थात् सीधी वृत्ति-द्वारा) नहीं जनवा सकता, तब अपनी शक्ति-वृत्तिसे जाने हुए शक्य-अर्थके द्वारा सम्बन्ध जोड़कर ही अपने लक्ष्य-अर्थको जनवाता है; तो उस समय उस शब्दके उस परम्परा-सम्बन्धको शब्दकी **लक्षणा-वृत्ति** अथवा परम्परावृत्ति (सम्बन्ध) कहते हैं। [जैसे शक्ति-वृत्तिको सीधी वृत्ति कह सकते हैं, उसी प्रकार इस लक्षणा-वृत्तिको टेढी वृत्ति भी कह सकते हैं।] इस प्रकार 'आनासागर' शब्द अपने साक्षात् सम्बन्धसे (सीधे सम्बन्धसे) जलको जनवाता है, और परम्परा-सम्बन्धसे (जलके द्वारा सम्बन्ध जोड़कर) किनारेको जनवाता है। तो जिस परम्परा-सम्बन्धसे वह किनारेको जनवाता है, उस परम्परा-सम्बन्ध को कहते हैं 'आनासागर' शब्दका लक्षणा-सम्बन्ध अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लक्षणा-वृत्ति। इसीलिए कहा जाता है कि 'आनासागर' शब्दकी शक्ति-वृत्ति (साक्षात् सम्बन्ध) तो जलमें है, और लक्षणा-वृत्ति (परम्परा सम्बन्ध) किनारेमें है।

शंका :— भगवन् ! यह लक्षणा-वृत्ति कितने प्रकारकी होती है ?

उत्तर :—(१) जहती (२) अजहती (३) जहती-अजहती अथवा भाग-त्याग। इस प्रकारसे तीन लक्षणा-वृत्तियाँ मानी जाती हैं।

(१) **जहती लक्षणा :—** जिस पदमें सम्पूर्ण वाच्य-अर्थ का (शक्य-अर्थका) त्याग करके केवल शक्य-अर्थके सम्बन्धी का ही ग्रहण हो, उस पदमें जहती लक्षणा मानी जाती है। इसको समझानेके लिए पहिले आनासागरपर स्थित बारहदरीका उदाहरण दे दिया है; क्योंकि वहाँ आनासागर शब्दके शक्य-अर्थ जलको छोड़कर केवल उसके सम्बन्धी किनारेका ही ग्रहण किया जाता है। इसलिये 'आनासागर' शब्दकी किनारेमें **जहती लक्षणा** मानी जाती है।

(२) **अजहती लक्षणा :—** जिस पदमें शक्य-अर्थको न छोड़कर उसके साथ सम्बन्धीका भी ग्रहण किया जाय, वहाँ **अजहती लक्षणा** मानी जाती है। जैसे कोई व्यक्ति घोड़ोंकी दौड़ देख रहा था, उसमें एक लाल घोड़ा सब घोड़ोंसे जब आगे दौड़ने लगा तब वह कहने लगा कि "देखो ! लाल सबसे तेज़ जा रहा है।" इस वाक्यमें लाल शब्दके शक्य-अर्थ लाल रंगको न छोड़कर उसके सम्बन्धी घोड़ेका भी ग्रहण किया जाता है। इसलिए लाल शब्दकी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

घोड़ेमें **अजहती लक्षणा-वृत्ति** मानी जाती है।

(३) **भाग-त्याग-लक्षणा** :— जिस वाक्यमें शब्दोंके वाच्य-अर्थके एक भागको छोड़ा जाय और एक भागका ग्रहण किया जाय, वहाँ **भाग-त्याग-लक्षणा** मानी जाती है। जैसे किसीने महात्मा गाँधीजीको देखकर अपने मित्रसे कहा कि "ये वे ही महात्मा गाँधीजी हैं, जिनको मैंने अफ्रीकामें देखा था।" तब मित्रने कहा कि "वह अफ्रीका देश था और यह भारत देश है, वहाँ आपने सूट-कोट इत्यादि पाश्चात्य वेष धारण किये हुए तथा वकालात करते हुए देखा था और यहाँ साधारण खद्दरकी धोती पहिने हुए भाषण देते हुए देख रहे हो। इतना अन्तर होनेके बाद भी ये वे ही महात्माजी कैसे बन सकते हैं?" तब उन्होंने कहा कि "भाई! मैं तो बोलते समय भाग-त्याग-लक्षणा-वृत्तिको ध्यानमें रखता हुआ ही बोल रहा था अर्थात् मेरे शब्दोंमें जो शक्य-अर्थका विरोधी भाग था, जैसे अफ्रीका और भारत, पाश्चात्य वेष और भारतीय वेष, इनपरसे दृष्टि हटाता हुआ केवल महात्मा गाँधीजी (जो दोनों शब्दोंमें समान था) को ही ध्यानमें लाकर बोल रहा था।" इसी प्रकार जिस वाक्यमें विरोधी वाच्य-अर्थको छोड़कर केवल अविरोधी वाच्य-अर्थको ही लिया जाता है वहाँ **भाग-त्याग-लक्षणा** मानी जाती है।

शंका :— भगवन्! इस लक्षणा-वृत्तिको समझानेका प्रयोजन (फल) क्या है?

उत्तर :— हे शिष्य! लक्षणा-वृत्ति तो मैंने तुम्हें इसलिए

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

समझाई है कि तुम चारों वेदोंके चारों महा-वाक्योंका भाग-त्याग-लक्षणा-द्वारा संशोधन (छान-बीन) करके सही अर्थ समझ सको।

शंका :— प्रभो ! कृपा करके चारों वेदोंके चारों महा-वाक्य सुनाइये।

उत्तर :— (१) साम-वेदकी छाँदोग्य उपनिषद्का महा-वाक्य **"तत्त्वमसि"** है।

(२) अथर्व-वेदकी माण्डूक्य उपनिषद्का महा-वाक्य **"अयम् आत्मा ब्रह्म"** है।

(३) यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषद्का महा-वाक्य **"अहं ब्रह्मास्मि"** है। और

(४) ऋग्वेदकी ऐतरेय उपनिषद्का महावाक्य **"प्रज्ञानं ब्रह्म"** है।

हे शिष्य ! इन चारों महावाक्योंके अन्दर भाग-त्याग-लक्षणा करनेके लिए, पहिले इनके अन्दर जो जीव-वाचक और ईश्वर-वाचक शब्द हैं, उनके वाच्य-अर्थ और लक्ष्य-अर्थको जानना पड़ेगा।

शंका :—स्वामीजी ! इन चारों महावाक्योंमें ईश्वर-वाचक शब्द और जीव-वाचक शब्द कौनसे हैं ?

उत्तर :— **"तत् त्वम् असि"** महावाक्यमें 'तत्' शब्द और बाकी तीन महावाक्योंमें 'ब्रह्म' शब्द ईश्वरका वाचक है। जीवके वाचक शब्द चारों वाक्योंमें अलग अलग हैं; जैसे त्वम्, प्रज्ञानम्, अहम् और आत्मा।

शंका :— भगवन् ! जीव और ईश्वरका वाच्य-अर्थ और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्य-अर्थ भी कृपा करके बतलाइये।

उत्तर:—हे शिष्य! वैसे तो जीव और ईश्वरके वाच्य स्वरूपका वर्णन करनेवाले और भी कई वाद हैं, किन्तु मैं तुम्हें प्रधान तीन वाद सुनाता हूँ।

(१) अवच्छेद-वाद (२) प्रतिबिंब-वाद (३) आभास-वाद।

(१) अवच्छेद-वाद:— अवच्छेद-वादके अनुसार शुद्ध-सत्त्वगुण-सहित-मायासे विशिष्ट (मिला हुआ) चेतन, **ईश्वरका वाच्य-स्वरूप (शक्य-अर्थ) कहलाता है;** और मलिन-सत्त्वगुण-सहित जो अन्तःकरणका उपादान-कारण अविद्याका अंश, उससे विशिष्ट चेतन, **जीवका वाच्य स्वरूप (शक्य-अर्थ) कहलाता है।**

(२) प्रतिबिम्ब-वाद:— प्रतिबिंब-वादके अनुसार, अज्ञान में जो चेतनका प्रतिबिंब पड़ता है वह **जीवका वाच्य-स्वरूप है;** और जिस चेतनका अज्ञानमें प्रतिबिंब पड़ता है वह बिंबरूप चेतन **ईश्वरका वाच्य स्वरूप है।**

शंका:— भगवन्! हम देखते हैं कि जैसा बिंब होता है वैसा ही प्रतिबिंब पड़ा करता है। जैसे दर्पणमें जैसा हमारा मुख होता है, वैसा ही प्रतिबिंब पड़ता है; इसी प्रकार अज्ञानरूपी दर्पणमें यदि जीव, ईश्वरका प्रतिबिंब है तो फिर ईश्वरमें सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता इत्यादि धर्म और जीवमें अल्पज्ञता अल्पशक्तिमत्ता इत्यादि धर्म क्यों देखे जाते हैं।

उत्तर:— हे शिष्य! यह तुम्हारा कहना सही है; किन्तु

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कभी कभी यदि दर्पणरूप उपाधिमें हरापन, पीलापन, टेढ़ापन, छोटापन इत्यादि दोष होते हैं तो वे दोष प्रतिबिंबमें भी दीखा करते हैं ; इसी प्रकार यहाँ दर्पणकी जगह जो अज्ञान है उसीमें ही ये अल्पज्ञता इत्यादि दोष हैं जो तुम्हें भ्रांति से प्रतिबिम्बरूप जीवमें दीखते हैं ; तथा जैसे दर्पणके दोष वास्तवमें बिम्बरूप मुखमें नहीं होते, इसी प्रकार अज्ञानके दोष भी वास्तवमें बिम्बरूप ईश्वरमें नहीं हैं।

(३) **आभास-वाद :—**आभास-वादके अनुसार (१) शुद्ध-सत्त्व-गुण-सहित-माया (२) उसका अधिष्ठान सामान्य-चेतन (३) उस चेतनका आया हुआ मायामें आभास (अक्स) ये तीनों मिलकर **ईश्वरका वाच्य स्वरूप** कहलाता है। और (१) अन्तःकरणका उपादान-कारणरूप मलिन-सत्त्वगुण-सहित-अविद्याका अंश (२) उसका अधिष्ठान सामान्य-चेतन (३) उस सामान्य-चेतनका आया हुआ अविद्यामें आभास, ये तीनों मिलकर **जीवका वाच्य स्वरूप** कहलाता है।

ईश्वरकी उपाधि मायामें शुद्ध सत्त्वगुण होनेसे ईश्वरमें सर्व-शक्तिमत्ता, सर्वज्ञतादि धर्म हैं और जीवकी उपाधि अविद्यामें मलिन सत्त्वगुण होनेसे अर्थात् रजोगुण तमोगुणके बढ़ जानेसे, जीवमें अल्प-शक्तिमत्ता व अल्पज्ञतादि धर्म हैं।

शंका :— भगवन् ! लोकमें तो आभास और प्रतिबिम्ब इन दोनों शब्दोंका अर्थ एक [अक्स] ही माना जाता है, फिर विवरण आदि ग्रन्थोंमें प्रतिबिम्ब-वाद और पंचदशी आदि ग्रन्थोंमें आभास-वाद ये अलग-अलग दो वाद क्यों माने जाते हैं ?

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर :— आभास-वाद और प्रतिबिम्ब-वादमें भेद होने के कारण ही दोनोंको भिन्न (अलग) माना जाता है; क्योंकि आभास-वादवाले कहते हैं कि जैसे दर्पणमें जो मुख का आभास (अक्स) पड़ता है, वह गर्दनवाले मुखकी छाया होनेके कारण मिथ्या है, अर्थात् जो दर्पणमें मुख दीखता है वह कल्पित (अनिर्वचनीय) उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अज्ञानमें जो चेतनका आभास (अक्स) पड़ता है वह चेतनकी छाया होनेके कारण मिथ्या है, अर्थात् कल्पित (अनिर्वचनीय) ही उत्पन्न होता है।

किन्तु प्रतिबिम्ब-वादवाले कहते हैं कि दर्पणमें जो मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह मुखकी छाया नहीं हो सकती। यदि छाया होती तो मिथ्या कहते; क्योंकि छायाका यह स्वभाव है कि जिस दिशामें छायावाले पुरुषके मुख और पीठ होते हैं तो छायाका मुख और पीठ भी उसी दिशा में ही हुआ करते हैं; किन्तु दर्पणमें जो मनुष्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है उस प्रतिबिम्बके मुख और पीठ बिम्बरूप मनुष्य के मुख और पीठसे बिल्कुल उल्टे होते हैं। जैसे यदि बिम्बरूप मनुष्यका मुख उत्तर दिशाकी तरफ है तो दर्पण वाले प्रतिबिम्बका मुख दक्षिण दिशाकी तरफ ही दिखाई देता है और यदि बिम्बरूप मनुष्यके दायें हाथका इशारा पूर्वकी तरफ होता है तो प्रतिबिम्बरूप मनुष्यके बाएँ हाथ का इशारा पश्चिमकी तरफ होता है।

इससे सिद्ध होता है कि दर्पणमें हमें जो प्रतिबिम्ब दीखता है वह बिम्बकी छाया नहीं किन्तु बिम्बका विपरीत

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(उलटा) दर्शन ही है; क्योंकि यह नियम है कि जब अन्तःकरणकी वृत्ति आँखके द्वारा बाहर निकलती है, उस समय यदि सामने दर्पण जैसा कोई स्वच्छ पदार्थ होता है तो वह वृत्ति उससे (दर्पणसे) टकराकर उसी समय वापिस लौटकर गर्दनवाले मुखको ही विषय करती है अर्थात् जनवाती है। अतः यह जो हमें एक ही मुख, बिम्बरूप और प्रतिबिम्बरूपसे दीखता है वह केवल दर्पणरूप उपाधिके सम्बन्धसे ही। यदि विचार दृष्टिसे देखें तो बिम्ब-प्रतिवम्ब-भाव वास्तवमें है ही नहीं। इसी प्रकार अज्ञानरूप उपाधिके सम्वन्धसे ही उसी असंग शुद्ध चेतनमें बिबभावकी जगह ईश्वरपन और प्रतिबिम्बभाव की जगह जीवपन प्रतीत होता है किन्तु विचार-दृष्टिसे यदि देखें तो ईश्वर-भाव और जीव-भाव वास्तवमें हैं ही नहीं अर्थात् जैसे दर्पणकी उपाधिको हटानेसे मुखका बिम्बपन और प्रतिबिम्बपन नष्ट हो जाते हैं, अतः मिथ्या हैं। इसी प्रकार अज्ञानकी उपाधिको हटानेसे चेतनके ईश्वरपन और जीवपन भी नष्ट हो जाते हैं, अतः मिथ्या ही हैं। अर्थात् दर्पणरूप अज्ञान (माया) की उपाधिके कारण ही उस शुद्ध चेतनमें ईश्वरपन, जीवपन, सर्वज्ञपन व अल्पज्ञपन इत्यादि विरुद्ध धर्म प्रतीत होते हैं अतः वे मिथ्या हैं। वास्तवमें उस शुद्ध चेतनमें ईश्वरपन, जीवपन, सर्वज्ञपन, अल्पज्ञपन इत्यादि कोई धर्म नहीं है किन्तु स्वरूपकी दृष्टिसे तो बिम्ब और प्रतिबिम्ब सत्य हैं; क्योंकि दृष्टान्तमें प्रतिबिम्बका असली स्वरूप जो बिम्बरूप मुख है, वह दर्पणके हटानेपर भी रह जाता है, इसलिए सत्य है और सिद्धान्तमें प्रतिबिम्बका असली

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्वरूप बिम्बरूप जो चेतन है, वह अज्ञानके हटनेपर भी रह जाता है इसलिए सत्य हैं।

शंका :— भगवन् ! आपके कथनानुसार यह ज्ञात होता है कि प्रतिबिम्ब-वादके मतमें प्रतिबिम्ब, बिंबसे भिन्न नहीं है। यदि ऐसा है तो फिर जीवमें (जो अज्ञानमें ईश्वरका प्रतिबिंब है उसमें) ईश्वरसे अलगपन और ईश्वरके धर्मोंसे विपरीत अल्पज्ञतादि धर्म क्यों दीखते हैं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! ये अल्पज्ञता इत्यादि धर्म तुम्हें अज्ञान की उपाधिसे ही दीखते हैं। जैसे जो दर्पणमें मुख दिखाई देता है वह यद्यपि गर्दनवाले मुखसे अलग नहीं है, किन्तु जो उसमें गर्दनवाले मुखसे अलगपन, उल्टापन और दर्पणमें स्थितपन इत्यादि धर्म प्रतीत होते हैं वे दर्पणकी उपाधिसे ही प्रतीत होते हैं, वास्तवमें नहीं हैं; ठीक इसी प्रकार जो अज्ञानमें जीवरूपसे प्रतिबिंब प्रतीत हो रहा है वह यद्यपि बिंबरूप ईश्वरसे भिन्न नहीं है, किन्तु जो उसमें ईश्वरसे अलगपन उल्टापन (जैसे ईश्वर है सर्वज्ञ तो जीव प्रतीत होता है अल्पज्ञ इत्यादि धर्मोंका उल्टापन) और अज्ञानमें स्थितपन इत्यादि धर्म प्रतीत होते हैं, वे सब अज्ञानकी उपाधि से ही प्रतीत होते हैं, वास्तवमें नहीं हैं अर्थात् वास्तवमें जीव ईश्वरसे भिन्न नहीं है, इसलिए जीव स्वरूपसे सत्य है, मिथ्या नहीं। इस प्रकार प्रतिबिंब-वादमें प्रतिबिंबको स्वरूपसे सत्य होनेके कारण सत्य कहते हैं और आभास-वादमें आभासका स्वरूप छाया होनेके कारण आभासको मिथ्या कहते हैं। यह आभास-वाद और प्रतिबिंब-वादमें भेद है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शंका :— स्वामीजी ! इन वादोंमेंसे मैं किसको सही मानूं ?

उत्तर :— हे शिष्य ! वाद कहते हैं कथनको अर्थात् समझानेके तरीकेको । सो ये सभी वाद (कार्य-कारण-उपाधि-वाद, अवच्छिन्न-अनवच्छिन्न-वाद, दृष्टि-सृष्टि-वाद, अवच्छेद-वाद, प्रतिबिंब-वाद, आभास-वाद इत्यादि सभी वाद) आत्मा के अद्वैतपनेको, सत्यपनेको, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तपनेको ही समझाते हैं। अतः जिस वादसे जिज्ञासुको आत्माका बोध हो जाय, वही उसके लिए ठीक है। किन्तु 'वाक्य-वृत्ति' और 'उपदेश-सहस्री' में भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्य-जीने आभास-वाद ही लिखा है; इसलिए तथा सरल होने के नाते भी आभास-वाद मुख्य माना जाता है।

इस प्रकार तुमने पहिले कहे तीन वादोंके अनुसार जीव (त्वं पद) और ईश्वर (तत् पद) का वाच्य-अर्थ समझा। अब इन दोनोंके सारे वाच्य-अर्थकी यदि आपसमें एकता करें तो बन नहीं सकती; क्योंकि ईश्वर (तत् पद) का जो वाच्य-अर्थ है वह जीवकी तरह प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु परोक्ष है और सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सबका प्रेरक, स्वतन्त्र, मायाका स्वामी और बन्धन तथा मोक्षसे रहित है।

तथा जीव (त्वं पद) का जो वाच्य-अर्थ है, वह अल्पशक्तिमान्, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न (सीमित = हदमें आया हुआ) अनीश (जो प्रेरणा नहीं कर सकता) परतन्त्र (कर्म के आधीन) अविद्यासे मोहित, बन्ध मोक्षवाला और अपरोक्ष

२२

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(प्रत्यक्ष दीखनेवाला; क्योंकि सब अपने आपको प्रत्यक्ष जानते ही हैं) है।

शंका :— स्वामीजी ! ये जो आपने जीव और ईश्वरके वाच्य-अर्थ सुनाए इनमें तो सचमुच बहुत विरोध दीखता है, फिर चारों वेदोंके महावाक्योंमें जीव ईश्वरकी एकता कैसे बताई गई है ?

उत्तर :— हे शिष्य ! जब किन्हीं दो शब्दोंके अर्थोंकी आपसमें एकता करनी होती है और वह एकता यदि वाच्य-अर्थसे नहीं हो सकती तो फिर भाग-त्याग-लक्षणा द्वारा वाच्य-अर्थके विरोधी भागको छोड़कर अविरोधी भाग को ही लिया जाता है। और वह दोनों शब्दोंका अविरोधी भाग ही **लक्ष्य-अर्थ** कहलाता है।

जब महावाक्योंके जीव व ईश्वर-वाचक शब्दोंकी एकता यदि वाच्य-अर्थसे नहीं बनती तब भाग-त्याग-लक्षणा-द्वारा वाच्य-अर्थके जो विरोधी भाग हैं, उनको निकाल देनेसे जैसे अविद्या और अविद्या-कृत अल्पशक्तिमत्ता अल्पज्ञतादिक धर्मों को जीवके वाच्य-अर्थमेंसे, और माया व माया-कृत सर्व-शक्तिमत्ता सर्वज्ञतादि धर्मोंको ईश्वरके वाच्य-अर्थमेंसे निकाल लेनेपर अर्थात् बुद्धिसे अलग समझलेनेपर (मिथ्या समझने पर) जो शेष शुद्ध चेतन भाग रह जाता है, जो जीव और ईश्वर इन दोनों शब्दोंका लक्ष्य-अर्थ है उनकी ही आपसमें एकता हो सकती है।

इसलिए चारों वेदोंके महावाक्योंमें जो जीव और ईश्वरकी एकता बताई गई है वह लक्ष्य-अर्थकी (जीव-साक्षी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और ईश्वर-साक्षी जो कि शुद्ध चेतन है उसकी) दृष्टिसे ही बताई गई है; न कि वाच्य-अर्थकी दृष्टिसे।

शंका :— भगवन्! अब आपकी कृपासे मुझे अच्छी तरहसे समझमें आगया कि जीवका जो असली स्वरूप शुद्ध चेतन है वह ईश्वरके असली स्वरूप शुद्ध चेतनसे भिन्न नहीं। किन्तु प्रभो! जिस प्रकार मुझे अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दीखता है उस प्रकार मुझे ईश्वरके असली स्वरूपका प्रत्यक्ष अनुभव क्यों नहीं होता और जैसे ईश्वरका असली स्वरूप व्यापक है, उस प्रकार मुझे अपना असली स्वरूप भी व्यापक नज़र क्यों नहीं आता?

उत्तर :— हे शिष्य! यह अनुभव तुम्हें इसलिए नहीं हो रहा है कि तुमने तो केवल अब तक सुना ही है, जब इसका तुम मनन व निदिध्यासन करोगे तब तुम्हें अपने व्यापकपनेका अनुभव और ब्रह्मके प्रत्यक्षपनेका अनुभव होने लग जायगा। और मनन करनेकी विधि यानी ओत-प्रोत-भाव अर्थात् अन्वय और व्यतिहारकी विधि मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

ओतप्रोत कहते हैं एक दूसरेको आपसमें मिलाना अर्थात् अपनेको ब्रह्मका स्वरूप समझना और ब्रह्मको अपना स्वरूप समझना। जब तुम विचारोगे कि "मैं ब्रह्म (व्यापक) हूँ अर्थात् सब जगह अस्ति भाति व प्रियरूपसे मैं (शुद्ध चेतन साक्षी) मौजूद हूँ।" इस प्रकार चिन्तन करनेसे तुम्हें जो अपनेमें परिच्छिन्नपनेकी (महदूदपनेकी) भ्रान्ति हो रही है वह नष्ट हो जायगी। और जब यह विचार करोगे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कि "जो सर्वत्र व्यापक शुद्ध चेतन ब्रह्म है वही मैं हूँ, जो यहाँ शरीरकी उपाधिसे साक्षी कहलाता हूं" तो इस प्रकार चिन्तन करनेसे तुम्हें जो ब्रह्मके परोक्षपनेकी भ्रान्ति हो रही है वह नष्ट हो जायगी।

इसी ओत-प्रोत-भावको महावाक्यके शब्दोंमें इस प्रकार कहा जाता है। मैं ब्रह्म हूँ :— "अहं ब्रह्म।" "प्रज्ञानं ब्रह्म।" "आत्मा ब्रह्म।" और "त्वं तत्।" ब्रह्म मैं हूं :— "ब्रह्म अहम्।" "ब्रह्म प्रज्ञानम्।" "ब्रह्म आत्मा।" और "तत् त्वम्।"

हे शिष्य ! जब इस प्रकार सपनेमें अगृधदेवको गुरुने उपदेश दिया तब वह अगृधदेव सपनेवाले उस गुरुजीको कहने लगा कि "भगवन् ! आपने मेरे ऊपर अत्यन्त कृपा करके मेरे असली स्वरूपका मुझे बोध कराया है तथा महावाक्य-द्वारा मेरे असली स्वरूपकी (आत्माकी) और ब्रह्मकी एकता भी समझाई किन्तु फिर भी मैं अपने आपको अब तक इन वनके दुःखोंसे मुक्त नहीं समझ रहा हूं। वेद कहता है कि "तरति शोकम् आत्मवित्" अर्थात् आत्मज्ञानी ही शोकके पार हो जाता है। किन्तु मुझे अब तक हर्ष शोक हो रहे हैं, इसलिए मैं समझता हूँ कि मुझे अब तक पूरा दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्म-ज्ञान नहीं हुआ है। इस लिए कृपा करके और भी कोई साधन हो तो बताइये।

तब गुरुजी कहने लगे कि "हे शिष्य ! आत्म-ज्ञानका साधन तो महावाक्यका श्रवण है। वे महावाक्य तुमने सुन लिये हैं। इससे और दूसरा कोई आत्म-ज्ञानका साधन नहीं

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। इसलिए जो मैंने तुम्हें अभी महावाक्यके जीव और ईश्वरके वाचक शब्दोंका भाग-त्याग-लक्षणा-वृत्ति-द्वारा संशोधन करके अर्थात् विरोधी भागको हटाकर अविरोधी शुद्ध-चेतन-भागकी एकता समझाई है, उस एकताका बार बार ओत-प्रोत-भावसे चिन्तन करते रहो। यह चिन्तन करते करते तुम्हें अपने आप अपने स्वरूपका प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा। जैसे पुष्कर पहुंचनेकी इच्छावाला जब पुष्करके रास्तेपर चलने लग जाता है तो चलते चलते पुष्कर अपने आप ही पहुंच जाता है। कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। हाँ धैर्य तो अवश्य चाहिए ही।

इसलिये अब तू महावाक्यके अर्थको ध्यानमें रखते हुए "मैं अगृध (इच्छा-रहित आत्मा अर्थात् शुद्ध चेतन) हूँ" "मैं अगृध हूँ" इस प्रकार कहते रहो और इस प्रकार बार बार कहते कहते अपने असली स्वरूपमें तल्लीन हो जाओ।

हे शिष्य ! अगृधदेव यह सुनकर बड़ी श्रद्धा और उत्साहसे अपने स्वरूपके चिन्तनका अभ्यास करने लगा। यों अभ्यास करते करते ज्यों ही उसको अपने स्वरूपका दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान हुआ उसी समय उसका सपना टूट पड़ा। और सपनेवाले वनके सभी दुःखोंसे मुक्त हो गया। मुक्त तो वह पहिले ही था किन्तु नींदके दोषसे जो उन दुःखोंको सच्चा समझकर अपनेमें मान रहा था, वह मानना अर्थात् वह भ्रान्ति टूट गई। और इस प्रकार भ्रान्तिके टूटनेको ही मोक्ष कहते हैं।

तो हे शिष्य ! जिस प्रकार अगृधदेववाले मिथ्या वनकी निवृत्ति मिथ्या गुरुके उपदेशसे हो गई, ठीक इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस मिथ्या संसारकी निवृत्ति भी मिथ्या वेद और गुरुके उपदेशसे ही हो जायगी ।

इस प्रकारका उपदेश सुनकर अर्थात् महावाक्यके लक्ष्य अर्थको समझकर उसका मनन व निदिध्यासन करनेसे तर्कदृष्टि नामक छोटे भाई कनिष्ठ अधिकारीको आत्मज्ञान हो गया अर्थात् अपने स्वरूपको ब्रह्मरूपसे जान लिया ।

इति श्रीविचारसागरदर्पणे गुरुवेदादिसाधनमिथ्या-
वर्णनं नाम षष्ठस्तरंगः समाप्तः ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ॐ

* सप्तमस्तरंगः *

* अथ जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति-वर्णनम् *

इस प्रकार गुरुने तीनों राजकुमारोंको साथ ही उपदेश किया, तो भी साक्षात्कार केवल उत्तमाधिकारी तत्त्वदृष्टिको ही हुआ। साक्षात्कार होनेके बाद जैसे सूका पीपलका पत्ता वायुके आधीन अर्थात् जैसी वायु लगे उसके अनुसार भ्रमण करता रहता है वैसे वह (तत्त्वदृष्टि) प्रारब्ध-कर्मानुसार व्यवहार करता हुआ भ्रमण करने लगा।

क्योंकि ज्ञानीके संचित कर्म (पहिले जन्मोंमें किये हुए फलारम्भ-रहित कर्म अर्थात् जिनका फल अब तक नहीं मिला है वे कर्म) तो ज्ञानरूप अग्निसे जलकर नष्ट हो जाते हैं। भगवान्ने भी गीताके (४) अध्यायके ३७वें श्लोकमें कहा है कि **"ज्ञानाग्निः सर्व-कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा"** अर्थात् ज्ञानरूप अग्नि सब कर्मोंको भस्मकर देती है। और आगामी कर्म (ज्ञानके बाद होनेवाले कर्म)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ज्ञानीको आत्मामें कर्तृत्व-भ्रान्ति न होनेसे निर्बीज होनेके कारण फल नहीं देते। किन्तु प्रारब्ध-कर्म (पहिले जन्मोंमें किये हुए वर्तमान शरीरके कारणरूप कर्म अर्थात् जिनका फल इस वर्तमान शरीरमें मिल रहा है वे कर्म) तो छूटे हुए तीर की तरह अपना भोग पूरा करके ही शान्त होते हैं; इसलिए ज्ञानवान्को प्रारब्ध-कर्मोंका फल तो भोगना ही पड़ता है।

'अपरोक्षानुभूति' व 'विवेकचूडामणि' आदि ग्रन्थोंमें आया है कि "संचित और आगामी कर्मोंकी तरह प्रारब्धकर्म भी ज्ञानीके नहीं रहते" उसका अभिप्राय यह है कि, **ज्ञानीकी दृष्टिसे, कर्म और उसके फलका सम्बन्ध आत्मामें नहीं है;** किन्तु ज्ञानवान्के शरीरको तो प्रारब्ध-कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता ही है।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि :— कर्म नाना प्रकारके होते हैं। कुछ कर्म ऐसे हैं कि जिनका भोग बहुत जन्मोंतक भी चलता है। अब मानलो किसी मनुष्यका ऐसा प्रारब्ध-कर्म फल दे रहा है कि जो आगे तीन जन्मोंमें जाकर समाप्त होगा और उस व्यक्तिने वेदान्तके श्रवण-मनन-आदि साधनों-द्वारा आत्म-ज्ञान इसी जन्ममें ही प्राप्त कर लिया है। अब उसे तीन जन्म आगे लेने पड़ेंगे अथवा उसके शेष प्रारब्ध कर्म नष्ट हो जायेंगे।

इसका समाधान यह है कि :— वेद कहता है कि "**न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते**" (अथर्ववेद० श्रीनृसिंहोत्तर तापनी उपनिषद्) अर्थात्—"[देहान्त होनेपर] उस ज्ञानीके प्राण [अन्यलोकमें वा इस लोकके अन्यशरीरमें]

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गमन नहीं करते [किन्तु] यहीं [अन्तःकरण व इन्द्रिय-सहित] लीन हो जाते हैं।" और प्राण-गमनके बिना अन्य शरीरकी प्राप्ति हो नहीं सकती, इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानवान्के दूसरे जन्म तो होते ही नहीं हैं। और यह भी नियम है कि प्रारब्ध, बिना फल दिए हुए नष्ट होता नहीं; इसलिए यह मानना पड़ेगा कि जिसका अनेक शरीरोंका आरम्भ करनेवाला प्रारब्ध, जो कि ज्ञानका प्रतिबन्धक है–[जैसे (१) विषयोंमें आसक्ति (२) बुद्धिकी मन्दता (३) भेदवादियोंके वचनोंमें विश्वास; ये तीनों ज्ञानके प्रतिबन्धक (रुकावट डालनेवाले) हैं, उसी प्रकार जन्माँतरका हेतु **प्रारब्ध-शेष** भी ज्ञानका प्रतिबन्धक है] शेष रहता है, उसको तो वेदान्तका श्रवण आदि करनेसे भी ज्ञान नहीं होता; और **जब वह प्रतिबन्धक प्रारब्ध समाप्त हो जाता है तब पहिले जन्मोंमें किये हुए श्रवणादिकों से उसे अन्तिम जन्ममें ज्ञान हो जाता है**। जैसे वामदेवके एक जन्म दिलानेवाले प्रारब्धके शेष रहनेपर, वेदान्तके श्रवणादि करनेपर भी उसे ज्ञान नहीं हुआ और दूसरे जन्ममें उसे गर्भमें ही ज्ञान हो गया। तथा जैसे जड़भरत राजाको ज्ञानकी साधन-सामग्री होते हुए भी तीसरे जन्ममें जाकर पूर्वजन्मोंमें किये हुए श्रवणादिक-साधनोंसे ज्ञान हुआ था।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि:— ज्ञानीके व्यवहारमें और किसी कर्मका तो नियम नहीं, परन्तु **निवृत्तिका** तो नियम है ही। यदि प्रवृत्ति हो तो केवल शरीर स्थितिके लिये भिक्षा-भोजन व कौपीन-आच्छादन (लंगोटी-धारण) मात्रमें ही होनी चाहिये; क्योंकि ज्ञानकी उत्पत्तिसे पहिले जिज्ञासु अवस्थामें

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विषयोंमें दोष-दृष्टिसे वैराग्य होता है। वह वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिके बाद भी विषयोंमें दोष-दृष्टि व मिथ्यात्व-बुद्धिसे कायम रहता है। अतः संसारमें सुख-बुद्धि व सत्यत्व-बुद्धिके न होनेसे, रागके न होनेके कारण, ज्ञानीकी साँसारिक व्यवहारोंमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। शरीर-निर्वाहके लिए भोजनादिकमें प्रवृत्ति तो रागके बिना, प्रारब्ध कर्मसे ही हो जाती है। और चंचल मनको कहीं न कहीं लगानेके लिए भी ज्ञानीको किसी प्रवृत्तिकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि ज्ञानी समाधिमें स्थित हुआ करता है और समाधिसे मन वशमें हो जाता है। अतः सदा **आत्म-स्वरूपमें स्थित रहनेके कारण** ज्ञानीकी साँसारिक व्यवहारोंमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

जिस समाधिसे मनपर विजय प्राप्त होता है वह समाधि इन आठ अंगोंसे होती है :— (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) सविकल्प-समाधि।

यम :— यम पाँच होते हैं। जैसे :— (१) अहिंसा अर्थात् किसीको मन, वाणी व शरीरसे दुःखी न करना (२) सत्य (३) अस्तेय अर्थात् चोरी न करना (४) ब्रह्मचर्य* और

---

*स्मरणं कीर्तनं केलिः-प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया-निष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्ठांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

अर्थात्—(१) स्त्रीका चिन्तन व स्मरण (याद) करना *

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(५) अपरिग्रह अर्थात् अनावश्यक संग्रह न करना।

नियम :— नियम पाँच होते हैं। जैसे :— (१) शौच अर्थात् शरीर व मनको स्वच्छ रखना (२) संतोष (३) तप (४) स्वाध्याय अर्थात् वेदादि शास्त्रोंका पठन व मनन करना। (५) ईश्वर-प्रणिधान अर्थात् ईश्वरकी तरफ मनको लगाना।

आसन :— आसन कई प्रकारके होते हैं। उनमेंसे (८४) चौरासी आसन योगग्रन्थमें लिखे हैं। उसमेंसे भी (१) सिंह (२) भद्र (३) पद्म (४) सिद्ध ये चार आसन प्रधान हैं। उन चारोंमें भी **सिद्ध आसन** अधिक प्रधान है; क्योंकि कुछ आसन तो रोग नष्ट करनेके लिये किये जाते हैं और कुछ आसन प्राणायामादिक समाधिके अंगोंमें सहायक पड़ते हैं किन्तु सिद्ध आसन समाधिके समय लगाया जाता है; इसलिए अतिप्रधान है। इसीको **वज्रासन, मुक्तासन व गुप्तासन** भी कहते हैं।

प्राणायाम :— प्राणायाम अनेक प्रकारके होते हैं। जब प्राणको नाकसे अन्दर लिया जाता है तो उसे पूरक कहते हैं

*(२) शृङ्गारपूर्ण गायनादिकों-द्वारा स्त्रीके रूपादिकोंका वर्णन करना (३) स्त्रियोंके साथ खेल खेलना (४) किसीकी ओर पाप-दृष्टि वा चोर दृष्टिसे देखना (५) स्त्रियोंसे एकान्तमें व वैषयिक वार्तालाप करना (६) काम-इच्छाको उत्पन्न करनेवाली कल्पनाओंमें निमग्न रहना (७) किसी अप्राप्य स्त्री आदिकी प्राप्तिके लिये व्यर्थ पाप-पूर्ण प्रयत्न करना और (८) प्रत्यक्ष संभोग, ये अष्ट (आठ) मैथुन कहलाते हैं। इन लक्षणोंके बिलकुल विरुद्ध लक्षण **अखण्ड ब्रह्मचर्यके** होते हैं। यहाँ ब्रह्मचर्य शब्दसे, अखण्ड ब्रह्मचर्य व गृहस्थमें ब्रह्मचर्य इन दोनों अर्थोंका ग्रहण है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और बाहर निकालनेको रेचक तथा अन्दर वा बाहर रोकनेको कुम्भक कहते हैं। [ध्यान रहे–रेचकमें पूरकसे अन्दाज़न दुगुना समय लगना चाहिये। और कुम्भक उतना करना चाहिये कि जो पूरक व रेचकमें शीघ्रता व असुविधा न हो। गुरुद्वारा विधि सीखकर ही प्राणायाम करना हितकर होगा।]

इस प्रकार पूरक, रेचक व कुम्भक-द्वारा प्राणोंको लम्बा करने व नियममें चलानेको **प्राणायाम** कहा जाता है। वह प्राणायाम प्रधानतया दो प्रकारका होता है। (१) अगर्भ (२) सगर्भ।

(१) प्रणव (ओम्) के उच्चारण-रहित प्राणायाम **अगर्भ** कहलाता है। (२) प्रणवके उच्चारण-सहित प्राणायाम **सगर्भ** कहलाता है।

प्रत्याहार :— विषयोंसे सभी इन्द्रियोंके निरोध (रोकने) को **प्रत्याहार** कहते हैं।

धारणा :— अंतराय-सहित अन्त:करणकी स्थिति धारणा कहलाती है अर्थात् अपने इष्टमें अन्तःकरणकी वृत्तिके बार बार लगानेको **धारणा** कहते हैं। [इष्ट अर्थात् जिसका ध्यान किया जाय; वह यहाँ है अद्वितीय आत्मा (शुद्ध चेतन)।]

ध्यान :— अंतराय-रहित अद्वितीय वस्तुमें अन्तःकरणका प्रवाह ध्यान कहलाता है अर्थात् उस इष्ट (अद्वितीय ब्रह्म) में अन्त:करणके अखण्ड प्रवाहको (वृत्तिके न टूटनेको) **ध्यान** कहते हैं।

समाधि :— व्युत्थान-संस्कारोंका तिरस्कार और निरोध-संस्कारोंकी प्रगटता होनेपर जो अन्तःकरणका एकाग्रतारूप

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

परिणाम होता है उसे **समाधि** कहा जाता है। [नाम-रूपात्मक अनात्माकार वृत्तियोंके आरम्भक संस्कार **व्युत्थान-संस्कार** कहलाते हैं। और निरोध-अवस्थाके आरम्भक संस्कारों वा व्युत्थान-संस्कारोंको रोकनेवाले संस्कारोंको **निरोध-संस्कार** कहते हैं।

वह समाधि दो प्रकारकी है :— (१) सविकल्प-समाधि (२) निर्विकल्प-समाधि।

सविकल्प-समाधि :— ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय-रूप त्रिपुटीकी प्रतीतिके रहते हुए, अद्वितीय ब्रह्ममें अन्तःकरणकी वृत्तिकी स्थितिको **सविकल्प-समाधि** कहते हैं।

वह सविकल्प-समाधि फिर दो प्रकारकी है :—(१) **शब्दानुविद्ध** अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' शब्द-सहित, (२) **शब्दाननुविद्ध** अर्थात् शब्द-रहित।

निर्विकल्प-समाधि :— त्रिपुटीके भान (प्रतीति) से रहित अखण्ड-ब्रह्माकार अन्तःकरण-वृत्तिकी स्थितिको **निर्विकल्प-समाधि** कहते हैं।

पञ्चदशीकार श्रीविद्यारण्य स्वामीजीने इस निर्विकल्प-समाधिका वर्णन करते हुए कहा है कि :—

ध्यातृ-ध्याने परित्यज्य क्रमाद् ध्येयैक-गोचरम्।
निवात-दीप-वच्चित्तं समाधिरभिधीयते॥

अर्थात् 'निदिध्यासन' (ध्यान) में तो 'ध्याता' 'ध्यान' तथा 'ध्येय' ये तीनों ही प्रतीत होते रहते हैं; परन्तु जब अभ्यासके प्रभावसे वही चित्त क्रमसे 'ध्याता' और 'ध्यान' को छोड़कर, केवल 'ध्येय' (आत्मस्वरूप ब्रह्म)

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

को ही विषय कर लेता है और वायु-रहित प्रदेशमें रखे हुए दीपकके प्रकाश (लौ) के समान निश्चल हो जाता है, तब वह अवस्था **निर्विकल्प-समाधि** कहलाती है। निर्विकल्प-समाधि का सविकल्प-समाधि साधन है और निर्विकल्प-समाधि फल है।

साधनरूप जो सविकल्प-समाधि है, उसमें यद्यपि त्रिपुटी-रूप द्वैत प्रतीत होता है, तो भी वह द्वैत इस प्रकार ब्रह्मरूपसे प्रतीत होता है जैसे विवेकियोंको मिट्टीके विकार घटादिकोंमें केवल मिट्टीकी ही प्रतीति होती है अर्थात् उन्हें यद्यपि मिट्टीके विकार घड़ा आदि प्रतीत होते हैं तथापि वे सब मिट्टीरूप ही प्रतीत होते हैं अथवा जैसे सर्राफको सब सोनेके जेवर सोनारूपसे ही प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार समाधिमें त्रिपुटीरूप द्वैत, ब्रह्मरूप ही प्रतीत होता है।

निर्विकल्प-समाधिमें भी सविकल्प-समाधिकी तरह त्रिपुटी-रूप द्वैत विद्यमान तो रहता है किन्तु उसकी प्रतीति नहीं होती; जैसे जलमें पड़ा हुआ नमक, विद्यमान होते हुए भी प्रतीति नहीं होता। इस प्रकार सविकल्प-समाधि व निर्विकल्प-समाधिका यह भेद सिद्ध हुआ कि :—

(१) **सविकल्प-समाधिमें** ब्रह्मरूप होकर द्वैतकी प्रतीति होती है और (२) **निर्विकल्प-समाधिमें** त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति होती है।

निर्विकल्प-समाधि व सुषुप्तिमें भेद यह है कि :— निर्विकल्प-समाधिमें ब्रह्माकार वृत्ति तो अन्तःकरणकी होती है किन्तु उसका भान नहीं होता और सुषुप्तिमें अन्तःकरण की ब्रह्माकार वृत्ति नहीं होती; क्योंकि वहाँ सुषुप्तिमें वृत्ति-

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सहित अन्तःकरण ही नहीं होता ।

निर्विकल्प-समाधिमें अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति होती है, उसका कारण **सविकल्प-समाधिका अभ्यास** है; इसीलिए साधनरूप आठ अंगोंमें सविकल्प-समाधिको भी एक अंग माना गया है। इन आठों अंगोंका फल **निर्विकल्प-समाधि** है।

वह निर्विकल्प-समाधि भी दो प्रकारकी है :— (१) अद्वैतभावनारूप (२) अद्वैतावस्थानरूप ।

अद्वैत-भावनारूप :— जिस समाधिमें अद्वैतब्रह्माकार अन्तःकरणकी अज्ञात वृत्ति रहे वह **अद्वैत-भावनारूप निर्विकल्प-समाधि** कहलाती है ।

अद्वैताऽवस्थानरूप :— जिस समाधिमें अधिक अभ्यासके कारण ब्रह्माकार वृत्ति भी शान्त हो जाय, उस वृत्ति-रहित समाधिको **अद्वैताऽवस्थानरूप निर्विकल्प-समाधि** कहते हैं ।

जैसे तप्त लोहेपर गिरी हुई जलकी बूंदका उस तप्त लोहेमें ही प्रवेश (लय) हो जाता है, उसी प्रकार अद्वैत-भावनारूप समाधिके दृढ़ अभ्याससे अत्यन्त प्रकाशमान ब्रह्ममें वृत्तिका लय हो जाता है ।

वह अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्प-समाधि **फल** है और अद्वैतभावनारूप निर्विकल्प-समाधि उसका **साधन** है। उस अद्वैतावस्थानरूप समाधि और सुषुप्ति अवस्थामें भेद यह है कि :—

सुषुप्तिमें वृत्तिका लय अज्ञानमें होता है और अद्वैतावस्थान-समाधिमें वृत्तिका लय ब्रह्म-प्रकाशमें होता है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

[वैसे तो कार्यका लय सदा कारणमें ही होता है इस नियमानुसार अद्वैतावस्थान-समाधिमें वृत्तिका लय तो अपने उपादान-कारण सत्त्वगुणमें ही होता है किन्तु ब्रह्मप्रकाशके भानरूप निमित्तसे वृत्तिका लय होता है इसलिए उपचार से ब्रह्मप्रकाशमें लय कहा है; जैसे—अग्निसे तपे हुए लोहे पर गिरी हुई जलकी बूँदका लय होता तो अग्निमें ही है परन्तु उसका औपचारिक प्रयोग (कथन) तप्त लोहेमें किया जाता है।]

और सुषुप्तिका आनन्द अज्ञानसे ढका हुआ होता है किन्तु अद्वैतावस्थान-समाधिमें ब्रह्मानन्दका भान निरावरणरूप से अर्थात् बिना किसी पर्देके, स्पष्टरूपसे होता है।

निर्विकल्प-समाधिमें चार विघ्न होते हैं। जिनको हटानें के लिए उनका वर्णन किया जाता है:—(१) लय (२) विक्षेप (३) कषाय और (४) रसास्वाद।

लय :— आलस्य अथवा निद्राके कारण होनेवाले वृत्तिके अभावको **लय** कहते हैं। यह अवस्था सुषुप्तिके समान होती है और उस समय ब्रह्मानन्दका भान नहीं होता। इस लिए योगीको उस समय सावधान होकर, निद्रादिकोंको रोककर वृत्तिको जगाना चाहिये। इस प्रकार वृत्तिके जगानें के अभ्यासको श्रीगौडपादाचार्यजीने **चित्त-संबोधन** कहा है।

(२) **विक्षेप** :— जैसे बाज वा बिल्लीसे डरकर चटिका (चिड़िया) जब घरमें प्रविष्ट होकर घोंसलेकी तरफ दौड़ती है और भयके कारण उसे घोंसला नहीं मिलता तब वह फिर बाहर निकलकर, अपने शत्रुको देखकर और अधिक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भयभीत होती है अथवा कभी शत्रुके हाथसे मृत्यु को भी प्राप्त हो जाती है; उसी प्रकार अनात्म-पदार्थोंको दुःखरूप समझकर अद्वैतानन्दको प्राप्त करनेके लिए वृत्ति अन्तर्मुख होती तो है किन्तु कुछ समय तककी स्थितिके बिना तत्काल ही अत्यन्त सूक्ष्म चेतन-स्वरूप आनन्दको प्राप्त न करनेके कारण वह बहिर्मुख हो जाती है। इस प्रकार वृत्तिके बहिर्मुख होनेको **विक्षेप** कहते हैं।

और वृत्तिकी स्थिरताके बिना स्वरूपानन्दकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये अन्तर्मुख वृत्ति होनेपर भी जब तक वृत्ति ब्रह्माकार न हो तब तक योगी बाह्य पदार्थोंमें दोष-भावना रखता हुआ वृत्तिको बहिर्मुख होने नहीं दे, किन्तु अन्तर्मुख रखनेका ही प्रयत्न करे। इस प्रकारके विक्षेपरूप विघ्नके विरोधी योगीके प्रयत्नको श्रीगौडपादाचार्यजीने **सम** कहा है।

(३) **कषाय**:— रागादि दोषोंको **कषाय** कहते हैं। अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि:—

योगदर्शनमें चित्तकी पाँच भूमिकाएँ (अवस्थाएँ) बतलाई हैं। (१) क्षेप (२) मूढता (३) विक्षेप (४) एकाग्रता और (५) निरोध।

क्षेप :— लोक-वासना, [कोई भी मेरी निन्दा न करे किन्तु सभी मेरी स्तुति ही करें, इस आग्रहके दृढ़ संस्कार] **देह-वासना,** ['स्थूल शरीरके रोगादिकोंको औषध आदि द्वारा व सूक्ष्म शरीरके पापोंको तीर्थाटन आदि द्वारा नष्ट करके, स्थूल शरीर में सुन्दरता-पुष्टि-आदिरूप तथा सूक्ष्म शरीरमें पुण्यरूप गुणों का संपादन करूँगा' इस आग्रहके दृढ़-संस्कार] **शास्त्र-वासना,**

२३

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

[शास्त्र-वासना चार प्रकारकी है (१) पाठ-वासना (पाठ अधिक और जल्दी पढ़लूँ) (२) अर्थ-वासना (सभी शास्त्रों के अर्थको अच्छी तरह समझ जाऊँ और दूसरोंको समझालूँ) (३) अनुष्ठान-वासना (वेद-शास्त्रोंके मन्त्रोंको जप-द्वारा सिद्ध करके, मन्त्र-सिद्धि चलाऊँ) (४) वाणी-वासना (मधुर वाणीमें कविता आदि बनाकर बहुत सारे ग्रन्थ बनालूँ) इस आग्रहके दृढ़-संस्कार] इत्यादि रजोगुणके परिणामरूप जो दृढ़ अनात्म-वासनाएँ हैं, उन्हें क्षेप कहते हैं।

(२) **मूढता** :— निद्रा आलस्य आदि तमोगुणके परिणामों को **मूढता** कहते हैं।

(३) **विक्षेप** :— ध्यानमें लगे हुए चित्तके बहिर्मुख होने को **विक्षेप** कहते हैं।

(४) **एकाग्रता** :— अन्तःकरणके अतीत व वर्तमान परिणामों (वृत्तियों) के समानाकार होनेको अर्थात् जब अन्तःकरणकी सभी वृत्तियाँ एक ब्रह्माकार होने लग जायँ, उस अवस्थाको **एकाग्रता** कहते हैं।

(५) **निरोध** :— उस एकाग्रताकी वृद्धिको निरोध कहते हैं।

इन पाँच भूमिकाओं सहित अन्तःकरणके क्रमसे ये पाँच नाम हैं :—(१) क्षिप्त (२) मूढ (३) विक्षिप्त (४) एकाग्र और (५) निरुद्ध। उनमें क्षिप्त और मूढ अन्तःकरणका तो समाधिमें अधिकार नहीं है किन्तु विक्षिप्त अन्तःकरणका अधिकार है; और एकाग्र व निरुद्ध अन्तःकरण तो समाधिके समय रहते ही हैं।

इस प्रकार योग-दर्शनके कथनानुसार रजोगुणके परिणाम

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दृढ़ अनात्म-वासनाएँ अर्थात् रागादिक-दोषरूप क्षेप (कषाय) जब अन्तःकरणमें हो तब उस क्षिप्त अन्तःकरणका तो समाधिमें अधिकार ही नहीं है, फिर रागादिदोषरूप कषाय को समाधिका विघ्न कैसे कहा जा सकता है ? क्योंकि जैसे जिस पुरुषको राजाके पास जानेका अधिकार हो, उसके लिये तो यह कहा जा सकता है कि द्वारपालने उसके जानेमें विघ्न डाला; किन्तु जिसको वहाँ जानेका अधिकार ही नहीं है, उसके लिए द्वारपाल विघ्नरूप कैसे बन सकता है ? ठीक इसी प्रकार क्षिप्त (रागादि-दोष-सहित) अन्तःकरण का यदि समाधिमें अधिकार होता तो उसके लिए समाधिमें रागादिदोषरूप कषाय विघ्न बन सकते, किन्तु जब क्षिप्त (रागादि-दोष-सहित) अन्तःकरणका समाधिमें अधिकार ही नहीं है, तो फिर उसके लिए रागादि-दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न कैसे बन सकते हैं।

इसका उत्तर यह है कि— रागादिदोष तीन प्रकारके हैं। (१) उद्युक्त (२) आशारूप और (३) वासनारूप।

(१) **उद्युक्त** :— बाह्य-प्रवृत्तिके हेतु स्त्री पुत्र धन आदि जिनके विषय वर्तमान हों वे **उद्युक्त** अथवा **बाह्य** रागादि कहलाते हैं।

(२) **आशारूप** :— भूत अथवा भावीका चिन्तनरूप जो मनोराज्य है उसे **आशारूप** अथवा **आन्तर** रागादि कहते हैं।

(३) **वासनारूप** :— जन्मांतरोंमें पूर्व अनुभव किये हुए जो रागादि हैं उनके संस्कार **वासनारूप** रागादिक कहलाते हैं।

इन तीन प्रकारके रागादिक दोषोंमेंसे पहिलेके दो

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रागादिक दोष (उद्युक्त व आशारूप) क्षेप कहलाते हैं और अन्तिम तीसरा वासनारूप रागादि दोष **कषाय** कहलाता है।

इसलिए न तो क्षिप्त अन्तःकरणका समाधिमें अधिकार है और नहीं क्षेप (उद्युक्त व आशारूप रागादि दोषों) को समाधिका विघ्न ही माना जाता है, किन्तु वासनारूप रागादि दोष (कषाय) तो विक्षिप्त आदि अन्तःकरण में भी रहते हैं, क्योंकि जब तक अन्तःकरण रहता है तब तक रागद्वेष आदिकोंके सूक्ष्म संस्कार (कषाय) तो रहते ही हैं; परन्तु उन वासनारूप रागद्वेषादिकोंमें भी उद्भूत (प्रकट) संस्कार समाधिके विरोधी हैं, न कि अनुद्भूत (अप्रकट) संस्कार।

विक्षेप और कषायमें यह भेद है :— बाह्य-विषयाकार वृत्तिको **विक्षेप** कहते हैं, और योगीकें प्रयत्नसे वृत्ति, अन्तर्मुख होनेपर भी जिन रागादिकोंके उद्भूत संस्कारोंसे रुक जाय अर्थात् ब्रह्मको विषय न कर सके, उन्हें **कषाय** कहते हैं।

अतः समाधिमें प्रवृत्त योगीको यदि राग-द्वेषादिकोंके संस्कारोंकी प्रकटता हो तो उसी समय विषयोंमें दोष-दृष्टि करके दबा देना चाहिये।

(४) **रसास्वाद** :— जैसे भार उठानेवाले पुरुषका जब भार उतर जाता है तो उस समय उस भार उठानेसे होने वाले दुःखकी निवृत्तिसे भी उसे एक आनन्द प्रतीत होता है, उसी प्रकार योगीको समाधिमें विक्षेपसे होनेवाले दुःखकी निवृत्तिसे जो आनन्दका अनुभव होता है उसे **रसास्वाद** कहते हैं।

यदि दुःखकी निवृत्तिमात्रसे होनेवाले उस आनन्दके अनुभवसे ही योगी संतोष कर लेगा तो सकल-उपाधि-रहित

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मानन्दाकार वृत्तिके अभावसे उसे समाधिमें ब्रह्मानन्दका अनुभव नहीं हो सकता; इसलिये दुःखकी निवृत्तिसे होने वाले आनन्दका अनुभवरूप रसास्वाद भी समाधिमें विघ्न है।

जिस वस्तुकी इच्छा हो उसकी प्राप्तिके बिना विरोधी की निवृत्तिसे भी आनन्दकी उत्पत्ति होती है; इस विषय में दूसरा दृष्टान्त :— जैसे पृथिवीमें कहीं कोई ऐसा निधि (खज़ाना) हो जिसपर कोई बड़ा विषधर सर्प रहता हो, तो उस निधि (ख़ज़ाने) की प्राप्तिसे पहिले, निधि-प्राप्ति के विरोधी सर्पकी निवृत्तिसे भी एक आनन्द प्राप्त होता है। अब उस सर्प-निवृत्तिके आनन्दमें ही यदि संतोष किया जाय तो उद्यम त्यागनेसे निधि-प्राप्तिका परमानन्द प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार अद्वैत-ब्रह्म-रूप निधि (खज़ाना) है। शरीरादि अनात्म-पदार्थोंकी प्रतीतिरूप विक्षेप सर्प है। विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिमात्रसे उत्पन्न होनेवाले आनन्दरूपी रसका आस्वादन (अनुभव) निधिरूपी अद्वैत-ब्रह्मकी प्राप्ति से उत्पन्न होनेवाले महान् आनन्दकी प्राप्तिका प्रतिबन्धक (रुकावट डालनेवाला) होनेके कारण विघ्न कहलाता है।

सविकल्प समाधिके आनन्दको भी रसास्वाद कहते हैं; क्योंकि सविकल्प समाधिके सोपाधिक (त्रिपुटीरूप-उपाधि-सहित) आनन्दमें भी संतोषकर लेनेसे निर्विकल्प-समाधिका महान् आनन्द प्राप्त नहीं होता।

अतः विक्षेपकी निवृत्तिसे उत्पन्न होनेवाला आनन्दका अनुभव और सविकल्प-समाधिके आनन्दका अनुभव इन दोनों विघ्नरूपी रसास्वादोंको त्यागना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार निर्विकल्प-समाधिके आरम्भमें ये चार विघ्न होते हैं। जो विद्वान् सावधान होकर इन चारों विघ्नोंको रोककर निर्विकल्प-समाधिमें परमानन्दका अनुभव करता है उसीको **जीवन्मुक्त** कहते हैं।

इस प्रकार ज्ञानीका मन बाहर साँसारिक व्यवहारोंमें कहीं नहीं जा सकता; क्योंकि समाधिके समय तो मन सत्त्वगुणमें लीन रहता है और जब प्रारब्ध-वशात् समाधि टूटती है, तो भी समाधिमें अनुभव किये हुए परमानन्दकी स्मृति (याद) रहती ही है; इसलिए उस समय भी ज्ञानी का मन कहीं और जगह नहीं जाता। ज्ञानवान्की जो भोजनादिमें प्रवृत्ति होती है वह केवल प्रारब्ध-वशात् ही होती है। परन्तु भोजनादि-व्यवहारमें भी ज्ञानी खेद (दुःख) मानकर प्रवृत्त होता है; क्योंकि भोजनादिमें प्रवृत्ति भी समाधिके सुखकी विरोधी है। अतः जिसे भोजनादिक शरीर-निर्वाहकी प्रवृत्ति भी दुःखरूप प्रतीत होती है उसकी अधिक प्रवृत्ति (साँसारिक व्यवहारोंमें प्रवृत्ति) तो हो ही नहीं सकती। और जीवन्मुक्तिका आनन्द भी बाह्य-प्रवृत्तिमें प्राप्त नहीं होता, किन्तु निवृत्तिमें ही होता है; अतः जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्की बाह्य-प्रवृत्ति कभी हो ही नहीं सकती। इस प्रकार कई आचार्योंने इसी पक्षको लिखा है।

किन्तु इस प्रकार ज्ञानवान्के लिये निवृत्तिका नियम कहना ठीक नहीं; क्योंकि ज्ञानीके लिए वेदने कहीं निवृत्ति अथवा प्रवृत्तिका विधान (आज्ञा) तो किया ही नहीं है, जिससे ज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम सिद्ध हो सके; अतः ज्ञानी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निरंकुश है, उसका व्यवहार प्रारब्धसे होता है। जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षा-भोजन-मात्र फलका हेतु है उसकी भिक्षा-भोजन-मात्रमें ही प्रवृत्ति होती है और जिसका प्रारब्ध अधिक भोगका हेतु है उसकी अधिक प्रवृत्ति होती है।

और जो यह कहते हैं कि :— जिसका प्रारब्ध भिक्षा-भोजन-मात्रका हेतु हो, उसीको ही ज्ञान हो सकता है, किन्तु जिसका प्रारब्ध अधिक व्यवहारमें प्रवृत्त करानेवाला हो तो उसे ज्ञान नहीं होगा, इसलिये भिक्षा-भोजन आदि व्यवहारसे अधिक व्यवहार ज्ञानीका नहीं होता और जिसकी अधिक प्रवृत्ति हो वह ज्ञानी ही नहीं है। यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि **याज्ञवल्क्य व जनकादिकोंको** ज्ञानी कहा जाता है। उनमें श्रीयाज्ञवल्क्यजीने सभा-विजय-द्वारा धन-संग्रह-व्यवहार तथा राजा जनकने राज्य-पालन-आदि व्यवहार भी किये थे। 'योगवासिष्ठ' में अनेक ज्ञानी पुरुषोंके व्यवहार नाना प्रकारके बतलाए हैं। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानीकी प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका कोई नियम नहीं है।

यद्यपि श्रीयाज्ञवल्क्यजीने सभा-विजयके बाद विद्वत्संन्यास-रूप निवृत्तिको धारण किया है और प्रवृत्तिमें ग्लानिके हेतु नाना दोष भी बतलाए हैं; तो भी 'याज्ञवल्क्यको विद्वत्संन्यास से पहिले ज्ञान नहीं था' यह कहना तो बन ही नहीं सकता; क्योंकि ज्ञान तो उन्हें पहिले भी था परन्तु विद्वत्संन्याससे पहिले जीवन्मुक्तिका आनन्द प्राप्त नहीं हुआ था। अतः जीवन्मुक्तिके आनन्दके लिये उन्होंने सर्वसंग्रहका त्याग किया। **श्रीयाज्ञवल्क्यका** प्रारब्ध कुछ समय तक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अधिक भोगका हेतु था और बादमें न्यून (कम) भोगका हेतु रहा। इसीलिये पहिले तो याज्ञवल्क्यको बिना ग्लानि के ही अधिक भोग और बादमें ग्लानिसे सभी भोगोंका त्याग हुआ है।

राजा **जनकका** प्रारब्ध मरणपर्यन्त राज्य-पालन व भोग का हेतु रहा था, इसलिए सदा त्यागका अभाव ही रहा तथा भोगोंमें ग्लानि भी नहीं हुई।

वामदेव आदिकोंका प्रारब्ध न्यून (कम) भोगका हेतु रहा था; इसलिए सदा भोगोंमें ग्लानि और उस ग्लानिसे प्रवृत्तिका अभाव ही रहा।

'योगवासिष्ठ' में तो ऐसा प्रसंग भी आया है कि **शिखरध्वजकी** ज्ञानके बाद तो और अधिक ही प्रवृत्ति हुई।

इस प्रकार नाना प्रकारके विलक्षण व्यवहार ज्ञानी पुरुषोंके बतलाए हैं, उन सभीको ज्ञान और उस ज्ञानका फल मोक्ष दोनों समान ही हुए हैं। इस विषयपर यह एक सांप्रदायिक श्लोक भी है:—

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी राजानौ जनक-राघवौ।
वसिष्ठः कर्म-कर्त्ता च त एते ज्ञानिनः समाः॥

अर्थात् कृष्ण भोगी हुआ है, शुकदेव त्यागी हुआ है, जनक और श्रीरामचन्द्र दोनों राजा हुए हैं और वसिष्ठ मुनि कर्मोंका कर्त्ता हुआ है। इस प्रकार इनका प्रारब्धके भेदसे विलक्षण (भिन्न भिन्न) व्यवहार हुआ है; तो भी वे और ये (वर्तमान) ज्ञानी सभी समान ही हैं।

इसी बातको श्रीविद्यारण्य स्वामीजीने पंचदशीके चित्रदीप

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में लिखा है कि :—

आरब्ध-कर्मनानात्वाद् बुद्धानामन्यथान्यथा ।
वर्तनं तेन शास्त्रार्थे भ्रमितव्यं न पण्डितैः ॥२८७॥
स्वस्वकर्मानुसारेण वर्तन्तां ते यथा तथा ।
अविशिष्टः सर्वबोधः समा मुक्तिरिति स्थितिः ॥२८८॥

अर्थात्— प्रारब्ध कर्मोंके नाना प्रकारके होनेसे ज्ञानियोंका भी व्यवहार परस्पर भिन्न होता है। अतः उनके भिन्न भिन्न बर्तावोंको देखकर पण्डितजनोंको, दृढ़ज्ञानसे मोक्षके प्रतिपादक शास्त्रके अर्थमें भ्रान्त नहीं होना चाहिए। [क्योंकि ज्ञानीके शरीरके रोग वा भूख आदि जैसे उसके प्रारब्धके फल होते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीके अन्य व्यवहार भी तो उसके प्रारब्ध कर्मों के ही फल हैं। अतः वे अन्य सांसारिक व्यवहार, रोग आदि की तरह ही, ज्ञानीकी मुक्तिमें कोई रुकावट नहीं कर सकते।]

इसलिये सब लोगोंको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वे ज्ञानी लोग अपने अपने प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार जैसा तैसा बर्ताव करते हैं तो करते रहें। किन्तु उन सबको जो अपने ब्रह्मत्वका ज्ञान होता है वह तो सबका एक समान ही होता है और मुक्ति भी उनकी समान ही होती है (वे सभी शुद्ध ब्रह्मरूपसे स्थित हो जाते हैं); यही स्थिति (शास्त्र और विद्वानोंका निश्चय) है।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि :— जो जीवन्मुक्तिके सुखको त्यागकर अन्य व्यवहारोंमें व विषय-भोगोंमें प्रवृत्त होता है वह विदेह-मोक्षको भी त्यागकर वैकुण्ठादि लोकोंकी इच्छा रखकर उन लोकोंमें गमन कर लेगा। किन्तु यह उनका कहना ठीक

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं; क्योंकि जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग व भोगोंमें प्रवृत्ति तो ज्ञानीकी प्रारब्ध-वशात् ही होती है। और विदेह-मोक्षका त्याग व परलोकको गमन भी नहीं बन सकता; क्योंकि श्रुति कहती है :— "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते" (अथर्ववेद नृसिंहोत्तर, ता० उप०) अर्थात् "ज्ञानीके प्राण बाहर कहीं नहीं जाते किन्तु यहीं लीन हो जाते हैं" अतः प्राणोंके बाहर नहीं जानेके कारण, ज्ञानीका परलोकको गमन तो बन ही नहीं सकता। और (२) विदेह-मोक्षका त्याग भी असंभव है; क्योंकि ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होकर प्रारब्ध-भोगोंके समाप्त होनेके बाद, स्थूल व सूक्ष्म शरीरके आकारको धारण करनेवाले अज्ञानका चेतन में लय हो जाना ही विदेह-मोक्ष कहलाता है। वह अवश्य ही होता है। यदि मूल अज्ञान शेष रहता अथवा नष्ट हुए अज्ञानकी फिर उत्पत्ति हो जाती, तब तो विदेह-मोक्षका अभाव हो सकता था; किन्तु मूल अज्ञानके विरोधी ज्ञानके होनेपर अज्ञान शेष नहीं रहता, तथा वेदके महावाक्यरूप प्रबल प्रमाणसे नष्ट हुए अज्ञानकी फिर उत्पत्ति नहीं होती; अतः ज्ञानीके विदेह-मोक्षका अभाव तो हो ही नहीं सकता।

और (३) विदेह-मोक्षके त्यागमें तथा परलोकके गमनमें ज्ञानीकी इच्छा भी नहीं बन सकती; क्योंकि ज्ञानीको इच्छा केवल प्रारब्धसे ही होती है। जितनी सामग्रीके बिना प्रारब्धका भोग नहीं बन सकता, उतनी सामग्रीको ही प्रारब्ध कर्म रचते हैं; और इच्छाके बिना भोग हो ही नहीं सकता, इसलिए ज्ञानीकी इच्छा भी प्रारब्धका ही फल है। और प्रारब्ध समाप्त

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होनेके बाद, इच्छाका अभाव होनेसे, विदेह-मोक्षके त्याग व परलोक-गमनकी इच्छाका ज्ञानीके लिए तो प्रश्न ही नहीं उठता।

यदि कोई कहे कि :— जैसे ज्ञानीको विदेह-मोक्षके त्याग व परलोक-गमनकी इच्छा नहीं होती, वैसे विदेह-मोक्षकी प्राप्तिकी भी इच्छा नहीं होगी; फिर बिना इच्छाके ज्ञानी को विदेह-मोक्षकी प्राप्ति कैसे होगी ?

इसका उत्तर यह है कि :— जो भ्रान्ति जिस अधिष्ठान के अज्ञानसे उत्पन्न होती है वह भ्रान्ति उस अधिष्ठानके अज्ञानके नष्ट होनेपर स्वतः बिना चाहे ही नष्ट हो जाती है। जो रस्सीमें कल्पित सर्प, जिस रस्सीके अज्ञानसे प्रतीत होता है, वह कल्पित सर्प उस रस्सीके अज्ञानके नष्ट होने पर अर्थात् उस रस्सीके जाननेपर, स्वतः बिना इच्छा किये ही नष्ट हो जाता है, ठीक इसी प्रकार जो स्थूल व सूक्ष्म शरीररूप कल्पित संसार, जिस अधिष्ठान (आत्म-स्वरूप ब्रह्म) के अज्ञानसे प्रतीत होता है, वह कल्पित संसार उस अधिष्ठान के अज्ञानके नष्ट होनेपर अर्थात् अपने असली स्वरूप ब्रह्म को जाननेपर, स्वतः बिना इच्छाके ही नष्ट हो जाता है। अतः दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानवान् मोक्षकी इच्छासे रहित होता हुआ भी मुक्त हो जाता है। भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्यजी महाराजने भी लिखा है कि :—

देहात्म-ज्ञान-वज्ज्ञानं देहात्म-ज्ञान-बाधकम्।
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते॥

अर्थात् :— "जैसे अज्ञानियोंको 'मैं मनुष्य हूँ, ब्राह्मण हूँ,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मैं यज्ञदत्त हूँ' इस प्रकार शरीरमें दृढ़ आत्म-बुद्धि होती है; उसी प्रकार जिसे, शरीरमें आत्म-बुद्धिको नष्ट करने वाला ज्ञान, ब्रह्मसे अभिन्न आत्माके विषयमें दृढ़रूपसे हो जाय अर्थात् "मैं (मेरा वास्तविक स्वरूप साक्षी) ब्रह्म हूँ" इस प्रकार जिसको आत्मामें (अपने आपमें) दृढ़ ब्रह्म-बुद्धि (दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान) हो जाय, वह वृक्षसे छूटे हुए हाथवालेकी तरह न चाहता हुआ भी मुक्त हो जाता है।" इससे सिद्ध हुआ कि — **बिना इच्छाके ज्ञानीका विदेह-मोक्ष निश्चित है।** और स्वप्नसे जगे हुए पुरुषको जैसे स्वप्न-भ्रान्तिकी निवृत्तिके त्यागमें तथा स्वप्नके परलोकके गमनमें इच्छा नहीं होती, ठीक इसी प्रकार ज्ञानीको बन्ध-भ्रान्ति (भ्रान्तिरूप संसार) की निवृत्तिरूप विदेह-मोक्षके त्यागमें और स्वर्गादि परलोकके गमनमें भी इच्छा नहीं होती। बाकी जीव-न्मुक्तिके विरोधी वर्तमान शरीरमें अधिक भोगोंकी इच्छा तो भिक्षा-भोजनादिकोंकी तरह, जनकादिकोंको भी हुई है।

यदि कोई कहे कि :— गीतामें भगवान्ने ज्ञानीका लक्षण बताते हुए कहा है, **"उदासीनवदासीनः"** अर्थात् जो सदा उदासीनकी तरह रहता है वही ज्ञानी है अतः ज्ञानीको व्यवहार छोड़कर सदा उदासीन ही रहना चाहिये। तो यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि भगवान्ने व्यवहार छोड़कर उदासीन रहने के लिए नहीं कहा है किन्तु व्यवहार करते हुए भी उदासीनकी तरह रहनेके लिए कहा है। इस मर्म को तो स्वयं भगवान्ने इसी श्लोकमें स्पष्ट करते हुए कहा है कि :—

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उदासीन-वदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥

अर्थात्— तटस्थके समान साक्षीरूपसे दूर रहनेवाला जा ब्रह्मज्ञानी, प्रकाश (रसास्वाद) आदि सात्त्विक गुणोंसे, रागादि प्रवृत्तिरूप राजस गुणोंसे और मोह आदि तामस गुणोंसे विचलित नहीं होता अर्थात् अपने असली स्वरूप साक्षीको नहीं भूलता और **'गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं अर्थात् शरीर इन्द्रियादि ही विषयोंमें प्रवृत्त होते हैं आत्मा नहीं'** ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्म-स्वरूप आत्मा (अपने आप) में स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता [वह गुणातीत कहलाता है] (गीता अ० १४ श्लोक २३)।

यदि कोई कहे कि ज्ञान होनेपर ऐसी अवस्था हो जाती है कि ज्ञानीके शरीरादिकोंसे कुछ भी व्यवहार नहीं हो सकता तो हमें इस बातपर हँसी आती है कि ज्ञानीके शरीरको अशक्तकर देनेवाला वह ज्ञान क्या हुआ ? वह तो एक रोग ही हुआ। जो महाबुद्धि तत्त्वज्ञानको एक प्रकारका क्षयरोग मानते हैं कि तत्त्वज्ञानीके हाथ पैर उठते ही नहीं, उनकी बुद्धिके विषयमें हम क्या कहें ? वे जो चाहें कह सकते हैं। किन्तु उनका कथन उनके पास रहे तो ही अच्छा है।

यदि कहा जाय कि 'जडभरत आदि महात्मा लोग कुछ भी नहीं करते थे' इस प्रकारका वर्णन पुराणोंमें आया है; अतः ज्ञानियोंको कुछ भी व्यवहार नहीं करना

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चाहिये, तो यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि उन जडभरतादिकोंकी तो प्रारब्ध ही निवृत्ति-प्रधान थी इसलिए वे अपना भोजनादिक व्यवहार करके, लोगोंके संग-दोषसे दूर रहकर उदासीन रहते थे।

किन्तु जिन ज्ञानियोंकी प्रारब्ध प्रवृत्ति-प्रधान होती है उनके लिए तो श्रुति स्वयं कहती है कि— **"जक्षन् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा वयस्यैर्वा नोपजनं स्मरन्निदं शरीरम्।"** (छा० ८-१२-३) अर्थात् खाता, खेलता, गृहस्थधर्म पालन करता, सवारियोंपर बैठता, अपने जातिवालों व समान अवस्थावालोंसे उनके योग्य व्यवहार करता हुआ भी वह ज्ञानी जनसमुदायके समीप वर्तमान इस शरीरको याद न करता हुआ अर्थात् "मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ" इस प्रकार अज्ञानियोंकी तरह शरीर-इन्द्रियादिकों में आत्म-बुद्धि न करके अपने असली स्वरूप साक्षीको न भूलता हुआ, [प्रारब्ध कर्म समाप्त होनेपर विदेह-मुक्त हो जाता है।]

यदि कोई कहे कि— यह सिद्धान्त है कि **"विमुक्तश्च विमुच्यते"** अर्थात् जीवन्मुक्तोंको ही विदेहमुक्ति प्राप्त होती है; फिर जो ज्ञानी साँसारिक व्यवहारोंमें लगे हुए नजर आते हैं उनका विदेह-मोक्ष कैसे हो सकता है ?

तो उसका उत्तर यह है कि— ज्ञानीका व्यवहार अर्थात् बाह्य-प्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं, किन्तु जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनन्दकी ही विरोधी है; क्योंकि आत्मा नित्य-मुक्त है, उसमें जो बन्धनकी भ्रान्ति हो रही है वह केवल अज्ञानके कारण ही है। अतः जब ज्ञान होता है तब

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उसी समय अज्ञानके साथ साथ बन्ध-भ्रम (आत्मामें कर्त्ता-भोक्तापन आदि संसाररूप भ्रान्ति) भी नष्ट हो जाता है। ज्ञान होनेके बाद फिर बन्ध-भ्रान्ति नहीं होती। और शरीर रहते रहते आत्मामें बन्ध-भ्रान्ति (कर्त्तापनादि संसाररूप भ्राँति) के अभावको ही जीवन्मुक्ति कहते हैं। और ज्ञानीको देह-इन्द्रियादिकोंकी प्रवृत्ति तथा निवृत्तिमें बन्ध-भ्रान्ति आत्मामें नहीं होती, अतः बाह्य-प्रवृत्ति होनेपर भी जीवन्मुक्ति दूर नहीं होती है। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञानीकी बाह्य-प्रवृत्ति अर्थात् प्रारब्ध-वशात् साँसारिक व्यवहारोंमें प्रवृत्ति होते हुए भी वह जीवन्मुक्त ही है, और **'विमुक्तश्च विमुच्यते'** इस सिद्धान्ताऽनुसार उसका विदेहमोक्ष निश्चित ही है।

हाँ, यह बात अवश्य है कि बाह्य-प्रवृत्तिमें जीवन्मुक्तको वह विलक्षण आनन्द प्राप्त नहीं होता; क्योंकि वह अनोखा ब्रह्मानन्द तो तभी प्राप्त होता है, जब अन्तःकरण एकाग्र हो। वह एकाग्रतारूप अन्तःकरणका परिणाम, बाह्य-प्रवृत्तिमें नहीं होता। अतः जीवन्मुक्तिका विलक्षण आनन्द सभी ज्ञानियोंको एक जितना प्राप्त नहीं होता; क्योंकि सभीकी प्रारब्ध भिन्न भिन्न होनेके कारण, ज्ञानी पुरुषोंके व्यवहार भी अनेक प्रकार के होते हैं। परन्तु जिसका प्रारब्ध अधिक प्रवृत्तिका हेतु होता है उसका दुष्ट अथवा निकृष्ट प्रारब्ध माना जाता है; क्योंकि अधिक प्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है और एकाग्रताके बिना त्रिपुटी-रूप-उपाधि-रहित वह अद्वैतानन्द प्रतीत नहीं होता। जैसे विशाल राज्यको प्राप्त किया हुआ पुरुष भी शिथिल प्रारब्धसे उत्पन्न होनेवाले सुसाध्य अथवा कष्टसाध्य

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रोगकी तो औषध आदि प्रयत्नोंसे निवृत्ति कर लेता है, परन्तु तीव्रतर प्रारब्धसे उत्पन्न होनेवाले असाध्य रोगकी तो निवृत्ति उससे भी नहीं हो सकती; इसी प्रकार शिथिल प्रारब्धके फल-स्वरूप बाह्य-प्रवृत्तिको तो ज्ञानी जीवन्मुक्तिके सुखके लिए किये हुए, रागद्वेषादि वासनाओंको हटानेके प्रयत्नसे दूर कर लेता है किन्तु तीव्रतर प्रारब्धकी फलस्वरूप बाह्य-प्रवृत्ति तो ज्ञानीसे भी दूर नहीं हो सकती। इसलिये ज्ञानीकी अधिक प्रवृत्तिकी हेतु तीव्रतर प्रारब्धको दुष्ट वा निकृष्ट प्रारब्ध कहते हैं।

यदि कोई कहे कि :— ज्ञानवान्को सभी अनात्म पदार्थों में मिथ्या-बुद्धि होनेसे, राग नहीं होता इसलिए उसकी साँसारिक व्यवहारोंमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। और यदि ज्ञानीमें रागादि माने जाँयगे तो शास्त्रसे विरोध हो जायगा; क्योंकि शास्त्र तो कहता है कि **"रागो लिंगमबोधस्य"** अर्थात् 'राग अज्ञानकी निशानी है।' अतः यह मानना चाहिये कि जो रागादिके न होनेके कारण साँसारिक व्यव-हारोंमें प्रवृत्त नहीं होता वही ज्ञानी है। तो यह उनका कहना ठीक नहीं है; क्योंकि जैसे 'शरीर मिथ्या है' ऐसा ज्ञान होते हुए भी उस मिथ्या शरीरको बनाए रखने के लिये प्रारब्ध-वशात् ज्ञानीकी भिक्षा-भोजन व जल-पान आदिकोंमें प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार जिस ज्ञानीका प्रारब्ध अधिक भोगोंको देनेवाला होता है, उस ज्ञानीकी अधिक प्रवृत्ति भी हुआ करती है। अथवा जैसे सिनेमा वा बाज़ीगरके खेलको मिथ्या जानते हुए भी लोगोंकी उसे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

देखनेमें प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार सभी पदार्थोंमें ज्ञानी को मिथ्या बुद्धि होनेपर भी प्रवृत्ति बन सकती है। और यह जो शास्त्र कहता है कि 'राग अज्ञानकी निशानी है' इसका तात्पर्य यह है कि दृढ़ राग अज्ञानकी निशानी है अर्थात् ज्ञानीमें अज्ञानीकी तरह दृढ़ राग नहीं होता। इसी तात्पर्यको स्पष्ट करते हुए दूसरा शास्त्र कहता है कि, **"रागादयः सन्तु कामं न तद्भावोऽपराध्यते"** अर्थात् ज्ञानीमें रागादि हैं तो हुआ करें, उनके होनेसे ज्ञानीके ज्ञानको कोई आँच नहीं लगती; क्योंकि **तत्त्व-ज्ञानीका राग दृढ़ नहीं होता।** इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञानीमें भी प्रारब्ध-वशात् अदृढ़ रागादि हो सकते हैं और उनसे उनकी बाह्य-प्रवृत्ति भी बन सकती है।

जो लोग ऐसा कहते हैं कि :— जिसको जिस पदार्थ में दोष-दृष्टि हो जाती है, वह पुरुष फिर उस पदार्थमें प्रवृत्त नहीं होता और ज्ञानीको सभी अनात्म-पदार्थोंमें दोष-दृष्टि होती है, अतः ज्ञानीकी बाह्य-प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि जैसे रोगी के बार बार बीमार पड़नेसे उसे यह निश्चय हो जाता है कि अपथ्य-सेवन करनेसे बीमारी बढ़ती है, फिर भी वह जैसे प्रारब्ध-वशात् अपथ्य-सेवन कर लेता है, उसी प्रकार सभी पदार्थोंमें दोष-दृष्टि रखता हुआ ज्ञानी भी तीव्रतर-प्रारब्ध-वशात् व्यवहारमें प्रवृत्त हो जाता है।

किन्तु इस शास्त्रके रहस्यको न समझनेवाले जो लोग यह कहते हैं कि :— प्रारब्धका फल सर्वथा अनिवार्य है तथा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पुरुषार्थं करना ही व्यर्थ है यह उनका कहना ठीक नहीं; क्योंकि ऐसा माननेसे निष्काम ऋषियों द्वारा लिखे हुए वैद्य-शास्त्र, मन्त्र-शास्त्र और योग-शास्त्र आदिक मानसिक व शारीरिक रोगोंको हटानेके उपायोंको बतलानेवाले सभी शास्त्र व्यर्थ हो जाँयगे और प्रत्यक्ष फलको देनेवाले उपायोंको बतलानेवाले उन शास्त्रोंको व्यर्थ कहना नहीं बन सकता।

और हमने जो कहा था कि प्रारब्धका फल अनिवार्य है, वह तीव्रतर प्रारब्धके लिये कहा था; क्योंकि प्रारब्ध तीन प्रकारकी है :—

(१) मन्द (२) तीव्र (३) तीव्रतर।

मन्द-प्रारब्ध :— जिसका फल भिक्षाके अन्नकी तरह अधिक प्रयत्नसे प्राप्त हो और जिसका अकस्मात् प्राप्त हुआ अनिष्ट (अनचाहा) फल सुसाध्य रोगकी तरह थोड़ेसे ही प्रयत्नसे निवृत्त हो जाय उस प्रारब्धको **मन्द-प्रारब्ध** कहते हैं।

(२) **तीव्र-प्रारब्ध** :—जिसका फल निमन्त्रणके अन्नकी तरह थोड़े ही प्रयत्नसे प्राप्त हो और जिसका अकस्मात् प्राप्त हुआ अनिष्ट (अनचाहा) फल कष्ट-साध्य रोगकी तरह अधिक प्रयत्नसे ही निवृत्त हो, उस प्रारब्धको **तीव्र-प्रारब्ध** कहते हैं।

(३) **तीव्रतर-प्रारब्ध** :— जिसका फल घर बैठे ही प्राप्त हुए अन्नकी तरह बिना प्रयत्नके अपने आप ही प्राप्त हो जाय, और जिसका बलपूर्वक (जबरदस्ती) प्राप्त हुआ अनिष्ट फल बैलके डामकी तरह, किसी भी प्रयत्नसे निवृत्त न हो सके, उस प्रारब्धको **तीव्रतर-प्रारब्ध** कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इन तीन प्रकारके प्रारब्धोंमेंसे पहिलेके दो प्रारब्ध तो तीव्र व तीव्रतर प्रयत्नसे हट सकते हैं किन्तु तीव्रतर प्रारब्ध अपना भोग अवश्य ही देता है। इसलिए पुरुषार्थ (प्रयत्न) सदा करते ही रहना चाहिये; जिससे प्रारब्ध कर्म यदि मन्द व तीव्र होंगे तो वे दूर होते जाँयगे और यदि तीव्र-र होंगे तो भोग भुगाकर नष्ट हो जाँयगे।

इस प्रकार ज्ञानीके व्यवहार प्रारब्ध-आधीन होनेके कारण, उनमें कोई नियम नहीं है अर्थात् ज्ञानीको निवृत्ति-प्रधान होना चाहिये अथवा प्रवृत्ति-प्रधान ऐसा कोई नियम नहीं किया जा सकता; क्योंकि नियम होता है स्वाधीन कार्यमें, पराधीन कार्यमें नियम नहीं बन सकता। अतः हाथसे छूटे हुए बाणकी तरह प्रारब्ध (जिनका प्रारम्भ हो चुका हो उन) कर्मोंके आधीन ज्ञानीके शरीरके व्यवहारका नियम नहीं बन सकता।

यद्यपि रागादि वासनाओंको रोककर मनको वशमें करनेवाले ज्ञानीजन, मन्द वा तीव्र प्रारब्धके फलरूप शरीर के व्यवहारको नियममें रखते हैं किन्तु तीव्रतर प्रारब्धके फलरूप शरीरके व्यवहारका नियम तो ज्ञानीसे भी नहीं बन सकता।

भगवान्‌ने भी गीताके (३) अध्यायके (३३) वें श्लोकमें कहा है कि—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

अर्थात् :— क्योंकि सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थात् पूर्वकृत पुण्य-पाप आदिके संस्कार जो वर्तमान जन्मादि में प्रकट होते हैं, उनके अनुसार सभी प्राणी परवश होकर कर्म करते हैं, ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार ही चेष्टा करता है, फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा।

इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञानीका व्यवहार अपनी प्रकृति के अनुसार होनेके कारण उसमें कोई नियम नहीं है। अत एव तत्त्वदृष्टि जिसे ज्ञान हो चुका था, वह भी अपने प्रारब्धानुसार व्यवहार करता हुआ भ्रमण करने लगा और प्रारब्ध समाप्त होनेपर उसके प्राण यहीं लीन हो गये [अर्थात् वह विदेहमुक्त हो गया]; क्योंकि प्रारब्ध-भोगके बाद ज्ञानीके प्राण कहीं और जगह गमन नहीं करते किन्तु जैसे जगनेपर सपना साक्षीमें लीन हो जाता है उसी प्रकार यहीं स्वस्वरूप ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं। तथा ज्ञानीके शरीर-त्यागमें काल-विशेष देश-विशेष, आसन-विशेष अथवा किसी अवस्था-विशेषकी कोई आवश्यकता नहीं होती, अर्थात् ज्ञानी सर्वथा मुक्त ही है; क्योंकि जब ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है उसी समयसे ज्ञानी मुक्त है। इसपर एक साँप्रदायिक श्लोक भी आता है कि :—

देहः पततु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा।
ज्ञान-संप्राप्ति-समये सर्वथा मुक्त एव सः॥

अर्थात्—ज्ञानीका शरीर चाहे काशीमें छूटे अथवा चाँडाल के घरमें छूटे; किन्तु ज्ञान-प्राप्तिके समयमें बन्ध-भ्रान्ति (भ्रान्तिरूप संसार) की निवृत्ति हो जानेसे वह ज्ञानी सर्वथा मुक्त ही है। . . . .

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जैसे ज्ञानीको शरीर छोड़नेमें किसी विशेष देशकाल आदिकी कोई आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार ज्ञानके लिए वेदान्त-श्रवणमें भी किसी विशेष देश काल आदिकी कोई आवश्यकता नहीं होती, किन्तु उपासकको इन देश काल आदिकोंकी आवश्यकता रहती है।

यद्यपि भीष्म आदि ज्ञानी थे और भीष्मने उत्तरायण बिना, शरीरका त्याग नहीं किया, तथापि भीष्म आदि अधिकारी पुरुष माने जाते हैं; अतः उपासकोंको उपदेश देनेके लिए उन्होंने काल-विशेषकी प्रतीक्षा की थी और वसिष्ठ भीष्मादि अधिकारी होनेके कारण उनके अनेक जन्म माने जाते हैं; क्योंकि अधिकारी पुरुषोंका एक कल्प तक प्रारब्ध होता है। बिना कल्पकी समाप्तिके उनका विदेह-मोक्ष नहीं होता और कल्पके बीचमें उनके इच्छा-अनुसार शरीर होते रहते हैं तो भी आत्म-स्वरूपमें उनको जन्म-मरणकी भ्रांति नहीं होती; इसीलिए वे **जीवन्मुक्त** कहलाते हैं। उन अधिकारी पुरुषोंका व्यवहार दूसरोंके उपदेश-निमित्त ही होता है किन्तु उन अधिकारी पुरुषोंसे अन्य ज्ञानियोंके व्यवहार में कोई नियम नहीं है इसी अभिप्रायसे तत्त्वदृष्टिके शरीर छूटनेके कोई विशेष देश काल आदि नहीं बताए।

दूसरा **अदृष्टि** नामक शिष्य जिसे निर्गुण ओंकारकी अहँग्रह उपासनाका उपदेश मिला था वह गंगाके किनारे किसी पवित्र व एकान्त स्थानमें बैठकर निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करने लगा, क्योंकि ध्यान (उपासना) में उत्तम देश, निरंतर काल व सिद्ध आदि आसनोंकी आवश्यकता रहती

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। इस प्रकार वह अदृष्टि ओंकारका ध्यान करता हुआ, प्रारब्ध समाप्त होनेपर, शास्त्र-रीति अनुसार [क्योंकि उपासकको शरीर छोड़ते समय उत्तम देश व उत्तम उत्तरायण काल आदिकोंकी आवश्यकता रहती है] शरीर छूटनेपर ब्रह्मलोकको जाकर, वहाँके संकल्प-सिद्ध दिव्य पदार्थोंको भोग कर प्रलयकालमें आत्मज्ञान होनेके बाद विदेह-मोक्षको प्राप्त हो गया।

और तीसरे तर्कदृष्टि नामक शिष्यने गुरु-द्वारा उपदेशको सुनकर, उस सुने हुए अर्थमें दूसरे शास्त्रोंका विरोध दूर करने के लिए, सभी शास्त्रोंका अभिप्राय विचारकर यह निश्चय किया कि :—

(१) सभी शास्त्रोंका परम प्रयोजन मोक्ष है।
(२) मोक्षका साधन ज्ञान है।
(३) वह ज्ञान अद्वय-निश्चयरूप है।
(४) भेद-निश्चय यथार्थ ज्ञान नहीं।
(५) सभी शास्त्र साक्षात् अथवा परम्परासे ब्रह्म-ज्ञानके ही हेतु हैं।

संस्कृत विद्याके अष्टादश (१८) प्रस्थान (अंग) हैं :— चार वेद, चार उपवेद, छः वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमाँसा और धर्मशास्त्र।

चार वेद :— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

चार उपवेद :— आयुर्वेद [इसमें शरीर आदिकी चिकित्सा (इलाज) सम्बन्धी वर्णन है], धनुर्वेद [इसमें युद्ध-सम्बन्धी शस्त्रादिकोंका वर्णन है], गान्धर्ववेद [इसमें स्वर, ताल,

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मूर्छना-सहित गीत, नृत्य और वाद्य आदिका निरूपण है] और अर्थवेद [नीति-शास्त्र, अश्व-शास्त्र, शिल्प-शास्त्र, सूपकार-शास्त्र आदि धन-प्राप्तिके उपाय बतलानेवाले शास्त्रोंको अर्थवेद कहा जाता है।]

छः वेदके अंग :– (१) शिक्षा (२) कल्प (३) व्याकरण (४) निरुक्त (५) ज्योतिष और (६) पिंगल।

(१) **शिक्षा :–** यह श्रीपाणिनीजीका बनाया हुआ है और इसमें वेदके शब्दोंके अक्षरोंके स्थानोंका तथा उदात्त, अनुदात्त व स्वरित स्वर इत्यादिका वर्णन है।

(२) **कल्प :–** वेदके बताए हुए कर्मोंके अनुष्ठानकी रीति कल्पसूत्रोंमें बताई गई है। इनके कर्त्ता कात्यायन आश्वलायन आदि मुनि हुए हैं।

(३) **व्याकरण :–** इससे लौकिक व वेदके शब्दोंकी शुद्धताका ज्ञान होता है। यह 'अष्टाध्यायी' नामक सूत्ररूप व्याकरण पाणिनी मुनिने बनाया है।

(४) **निरुक्त :–** यास्क नामक मुनिने त्रयोदश (१३) अध्यायरूप निरुक्त बनाया है। इसमें वेदके मन्त्रोंमें जो अप्रसिद्ध पद हैं उनके अर्थको समझानेके लिए उनके पर्याय-वाची नामों का निरूपण आया है। निघंटु व अमरकोष आदि संज्ञा-बोधक कोष भी इसीके अन्तर्गत माने जाते हैं।

(५) **ज्योतिष :–** इसके कर्त्ता आदित्य व गर्गादिक ऋषि हुए हैं। इसमें वैदिक कर्मोंके उपयोगी कालादिकोंका वर्णन है।

(६) **पिंगल :–** पिंगल नामक मुनिने सूत्रोंमें अष्ट (८) अध्याय्योंसे छन्दोंका निरूपण किया है, जिससे वेदके गायत्री

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आदि छन्दोंका ज्ञान होता है।

पुराण:— इनके कर्त्ता श्रीवेदव्यासजी हैं। ये कुल अठारह (१८) हैं, जैसे—(१) ब्रह्म (२) पद्म (३) वैष्णव (४) शैव (५) भागवत (६) नारदीय (७) मार्कण्डेय (८) आग्नेय (९) भविष्य (१०) ब्रह्मवैवर्त (११) लैंग (१२) वाराह (१३) स्कंद (१४) वामन (१५) कौर्म (१६) मात्स्य (१७) गारुड और (१८) ब्रह्मांड।

भागवत दो हैं:—(१) वैष्णव भागवत (२) भगवती भागवत। दोनोंमें श्लोकोंकी संख्या अष्टादश सहस्र (अठारह हाज़र) है और दोनोंके स्कन्द भी द्वादश (१२) हैं। परन्तु इनमें एक पुराण है और दूसरा उपपुराण है। दोनों व्यासजीके बनाए हुए हैं।

जैसे व्यासजीने पुराण बनाए हैं वैसे उपपुराण भी कुछ व्यासजीने बनाये हैं और कुछ पराशर आदि मुनियोंके किये हुए हैं।

न्याय:— पाँच अध्यायोंमें न्याय-सूत्र गौतमजीने बनाए हैं। इनमें युक्ति प्रधान है। कणाद मुनिके दश अध्यायों में बनाए हुए वैशेषिक सूत्रोंका भी इसीमें अन्तर्भाव किया जाता है।

मीमाँसा:— इसके दो भेद हैं—(१) धर्म-मीमाँसा अर्थात् पूर्व-मीमाँसा (२) ब्रह्म-मीमाँसा अर्थात् उत्तर-मीमाँसा। **धर्म-मीमाँसाके** १२ अध्याय हैं। इसके कर्त्ता जैमिनि हैं और इसमें कर्मके अनुष्ठानकी रीतिका प्रतिपादन किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्म-मीमाँसा (ब्रह्मसूत्र) के चार अध्याय हैं। इसके कर्त्ता वेदव्यासजी हैं। एक एक अध्यायके चार चार पाद हैं। इसके पहिले अध्यायमें बताया गया है कि सभी उपनिषद् ब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं। उपनिषद् वाक्योंका मन्द-बुद्धि पुरुषोंको जो आपसमें विरोध प्रतीत होता है, उसका परिहार दूसरे अध्यायमें किया है। तीसरे अध्याय में ज्ञान और उपासनाके साधनोंका विचार किया गया है। और चौथे अध्यायमें ज्ञान और उपासनाका फल बताया है।

यह ब्रह्म-मीमाँसारूप शारीरक-शास्त्र ही सभी शास्त्रों में प्रधान माना जाता है। मुमुक्षुको यही उपादेय है। इस पर कई व्याख्याएँ की गई हैं किन्तु श्रीस्वामी शंकराचार्य-जीका किया हुआ भाष्यरूप व्याख्यान ही सबसे श्रेष्ठ है।

धर्म-शास्त्र :— मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल और नारद आदि मुनियोंके बनाये हुए स्मृति नामक ग्रन्थोंको **धर्म-शास्त्र** कहते हैं। इनमें वर्ण आश्रमके कायिक; वाचिक व मानसिक धर्मोंका निरूपण आया है। व्यासकृत महाभारत व वाल्मीकिकृत रामायण भी धर्मशास्त्रके ही अन्तर्गत हैं। तथा देवता-आराधनके निमित्त जो मन्त्र-शास्त्र हैं व साँख्य-शास्त्र, योग-शास्त्र, वैष्णव-तन्त्र, शैव-तन्त्रादि भी धर्म-शास्त्रके अन्तर्भूत हैं; क्योंकि इनमें भी उपासनारूप मानस धर्मका निरूपण है।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वाममार्ग और (१) माध्यमिक (२) योगाचार (३) सौत्राँतिक (४) वैभाषिक (५) चार्वाक और (६) दिगम्बर ये वेदको प्रमाण नहीं माननेवाले छः नास्तिक मतोंके ग्रन्थ भी यद्यपि संस्कृत वाणीमें हैं, तथापि वेद-बाह्य हैं; अतः वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान (अंग) अष्टादश (१८) ही हैं।

इन सबको पढ़कर तत्त्वदृष्टिने यह निश्चय किया कि ये सभी शास्त्र ब्रह्मज्ञान-द्वारा मोक्षके हेतु है। कोई साक्षात् ज्ञानका हेतु है, कोई परम्परासे ज्ञानका हेतु है; क्योंकि जो शास्त्र कर्मका प्रतिपादन करते हैं, उनका भी कर्मोंसे ज्ञान-प्राप्तिके योग्य शुद्ध अन्तःकरणको प्राप्त करके ज्ञान द्वारा मोक्ष-प्राप्तिमें ही तात्पर्य है, जो शास्त्र उपासनाका वर्णन करते हैं, उनका भी उपासनासे शुद्ध अन्तःकरण करके, ज्ञान-द्वारा मोक्षमें ही तात्पर्य है तथा जो ब्रह्मसूत्र आदि शास्त्र ज्ञानका निरूपण करते हैं उनका तो साक्षात् ज्ञान द्वारा मोक्षमें तात्पर्य है ही। किन्तु जिज्ञासुओंको अन्य शास्त्रोंमें सिरपच्ची न करके केवल उत्तर-मीमाँसा आदि साक्षात् ज्ञानके प्रतिपादक शास्त्रोंका ही अध्ययन करना चाहिये।

फिर दूसरे विद्वानोंके साथ मिलनेसे जब तर्कदृष्टिको यह निश्चय हो गया कि जो मेरा निश्चय है वही विद्वानों व ब्रह्म-ज्ञानियोंका निश्चय है तब उसके सभी संशय नष्ट हो गए और अपने असली स्वरूप ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया।

तत्पश्चात् उस तर्कदृष्टिकी शेष प्रारब्ध प्रवृत्ति-प्रधान होनेके कारण उसे अपने वृद्ध माता पिताको देखनेकी इच्छा

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हुई। तब वह घर पहुंचा। पिता पुत्र दोनों मर्यादानुसार व बड़े प्रेमसे आपसमें मिले। पिताको कुछ चिन्तित देख कर पुत्रने उस चिन्ताका कारण पूछा। तब उस राजा शुभसंततिने कहा, "हे पुत्र! अब तो मुझे केवल अपने कल्याणकी ही चिन्ता है; अतः अब मुझे यह बताओ कि उपासना किसकी करनी चाहिये? विष्णुके उपासक तो दूसरे देवताओंमें दोष बताकर केवल वष्णुकी ही महिमा गाते हैं और शिवके उपासक शिवको उपास्य बतलाकर विष्णु आदि अन्य देवताओंकी निन्दा करते हैं। इसी प्रकार देवी आदिकोंके उपासक दूसरे देवताओंकी निन्दा करते हैं और अपने अपने इष्टकी ही बढ़ाई करते हैं। पुराणोंमें भी यही देखा गया है। स्कन्द-पुराणमें जगत्‌की उत्पत्ति शिवसे बताई है और विष्णु आदिक शिवके भक्त हैं, ऐसा वर्णन आया है। और विष्णु-पुराण पद्म-पुराणमें फिर सृष्टिका कारण विष्णुको कहा है। इस प्रकार हे पुत्र! ये भिन्न भिन्न देवताओंके उपासक तो अपने अपने इष्टको ही उपास्य (उपासना करने योग्य) बतलाते हैं, अतः मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता कि किसकी उपासना करूँ, अब तुम मुझे बताओ कि वास्तवमें उपासना किसकी करनी चाहिये, तो मैं उसकी उपासनामें प्रवृत्त हो जाऊँ।"

यह सुनकर तर्कदृष्टि बोले "पिताजी! यद्यपि सभी पुराणोंके कर्त्ता एक व्यासजी ही हैं और उन्होंने स्कन्द-पुराणमें शिवके स्वतन्त्रादि ईश्वर-धर्म बतलाये हैं, और दूसरे देवताओंके लिये कहा है कि उन्होंने शिवकी कृपासे ही

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सारी विभूतिको प्राप्त किया है अतः वे शिवसे भिन्न दूसरे देवता, जीव-कोटिमें हैं। तथा विष्णु-पुराण व पद्म-पुराण में फिर विष्णुको ही ईश्वर बतलाया है। इस प्रकार किसी को पुराणमें किसीको उपपुराणमें ईश्वर बताते हुए, गणेशादि दूसरे देवताओंको भी ईश्वर बताया है। इसी कारण ही वेदव्यासजीके वाक्योंमें उपरि-दृष्टिसे विरोध प्रतीत होता हैं किन्तु वास्तवमें विरोध नहीं है; क्योंकि वस्तुतः विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य ये सभी ईश्वर हैं। जिस प्रकरण में एकको ईश्वर बताकर व दूसरोंके जीव इत्यादि धर्म कहकर जो उनकी निन्दा की है; वहाँ उनकी निन्दा करके, उनकी उपासनाके त्यागमें व्यासजीका अभिप्राय नहीं है, किन्तु विष्णु-पुराणमें शिवादिकोंकी निन्दा और विष्णुकी स्तुति, केवल विष्णुके भक्तोंको विष्णुकी उपासनामें अधिक श्रद्धासे प्रवृत्त करानेके लिए ही की है। वैसे शिवपुराणमें विष्णु आदिकोंकी निन्दा भी उपासनाके त्यागके लिए नहीं किन्तु शिवके भक्तोंको शिवकी उपासनामें अधिक श्रद्धासे प्रवृत्त करानेके लिए ही की है। यदि एक प्रकरणमें दूसरे देवताओंकी निन्दा, उनकी उपासनाको छोड़नेके लिए मानी जायगी, तो यों तो सभी देवताओंकी उपासना छूट जायगी। फिर तो कोई उपास्य देवता ही नहीं रहेगा और वेदका सारा उपासना-काण्ड निरर्थक हो जायगा। अतः दूसरे देवताओंकी निन्दा एककी स्तुतिके लिए है, न कि उनकी उपासनाको छोड़नेके लिए।

जैसे :— वेदमें अग्निहोत्रके दो काल (समय) बतलाए

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं। एक सूर्य-उदयसे पहिले और दूसरा सूर्य-उदयके बाद का काल। वहाँ उदय-कालके प्रसंगमें अनुदय-काल (सूर्य उदय होनेसे पहिलेके समय) की निन्दा की है और अनुदय-कालके प्रसंगमें उदय-काल (सूर्य-उदय होनेके बादके समय) की निन्दा की है। अब वहाँ निन्दाका तात्पर्य यदि त्यागमें माना जाय तो क्रमशः दोनों कालोंमें होमका त्याग हो जायगा; किन्तु नित्य कर्मका त्याग नहीं हो सकता। अतः यह मानना पड़ेगा कि उदय-कालकी स्तुतिके लिए ही अनुदय-कालकी निन्दा है और अनुदय-कालकी स्तुतिके लिए उदय-कालकी निन्दा है। इसी प्रकार एक देवकी उपासना के प्रसंगमें जो दूसरे देवताओंकी निन्दा की गई है, उसका तात्पर्य उस एककी स्तुतिमें है न कि दूसरोंकी निन्दामें।

जैसे शाखा-भेदसे कोई उदय-कालमें होम करता है तो कोई अनुदय-कालमें, किन्तु फल दोनोंको समान ही मिलता है। इसी प्रकार इच्छा-भेदसे पाँचोंमेंसे किसीकी भी उपासना करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है; अर्थात् पाँचों देवताओंकी उपासनाका फल समान ही है। और वहाँ ब्रह्मलोकमें भोग भोगनेके बाद, विदेह-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

यद्यपि पुराणोंमें विष्णु आदिकोंकी उपासनासे वैकुण्ठ आदि प्राप्तिका वर्णन आता है, न कि ब्रह्मलोकका, तथापि शास्त्रका यह कथन है कि, जो उत्तम उपासक (कारण ब्रह्मकी अभेद उपासना करनेवाले) विदेह-मुक्तिके अधिकारी हैं, वे सभी देव-यान-मार्गसे ब्रह्मलोकको ही जाते हैं। परन्तु वह एक ही ब्रह्मलोक विष्णुके उपासकोंको वैकुण्ठरूपसे प्रतीत

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होता है, तथा वहाँके सभी लोकवासी उसे चतुर्भुज पार्षद-रूपसे प्रतीत होते हैं, और स्वयंको भी वह चतुर्भुजरूपसे ही देखता है, इसी प्रकार शिवके उपासकोंको वही ब्रह्म-लोक शिवलोक प्रतीत होता है, और वहाँके लोकवासी तथा वह स्वयं, सभी त्रिनेत्र-मूर्ति-रूपसे उसे प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार सभी उपासकोंको ब्रह्मलोक ही अपने उपास्य देवताका लोक प्रतीत होता है; क्योंकि यह नियम है कि:— बिना देव-यान-मार्गके; जो उपासक दूसरे मार्गसे जाते हैं, उनका फिर संसारमें आगमन (आना) हो जाता है, और देव-यान-मार्ग-द्वारा गया हुआ उपासक ब्रह्मलोक को ही प्राप्त करता है; अतः विदेह-मोक्षके योग्य सभी उपासक ब्रह्मलोकको ही जाते हैं। उस ब्रह्मलोककी ऐसी अद्भुत महिमा है कि वह ब्रह्मलोक उपासककी इच्छाके अनु-सार ही सारी सामग्री-सहित होकर उसे प्रतीत होता है। इस प्रकार पाँचों देवोंके उपासकोंको ब्रह्मलोकरूप एक समान ही फल मिलता है।

यदि कोई ऐसी शंका करे कि:— पाँचों देवोंके नाम व रूप भिन्न भिन्न हैं किन्तु ईश्वर तो एक है। एक ईश्वरके अनेक नामरूप कैसे बन सकते हैं? तो उसका समाधान यह है कि:— वास्तवमें परमात्मामें कोई नामरूप है ही नहीं; केवल मन्दबुद्धि मनुष्योंको उपासनामें प्रवृत्त करानेके लिए ही नाम-रूप-रहित परमात्माके माया-कृत कल्पित नामरूप बताये गए हैं। अतः एक परमात्मामें माया-द्वारा किये हुए कल्पित नामरूप अनेक बन सकते हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रकार सभी पुराणोंके वाक्योंका आपसमें विरोध नहीं है।

पुराण-वाक्योंमें विरोध शंकाका मुख्य उत्तर तो यह है कि:— जैसे माया-विशिष्ट **कारणको** ब्रह्म कहते हैं और हिरण्यगर्भ जो **कार्य** है उसे भी ब्रह्म कहते हैं, इसी प्रकार विष्णु, शिव, गणेश, देवी और सूर्य ये पाँचों नाम कारण-ब्रह्म तथा कार्य-ब्रह्म इन दोनोंको बोधन करते हैं (बतलाते हैं)। ऐसे इन पाँचों नामोंके जो नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादि अनेक पर्याय (समान अर्थवाले शब्द) हैं, वे सभी प्रसंगानुसार कहीं कारण ब्रह्मको, कहीं कार्य ब्रह्मको, दोनोंको बोधन करते हैं। जैसे सैन्धव पद घोड़े व नमक दोनोंको बताता है। भोजनके प्रसंगमें सैन्धव पद नमकको बताता है और कहीं जानेके प्रसंगमें वही सैन्धव पद घोड़ेको बताता है। इसी प्रकार वैष्णव-पुराण में विष्णु नारायण आदि पद कारण-ब्रह्मके वोधक हैं और शिव गणेश सूर्य आदि पद कार्य-ब्रह्मके बोधक हैं; अतः वैष्णव ग्रन्थोंमें विष्णुकी स्तुति और शिव आदिकोंकी निन्दा से श्रीवेदव्यासजीका तात्पर्य यह है कि **कारण-ब्रह्म उपास्य (उपासना करने योग्य)** है और **कार्य-ब्रह्म** उपास्य नहीं है। इसी प्रकार स्कन्द-पुराण आदि शैव ग्रन्थोंमें शिव महेश आदि पद कारण-ब्रह्मके बोधक हैं और विष्णु गणेश देवी सूर्य आदि पद कार्य-ब्रह्मके बोधक हैं; अतः उनमें भी कारण-ब्रह्मकी स्तुति और कार्य-बह्मकी ही निन्दा है। ऐसे गणेश-पुराणमें गणेश पद कारण-ब्रह्मका वाचक है और विष्णु शिव आदि पद कार्य-ब्रह्मके वाचक हैं; अतः कारणकी स्तुति

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और कार्यकी निन्दा है। इसी प्रकार काली पुराणमें भी काली देवी आदि पद कारण-ब्रह्मके बोधक और विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य आदि पद कार्य-ब्रह्मके बोधक हैं। अतः काली-पद-वाच्य कारणकी स्तुति और विष्णु शिव आदि पदोंके वाच्य कार्य-ब्रह्मकी निन्दा है। ऐसे सौर-पुराणमें सूर्य भानु आदि पदोंका वाच्य जो कारण-ब्रह्म है, उसकी स्तुति और अन्य पदोंके वाच्य कार्य-ब्रह्मकी निन्दा है। इस प्रकार सभी पुराणोंमें कारण-ब्रह्मकी उपासना उपादेय (करने योग्य) है और कार्य-ब्रह्मकी उपासना हेय (छोड़ने योग्य) है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सभी पुराण एक कारण-ब्रह्मको ही उपास्य (उपासना करने योग्य) बताते हैं। अतः उनका आपसमें विरोध नहीं है।

यद्यपि विष्णुकी चतुर्भुज, शिवकी त्रिनेत्र, गणेशकी सतुण्ड, काली देवीकी अष्टभुजादि जो मूर्तियाँ हैं, वे माया के परिणाम व चेतनके विवर्त होनेके कारण **कार्य** हैं और उनकी भी उपासनाका वर्णन आया है, तथापि उन चतुर्भुज आदि मूर्तियोंका जो माया-विशिष्ट-चेतन **कारण** है, उससे उनका वास्तवमें कोई भेद नहीं है; अतः यह समझना चाहिये कि उन मूर्तियोंकी उपासनाका तात्पर्य, उन आकारों को बाधकर, कारणरूपसे उनकी उपासना करनेमें ही है; क्योंकि आकार कार्य होनेसे तुच्छ हैं और कारण सत्य है। किन्तु जिसकी बुद्धि मन्द है और वह आकरमें ही चित्त को लगा सकता है तो उसे शास्त्र-उक्त आकारकी ही उपासना करनी चाहिये; जिससे उसकी बुद्धि निश्चल होनेके

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बाद फिर कारण-ब्रह्मकी उपासनामें लग सके।

कारण-ब्रह्मकी उपासना इस प्रकार की जाती है:— ब्रह्म जगत्का कारण है, सत्यकाम, सत्यसंकल्प, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, सबका प्रेरक तथा कृपालु है; इस प्रकार **ईश्वरके धर्मोंका चिन्तन** करना चाहिये। मूर्ति-चिन्तनमें शास्त्रका तात्पर्य नहीं है।

शास्त्रोंमें जो मूर्तियोंका वर्णन आता है वह उपासनाके निमित्त नहीं, किन्तु यह बतानेके लिये कि सभी मूर्तियाँ कारण ब्रह्मकी **उपलक्षण** हैं। जो वस्तु जिसके एकदेशमें हो और सदा न रहे किन्तु कभी रहे, तथा व्यावर्त्तक (दूसरोंसे अलग करके जनवानेवाला) हो उसे **उपलक्षण** कहते हैं! जैसे कोई कहे कि, "वह कौवेवाला घर देवदत्तका है" तो इस वाक्यमें कौवा देवदत्तके घरका उपलक्षण है, क्योंकि कौवा उस घरके एकदेशमें बैठा हुआ है, वह भी सदाके लिये नहीं, किन्तु कुछ समयके लिए है, तथा दूसरे घरोंसे देवदत्तके घरका व्यावर्त्तक है अर्थात् दूसरे घरोंसे देवदत्तके घरको अलग करके जनवाता है; इसी प्रकार जगत्का कारण जो ब्रह्म है उसके एकदेशमें मूर्तियाँ होती हैं, वह भी सदाके लिये नहीं किन्तु कुछ समयके लिए ही, तथा वे (माया-द्वारा कल्पित) चतुर्भुजादिक सभी मूर्तियाँ कारण-ब्रह्ममें ही हैं न कि किसी अन्यमें अतः व्यावर्त्तक (कारण-ब्रह्मको कार्य-ब्रह्मसे अलग करके जनवानेवाली) भी हैं, इससे सिद्ध हुआ कि सभी मूर्तियाँ कारण-ब्रह्मकी **उपलक्षण** हैं।

उपलक्षणका केवल यही प्रयोजन होता है कि उससे विशेष्य-वस्तु (उपलक्षण जिस वस्तुके सहारे रहकर उसे दूसरी

२५

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वस्तुओंसे अलग करके जनवाता है, उस वस्तु) के स्वरूपका ज्ञान हो, जैसे कौवेसे देवदत्तके घरका ज्ञान होता है; और कोई दूसरा प्रयोजन वहाँ कौवेसे सिद्ध नहीं होता, इसी प्रकार चतुर्भुज आदि आकारों (मूर्तियों) से निराकार कारण-ब्रह्मका ज्ञान होता है। बस इसी प्रयोजनको लक्ष्य करके ही शास्त्रोंने उपासनाके लिए मूर्तियोंका वर्णन किया है। मूर्तियोंको बतलाने का इससे दूसरा कोई और प्रयोजन नहीं है।

किन्तु मन्द बुद्धिवाले लोग शास्त्रके अभिप्रायको न समझकर आपसमें एक दूसरेकी निन्दा करके लड़ते ही रहते हैं। वैष्णव ग्रन्थोंमें शिव आदि नामोंसे कार्य-ब्रह्मकी ही निन्दा की है, इस अभिप्रायको न समझकर शिव आदि के उपासक दुःखी होते हैं और शैव ग्रन्थोंमें विष्णु आदि नामोंसे कार्य-ब्रह्मकी निन्दाको न जानकर विष्णु आदिके उपासक दुःखी होते हैं। अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको केवल मूर्तियोंमें आग्रह न करके पुराणोंके इस वास्तविक तात्पर्य को समझना चाहिये कि **कारण-ब्रह्म उपास्य है और कार्य-ब्रह्म त्याज्य है।** माया-विशिष्टको **कारण-ब्रह्म** कहते हैं और माया-द्वारा रचे हुए कार्य-विशिष्ट-चेतनको **कार्य-ब्रह्म** कहते हैं। अतः पिताजी ! आपको अब इन कार्य-ब्रह्मके उपासकों के भिन्न भिन्न मतोंको छोड़कर केवल एक कारण-ब्रह्मकी ही उपासना करनी चाहिये।

तब शुभसन्तति कहने लगे—"पुत्र ! अब मुझे यह समझमें आगया कि पुराणोंका आपसमें विरोध नहीं है और कारण-ब्रह्मकी ही उपासना करनी चाहिये; किन्तु इन छः

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शास्त्रोंमें भी आपसमें विरोध प्रतीत होता है, इन सबमें कौनसा शास्त्र वेद-सम्मत अर्थात् सही है जिसका अध्ययन करना चाहिये।

तर्कदृष्टि बोले—"पिताजी ! यद्यपि छहों शास्त्रोंके कर्त्ताओंको सर्वज्ञ कहते हैं। (१) साँख्यका कर्त्ता **कपिल** (२) योग-दर्शनका कर्त्ता **पतंजलि** (३) न्यायका कर्त्ता **गौतम** (४) वैशेषिक शास्त्रका कर्त्ता **कणाद** (५) पूर्व-मीमाँसाका कर्त्ता **जैमिनि** (६) उत्तर-मीमाँसाका कर्त्ता **व्यास**। इन सबका माहात्म्य प्रसिद्ध है, अतः इनके वचनरूप शास्त्र भी सभी एक जैसे प्रमाण होने चाहियें, तथापि सभी वाक्योंमें प्रबल प्रमाण वेद-वाक्य हैं, क्योंकि वेदका कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर है। उसमें **भ्रम, संदेह, विप्रलिप्सा** (बहकानेकी इच्छा) ये दोष नहीं हैं। और इन शास्त्रोंके कर्त्ता जीव हैं उनमें ऊपर कहे हुए भ्रमादि दोष हो सकते हैं। यद्यपि शास्त्रकार भी सर्वज्ञ कहलाते हैं किन्तु उनको सर्वज्ञता योग-माहात्म्य से हुई है, इसलिए वे युंजान-योगी हुए हैं और ईश्वरकी सर्वज्ञता स्वभाव-सिद्ध है अतः वे युक्त-योगी हैं। जिसको चिन्तन करनेसे पदार्थोंका ज्ञान हो उसे **युंजान-योगी** कहते हैं और जिसे सदा एक रस सभी पदार्थ प्रत्यक्ष प्रतीत होते रहते हैं उसे **युक्त-योगी** कहा जाता है, ऐसे केवल ईश्वर हैं।

युक्त-योगीके रचे हुए वेद-वचन **प्रबल** हैं और युंजान-योगीके रचे हुए शास्त्र-वचन **दुर्बल** हैं। अतः वेदके अनुसारी शास्त्र प्रमाण है और वेद-विरुद्ध शास्त्र अप्रमाण है। इससे

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सिद्ध हुआ कि वेदके विरुद्ध साँख्य आदि पाँच शास्त्र अप्रमाण हैं, और उत्तर-मीमाँसा (ब्रह्मसूत्र) जो किसी अंश में भी वेदके विरुद्ध नहीं है, वही प्रमाण है। यद्यपि उत्तर-मीमाँसा वेदव्यासजीने सूत्रोंमें ही बनायी है, और उसका व्याख्यान भी अनेक पुरुषोंने नाना प्रकारसे किया है, किन्तु पूज्य-चरण श्रीस्वामी शंकराचार्यजीका किया हुआ व्याख्यान ही वेद-अनुसारी है, और नहीं।

और जो मन्द-बुद्धि पुरुष द्वैत-वादियोंके वचनोमें विश्वास करके अन्य शास्त्रोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं वे पुरुषार्थ सुखसे रहित होकर जन्म-मरणरूप महादुःखका अनुभव करते रहते हैं। अतः वेद-अनुसारी उत्तर-मीमाँसा अर्थात् वेदान्त का अध्ययन करके अपने असली स्वरूप उस अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करके, इस जन्म-मरणके चक्करसे छूटकर, परमानन्दको प्राप्त करना चाहिये।

इस प्रकार तर्कदृष्टिके वचन सुननेके बाद शुभसन्ततिकी सभी शंकाएँ नष्ट हो गईं, और तर्कदृष्टिको गुरु मानकर सारा राज्य उसे गुरु-दक्षिणामें दे दिया। यद्यपि तर्कदृष्टि शुभसन्ततिका पुत्र था, तो भी उत्तम उपदेश करनेके कारण गुरु-पदको प्राप्त हुआ। यह ब्रह्म-विद्याका माहात्म्य है।

फिर वह राजा बड़े उत्साह व लग्नसे कारण-ब्रह्मकी उपासनामें प्रवृत्त हो गया। इस प्रकार उपासना करते करते प्रारब्ध समाप्त होनेके बाद, शरीरके छूटनेपर उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई।

उपासकके मृत्युमें किसी विशेष देशकालकी आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नहीं होती। इसीलिये राजाके मृत्युका कोई विशेष देशकाल नहीं बताया; क्योंकि उपासक चाहे दिनमें मरे अथवा रात्रि में दक्षिणायनमें मरे अथवा उत्तरायणमें, पवित्र भूमिमें अथवा अपवित्रमें सर्वथा उपासनाके बलसे देव-यान-मार्ग-द्वारा उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति हो जाती है। और अदृष्टिके प्रसंगमें जो पहिले देशकाल आदिकी आवश्यकता बताई थी वह योग-सहित उपासकके लिए बताई थी। केवल ईश्वर-शरण-उपासकको किसी विशेष देशकालकी आवश्यकता नहीं है। सूत्रकार श्रीवेदव्यासजी तथा भाष्यकार श्रीस्वामी शंकराचार्य-जीने इस बातका स्पष्टरूपसे कथन किया है।

तर्कदृष्टि फिर गुरु-दक्षिणामें मिले हुए उस राज्यको अपनी तीव्रतर प्रारब्धका फल समझकर राजा जनककी तरह, कर्त्तापन व भोक्तापनके अभिमानको छोड़कर सारे राज्यके कार्यको चलाने लगा। इस प्रकार राज्यके कार्यको चलाते चलाते उसे कोई विषयोंका रंग नहीं लगा; क्योंकि उसे अपने असली स्वरूप अकर्त्ता अभोक्ता ब्रह्मका दृढ़ अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान हो चुका था। एवं अपना व्यवहार करते करते, प्रारब्ध समाप्त होनेपर उसके प्राण यहीं लीन हो गए और आत्मा परमात्माका आपसमें अभेद हो गया। यद्यपि कूटस्थ आत्माका परमात्मासे तो सदा ही अभेद रहता है परन्तु जो उपाधिके कारण भेद प्रतीत होता है बस उसकी ही केवल निवृत्ति होती है।

परमात्मासे अभेदका तात्पर्य :— विदेह-मोक्षमें ईश्वरसे अभेद होता है, न कि शुद्ध चेतन ब्रह्मसे; [क्योंकि साक्षी

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और शुद्ध चेतनका तो सदा ही अभेद है] यह बात शारीरक-भाष्य (ब्रह्मसूत्रके भाष्य) के चौथे अध्यायमें कही गई है। वहाँ यह प्रसंग है :—(१) विदेह-मुक्तिमें सत्यसंकल्पादिक रूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतसे बताई है।

(२) औडुलोमिके मतसे सत्य-संकल्पादिकोंका अभाव बताया है।

(३) सिद्धान्त मतमें सत्य-संकल्पादिकोंका भाव अभाव दोनों बताए हैं। उसका तात्पर्य यह है कि— जब ईश्वरसे अभेद होता है अर्थात् विदेह-मोक्ष होता है तब अन्य जीवों को उस मुक्तमें ईश्वरके सत्य संकल्प आदि प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें वह ईश्वर शुद्ध है, उसमें कोई गुण नहीं किन्तु निर्गुण ही है, इसलिये सत्य-संकल्पादिकोंका अभाव है।

यद्यपि संसार-दशामें भी जीव वास्तवमें निर्गुण व शुद्ध है, तो भी जीवको संसार-दशामें अविद्यासे कर्त्तापन व भोक्तापन प्रतीत होता है। ईश्वरको कभी भी आत्मामें अथवा अन्यमें संसार प्रतीत नहीं होता, अतः वह सदा असंग, निर्गुण व शुद्ध है, इसलिये ईश्वरसे जो अभेद है वही शुद्धसे अभेद है।

यदि ईश्वरसे बताए हुए अभेदको शुद्ध ब्रह्मसे अभेद नहीं माना जाय तो ईश्वरको शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति कभी भी नहीं होगी; क्योंकि जीवकी तरह ईश्वरको उपदेश-जन्य ज्ञान व विदेह-मोक्ष तो कभी होते ही नहीं हैं। और सदा प्राप्त जो उसका माया-विशिष्टरूप है वह शुद्ध है नहीं, अतः जीव से भी न्यून ईश्वर सदा बद्ध है, ऐसा सिद्ध हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अतएव यह मानना ठीक है कि :—(१) ईश्वरको आवरण नहीं है और इसी कारण उसे उपदेश-जन्य ज्ञानकी आवश्यकता भी नहीं है। (२) आवरणके अभावके कारण भ्रान्ति भी नहीं है; अतः वह नित्य-सर्वज्ञ व नित्य-मुक्त है। (३) उसे माया और उसका कार्य, आत्मामें (अपने आप में) प्रतीत नहीं होता; अतः सदा असंग है, और असंग होनेसे शुद्ध है। इसी कारण ईश्वरसे अभेद ही शुद्ध चेतन से अभेद है।

दृष्टान्तसे भी ईश्वरसे ही अभेद सिद्ध होता है। जैसे किसी मठ (मकान) में कोई घट (घड़ा) फूट जाय तो मठाकाशमें घटाकाशका लय हो जाता है, न कि महाकाश में। इसी प्रकार विद्वान्‌का शरीर ईश्वरके रचे हुए ब्रह्माण्डमें ही नष्ट होता है और ब्रह्माण्ड सारा ईश्वरके शरीररूप मायाके ही अन्तर्गत है। विद्वान्‌का आत्मा विदेह-मोक्षमें ब्रह्माण्डके बाहर गमन नहीं करता। अतः ईश्वरसे ही अभेद होता है परन्तु जैसे जिस मठाकाशसे घटाकाश का अभेद होता है वह मठाकाश महाकाशसे भिन्न नहीं किन्तु महाकाशरूप ही है; ठीक इसी प्रकार जिस ईश्वरसे अभेद होता है वह ईश्वर शुद्ध ब्रह्म ही है; अतः **विदेह-मोक्षमें शुद्ध ब्रह्मकी ही प्राप्ति होती है।**

तात्पर्य यह है कि ज्ञानवान्‌की दृष्टिसे विदेह-मोक्षसे पहिले भी वास्तवमें ब्रह्माण्डादि जगत् कुछ है ही नहीं केवल एक शुद्ध ब्रह्म ही है। अतः उसकी दृष्टिसे तो शुद्ध ब्रह्मसे ही अभेद होता है; उसीको शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति कहते हैं। और

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अज्ञानियोंकी दृष्टिसे ब्रह्माण्ड आदि जगत् ज्यूँका त्यूँ प्रतीत होता है, अतः उनकी दृष्टिसे ज्ञानीका ईश्वरसे (ईश्वरके देह-रूप ब्रह्माण्डसे) अभेद होता है। वह ईश्वर भी वास्तवमें शुद्ध ब्रह्म ही है, अतः इस दृष्टिसे भी **ज्ञानीको विदेह-मोक्षमें शुद्ध ब्रह्मकी ही प्राप्ति होती है।**

इति श्रीस्वामिलीलाशाहपूज्यपादशिष्य-
श्रीस्वामिमनोहरदासविरचिते पूज्यवर-
ब्रह्मनिष्ठपंडितवर्यश्रीमन्निश्चलदासकृत-
श्रीविचारसागरस्थगम्भीरभावदर्शके
श्रीविचारसागरदर्पणे जीव-
न्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनं नाम
सप्तमस्तरङ्गः समाप्तः॥७॥

समाप्तं चेदं श्रीविचारसागरदर्पणम्

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection

Digtized by Muthulakshmi Research Academy

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक, नहीं भेदको गन्ध।
राग द्वेष मतिके धरम, तामें मानत अंध॥

CC-0. In Public Domain. Chhatrasal Singh Collection